प्रकाशक —
प्रेम साहित्य जैन भडार
जालन्धर

मुद्रक :
श्री राज कुमार जैन,
राज रत्न प्रैस,
प्रताप रोड, जालन्धर।

दो शब्द

आज ससार मे भौतिक उन्नति का बोलबाला है। भौतिकता की चकाचौंध ने मनुष्य को इतना अन्धा कर दिया है कि वह वास्तविकता को पहचान नही पाता। फलत, वह सत्यता से कोसो दूर जा पडा है। उसके प्रत्येक कार्य मे स्वार्थ-भावना प्रधान है। जब तक उसे यह न पता लग जाय कि अमुक कार्य मे उसे कितना अर्थ-लाभ होगा, तब तक वह किसी कार्य मे प्रवृत्त नही होता। इधर विज्ञान ने उसे पर्याप्त शक्तिशाली तो बना दिया है किन्तु अपने सामर्थ्य का दुरुपयोग करके उसने विश्व की नीद हराम कर रक्खी है, और सदा इस बात की शका बनी रहती है कि कही विज्ञान की भट्ठी उसे पूर्णरूपेण झुलस न दे।

ऐसी परिस्थितियो मे महान् पुरुषो के उपदेश ही मनुष्य के दिमागी सतुलन को स्थिर रख सकते है, जिस से कि वह अपने तन, मन तथा धन की विविध शक्तियो का सदुपयोग करता हुआ जीवन के लक्ष्य को सफलतापूर्वक प्राप्त कर सकता है। अन्यथा बेलगाम घोड़े की तरह लक्ष्य-मार्ग से भ्रष्ट हो कर वह नाश के गर्त मे गिरे बिना न रहेगा।

ससार मे चार प्रकार के मनुष्य होते है, उनमे उत्तम प्रकृत्ति के मनुष्य वे है, जो अपने भले के साथ साथ अन्य लोगो का भी भला करते है। उन्ही की गणना महापुरुषो मे की जाती है। उनका अवतरण सभवत इसीलिए होता है कि वे भटकती हुई जनता को समय समय पर सन्मार्ग का प्रदर्शन कराते रहे।

पजावप्रान्त की भूमि भाग्यशालिनी है कि उसने ऐसे अनेक महा-पुरुषो को जन्म दिया है। पजाव केसरी जैन मुनि श्री प्रेमचन्द जी महाराज उन्ही विरले महान् व्यक्तियो मे से है, जिन्हो ने अपना समस्त जीवन जनहितार्थ धर्मप्रचार के लिये अर्पित कर रखा है। अनेक प्रदेशो की यात्रा करके वे धर्मप्रेमी जनता को सुधासिञ्चित उपदेशो से नवजीवन प्रदान करते रहते है। जिन व्यक्तियो ने महा-राजश्री के चरणो मे बैठ कर उनके मुखारविन्द की अमृत वर्पा से धर्म-पिपासा को शान्त किया है, वे परम भाग्यशाली है, किन्तु जिन्हे ऐसा शुभ अवसर प्राप्त नही हुआ, वे भी इस लाभ से वञ्चित न रहे, इस उद्देश्य से उनके भक्तजन उनके उपदेशो को स्थायी रूप देने के लिये पुस्तकाकार मे प्रकाशित करने का आग्रह करते है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये "प्रेमसुधा" नामक उपदेश-सग्रह का यह नौवॉ भाग प्रकाशित किया जा रहा है। इसमे महाराज श्री के उन उपदेशो का सग्रह है, जो उन्होने ने व्यावर (राजस्थान) मे दिये।

अनेक भाषाओ के प्रकाण्ड पण्डित होने के कारण महाराजश्री की व्याख्यान-शैली अपने स्थायी प्रभाव से श्रोताओ तथा पाठको के मन को मुग्ध कर लेती है। विपय-प्रतिपादन का अद्भुत सामर्थ्य जनता को वरवस आकृष्ट कर लेता है। यत्र-तत्र दिये गये सुन्दर दृष्टान्तो से उनके कथन मे इतनी स्पष्टता तथा सरलता आ जाती है कि सर्वसाधारण जनता भी पूर्णतया लाभान्वित होती है।

प्रस्तुत सग्रह मे प्रभावना नामक आठवे दर्शनाचार पर प्रकाश डाला गया है। उसके आठ भेद है —(१)प्रवचन प्रभावना,(२) धर्म-कथा प्रभावना। (३) वादी प्रभावना। (४) तप प्रभावना। (५) व्रत प्रभावना। (६) त्रिकालज्ञ प्रभावना । (७) विद्या प्रभावना और

कवि प्रभावना। प्रभावना के इन आठ भेदो पर पूर्णतया प्रकाश डालते हुए महाराजश्री ने चार प्रकार की धर्म-कथा को तथा वारह व्रतो को और भी सुस्पष्ट किया है । आप ने बताया है कि जिन क्रियाओ से धर्म का विस्तार हो, प्रभाव वढे, लोग सम्यक्त्व की ओर आकृष्ट हो, वह सव दर्शनाचार के प्रभावना अङ्ग मे सम्मिलित है। मनुष्य जन्म मे जो सुख है, वह क्षणभगुर है। ससार के भोग्य पदार्थ आत्मा को पतन की ओर ले जाते है। भोगप्रिय लोगो को ससार मे परिभ्रमण करना पडता है,अत इन सुखो मे लिप्त न हो कर मन को वैराग्य की ओर लगाना चाहिये। सासारिक सुखो मे लिप्त होना शहद से भरी तलवार की धार को चाटना है, जिस से थोडी-सी देर तो मिठास मालूम होती है किन्तु जव जीभ कट जाती है तो सदा के लिये दु ख होता है।

इस विषय पर अधिक कुछ न कह कर हम इतना कहेगे कि जो मनुष्य इस ज्ञान-गगा मे गोता लगायेगा, वही पूर्ण शान्ति तथा आनन्द का अनुभव कर सकेगा। तट पर वैठा रहने वाला अभागा उससे वञ्चित ही रहेगा।

अन्त मे हम श्री जसवन्त सिह तरसेव सिह जी जैन भठिण्डा-निवासी के प्रति भी कृतज्ञता प्रकाशित करना अपना कर्तव्य समझते है, जिन्हो ने प्रस्तुत सग्रह के काशन का समस्त व्यय उठा कर अपने धर्म-प्रेम का परिचय दिया है, और जिज्ञासु जनता को आध्यात्मिक स्रोत की प्रेमसुधा का पान करा कर आत्मिक शान्ति-लाभ का सुअवसर प्रदान किया है।

—सम्पादक

सरदार जसवन्त सिह जी
का
संक्षिप्त परिचय

पटियाला मण्डल मे माणसा मण्डी के निकट भीग्वी नाम का एक कस्वा है। जैनो के घर तो यहाँ पर वहुत कम हैं किन्तु यहाँ के अन्य धर्मानुयायी भी जैन सावुओ के प्रति वडी श्रद्धा रखते है। इस कस्वे मे अग्रवाल महाजनो के काफी घर हैं, जिन मे तीस चालीस घरानो ने सिक्ख धर्म को अपनाया हुआ है। उन्ही मे एक घर सरदार जसवन्त सिह जी का भी है, जो कि महाराज श्री का अनन्य भक्त है।

विक्रमी सवत् १९९३ मे जैन भूषण श्री प्रेमचन्द जी महाराज अपने पूज्य गुरु वाल ब्रह्मचारी स्वर्गीय श्री वृद्धि चन्द्र महाराज के साथ उक्त कस्वा मे पधारे। पूज्य गुरु श्री वृद्धिचन्द्र जी महाराज वृद्ध होने के कारण लगभग तीन मास यहाँ पर विराजे। जैन भूपण स्वामी प्रेमचन्द जी महाराज के प्रभावशाली प्रवचन नित्य होते रहे, जिन मे प्रभावित हो कर सैकडो व्यक्तियो ने शराव पीना, मास खाना आदि पाप कर्मो का सर्वथा परित्याग कर दिया।

तभी से सरदार जसवन्त सिह जी जैन भूपण महाराज श्री के व्यक्तित्व से इतने प्रभावित हुए है कि अवसर मिलने पर जहाँ तहाँ उनके दर्शनो के लिए वे स्वय अथवा उनका परिवार पहुचता रहता है। कुछ वर्षो से सरदार जसवन्तसिह जी व्यापार कार्य के लिये वठिंडा चले गये और वही रहने लगे है। वहाँ उनकी गणना प्रसिद्ध थोक वजाज व्यापारियो मे की जाती है।

सवत् २०१५ मे जैन भूपण स्वामी प्रेमचन्द जी का चतुर्मास जालन्धर मे हुआ। यथापूर्व सरदार जसवन्त सिह जी सपरिवार महाराज जी के दर्शनो को आए। दो तीन दिन यहाँ रहकर दर्शनो तथा उपदेशामृत से अपने को कृतार्थ किया। यहाँ पर ही अपने पोते की झड की अर्थात् पहले वाल उतरवाये और इस शुभ अवसर की खुशी मे ५०० रु० के लड्डू व्याख्यान सुनने के लिये आई हुई जनता मे वाँटे। जालन्धर के पशुवाडे मे भी लड्डू भेजे। साथ ही धर्म प्रेमी जनता को लिपिवद्ध उपदेशामृत का पान कराने के लिये 'प्रेम सुधा' व्याख्यान माला का यह नौवाँ भाग छपवाने का व्यय उठाने का वचन किया।

फलत यह उसी का शुभ परिणाम है कि प्रेम सुधा माला का नौवाँ भाग आपके कर कमलो मे प्राप्त है।

विषय-सूची

सम्यक्त्वपरिणति

उपस्थित सज्जनो और वहिनो !

दर्शनाचार का विवेचन प्रस्तुत है। जिन आत्माओ मे सम्यग्दर्शन की ज्योति जगमगा रही है, उनका यह परम कर्त्तव्य है कि वे उसे वनाये रखने और साथ ही वृद्धि करने के लिए दर्शनाचार की आठ वाते अपने जीवन मे उतारे, इस से दर्शन की वृद्धि होगी, सम्यक्त्व उज्ज्वल होगा और उन का अनुकरण करके दूसरे भी धर्म की तरफ आकर्षित होगे। इस प्रकार जिन-वचनो की प्रभावना होगी। भगवान् के सत्य मार्ग का अधिक से अधिक विस्तार होगा।

जिस के जीवन मे विशुद्ध सत्य आ गया, उस ने भले ही व्यवहार मे सम्यक्त्व धारण न किया हो और किसी को विशेप रूप से गुरु न वनाया हो, फिर भी वह सम्यक्त्वी है, सम्यक्त्व का पाठ पढना-पढाना, शिष्य वनाना, यह व्यावहारिक वात है, एक पद्धति है, वास्तविक वात है हृदय मे विशुद्ध सत्य का वीजारोपण होना।

सम्यक्त्व आत्मा की एक पावन परिणति है। वह पोटली वॉध कर दी जाने वाली चीज नही है। आत्मा स्वभावत सम्यक्त्व-मय, सत्यमय ही है और सत्य आत्मा की निज वस्तु है। उस सत्य पर असत्य का जो आवरण चढा हुआ है, उसे दूर कर देने की ही आवश्यकता है, अर्थात् सोने-चॉदी पर जो मैल चढ गया है, उसे अगर दूर कर दिया तो सोना-चॉदी शुद्ध ही है। सोना-चॉदी किसी

ने तैयार नही किया, वह तो जन्म से ही सोना-चाँदी था। यह पृथ्वी कायरूप है, जिन एकेन्द्रिय जीवो ने शुभ वर्णनामकर्म वॉधा है, उन्हे सोने-चॉदी के रूप मे चमकता हुआ जीवन मिल गया है, शरीर मिल गया हे। देखा जाता है कि कोई मनुष्य काला कुरूप है तो कोई सुन्दर वर्ण वाला है। जव मनुष्यो मे भी यह अन्तर पाया जाता है तो एकेन्द्रिय जीवो के गरीरो मे भी वर्ण, गंध, रस, स्पर्श पाया जाता है और उसी के अनुसार उन्हे भी विभिन्न प्रकार का सुन्दर या असुन्दर शरीर प्राप्त हो जाता है।

पृथ्वी से खोदा जाने वाला कोयला भी सजीव है। पृथ्वी-कायिक जीव है, मगर उसने कृष्ण कुवर्ण नाम कर्म का वंध किया है तो उसे काला शरीर प्राप्त हो गया। जव तक कोयला खान मे है, तव तक पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय जीव है और खान से पृथक् हो जाने के पश्चात् वह कोयला धीमे-धीमे अचेतन हो जाता है।

तो मैं कह रहा था कि सोना-चॉदी जन्म से ही स्वर्ण और चॉदी रूप हैं, किन्तु उन के साथ मैल लगा हुआ है, जव तक वे मिट्टी मे मिले हुए है, तव तक उन्हे कोई सोना-चॉदी नही कहता, क्योकि उन मे सोने-चॉदी की शुद्ध चमक प्रादुर्भूत नही हुई है। स्पष्ट रूप से अभी तक वे सोने-चाँदी के रूप मे नही आए है। सरकार भी उसी मिट्टी से सोना-चॉदी निकालने का प्रयास करती है, जिस मे अधिक मात्रा मे सोना-चॉदी उपलब्ध हो सके, और खर्च कम होता हो। कितनी ही खाने यो ही पडी हुई है।

अभिप्राय यह है कि सोने-चाँदी की खाने होने पर भी जव उन मे दूसरे तत्त्व अधिक और सोने-चॉदी की मात्रा कम होती है तो सरकार भी उन्हे हाथ नही लगाती। किन्तु तुम अपने गुरुओ

का वात्सल्य भाव तो देखो, उनको करुणा-शोलता तो देखो, और उपकार-दृष्टि पर तो दृष्टिपात करो। वे पापी से पापी, जिनके मेल की सीमा नही है, जो राजा प्रदेशी के समान महान् अपराधी तथा 'चडे कुद्धे एव लोहियपाणी' है, उन पर भी अपनी असीम करुणा वरसाते है। प्रदेशी राजा की आत्मा रूपी सोने मे कितना मैल मिला हुआ था? वह पाप का पुज था। किन्तु वाह री साधु की उदारता! उस के साथ कोई नाता नही, रिश्ता नही, कुछ लेना-देना नही, फिर भी केशी श्रमण ने भारी कष्ट उठा कर, मिहनत करके और अमूल्य समय खर्च करके भी उसे उपदेश दिया। उस के पाप मल को धोया। सन्तो की ऐसी ही महिमा है। ठीक ही कहा है—

वृक्षा फले न आपको, नदी न अँचवे नीर।
परोपकार के कारणे, सता धर्यो शरीर॥

वृक्ष धूप, ताप, सर्दी आदि स्वय सहन करता है और आराम दूसरो को पहुँचाता है। वह अपने फलो का स्वय उपयोग नही करता। नदियाँ और नहरे आदि जलाशय खोदते समय अपनी छाती पर कुदालो तथा आधुनिक अस्त्रो के कठोर प्रहार झेलते है, परन्तु पानी का लाभ दूसरों को ही देते है। वे अपना पानी आप नही पी जाते। इसी प्रकार महात्मा भी स्वय कष्ट उठा कर दूसरो को जो वाणी सुनाते है, उससे स्वार्थ नही सिद्ध करना चाहते, किन्तु दूसरो का ही उपकार करते है। वे चाहे तो एकान्त मे बैठ कर भी स्वाध्याय और ध्यानादि कर अपना कल्याण कर सकते है, परन्तु परकीय कल्याण के लिए उपदेश सुनाते है।

शास्त्र मे चार प्रकार के पुरुष वतलाये है—(१) जो अपना भला करते है, दूसरो का नही। (२) दूसरो का भला करते है,

अपना नही। (३) दूसरो का भी भला करते है और अपना भी। (४) जो न अपना भला करते है और न दूसरो का ही भला करते है।

प्रतिमाधारी साधु अपना ही भला करते है, दूसरो का भला नही करते। जिनकल्पी साधु जगल मे ही रहते है। मिल गया तो खा लिया, न मिला तो तपस्याराधन और आत्मचिन्तन मे मगन। वे न व्याख्यान देते है, न किसी को दर्शन देते है। अपनी ही साधना मे सलग्न रहते है। इस प्रकार वे अपना तो कल्याण करते है, किन्तु उनके जीवन से दूसरो को लाभ नही पहुँचता। हाँ, दूसरो को उपदेश देना वे हेय या हानिजनक नही समझते, किन्तु वे माल जमा करने मे ही रहते है। वे समझते है कि पहले अपने आप को विशेष रूप से योग्य बना ले, फिर उपदेश दे। वे पहले अपने जीवन को उन्नत आदर्शमय बना लेना चाहते है, ताकि बाद मे जगत् का विशिष्ट उपकार कर सकें। वे केवल भोजन के लिए ही बस्ती मे आते है और उदरपूर्ति करके जगल मे चले जाते है। अगर वे जानते है कि हमे जगल मे किसी ने जान लिया है तो दूसरी जगह चले जाते है। मनुष्यो के परिचय मे ज्यादा नही आते। अधिक परिचय से उनकी एकान्तमयी साधना मे बाधा पडती है।

दूसरे वे है जो दूसरो का तो उपकार कर देते है, परन्तु अपना उपकार नही करते। अभव्य जीव, जिन्हे कभी मोक्ष नहीं जाना है, जिन्हे मोक्षप्राप्ति की इच्छा ही नही होती, ऐसे आत्मकल्याण की भावना से शून्य अभव्य जीव भी कभी साधु बन जाते है और दूसरो को वैराग्यपूर्ण उपदेश भी सुनाते है। वे दूसरों की आत्मा का तो कल्याण करते हैं, परन्तु आप कोरे के कोरे ही रह जाते है। जैसे

कुडछी दूसरो को खीर, लापसी, हलवा, शाकभाजी आदि परोसती और रसास्वाद कराती है, पर आप कोरी की कोरी ही रह जाती है। उसका काम सिर्फ देना है, खाना नही। यदि वह रसास्वादन नही कर सकती तो कोई आश्चर्य की बात नही, क्योकि वह जड पदार्थ है और उसे रसेन्द्रिय प्राप्त नही, परन्तु पचेन्द्रिय चेतन होकर कोरा रह जाना अवश्य आश्चर्य की बात है।

तीसरी श्रेणी मे वे साधु गिने जाते है, जो अपना और दूसरो का भी कल्याण करते है। वे अपने कर्मो की भी निर्जरा करते है और साथ ही दूसरे जीवो को भी मोक्षमार्ग की तरफ ले जाते है। जो उदारचित्त होते है, वे स्वय भी खाते है और दूसरो को भी खिलाते है।

मेरे गुरु श्रीवृद्धि चन्द जी महाराज और व्या० वा० श्री मदन लाल जी म० के दादा गुरु श्री छोटेलाल जी महाराज, जो आपस मे गुरु-भाई थे, उनको लाभ अतराय कर्म के क्षयोपसम होने के कारण एक प्रकार को लब्धि प्राप्त थी। वे गोचरी जाते तो जहाँ कुछ भी मिलने की सभावना न होती, किन्तु वहाँ से भी प्रासुक विधि द्वारा भोजनादि प्राप्त कर झट आ जाते थे। वे अपने आप को भी साता पहुँचाते और दूसरे मुनियो को भी।

पजाब मे वद्रोशाह सोहनेशाह का प्रतिष्ठित परिवार है। वे धर्म के ज्ञाता और दृढधर्मी थे। उनके परिवार मे करीव ३०० मनुष्य होगे। उस परिवार मे एक सज्जन लाला शादीशाह जी सर्राफी के वहुत वडे व्यापारी है। जव वे दुकान पर वैठ जाते है तो दूसरे ग्राहक भी वही जा पहुँचते हैं। भाग्य सव का अलग अलग होता है। लाला शादीशाह जी के पास विशेप रूप से ग्राहक आते है तो कोई विशेष

कारण होना चाहिए न ? लोगो को उनके वचन पर विश्वास है। उन्होने किसी से कोई सौदा कर लिया और उससे उन्हे लाभ हो रहा है तथा दूसरे को नुकसान हो रहा है; फिर भी यदि दूसरा आकर अनुरोध करे तो वे उस सौदे को छोड देते। क्या इस प्रकार का त्याग साधारण है ?

तो मनुष्य मे सौभाग्य जैसी कोई चीज होती है, जिससे उसके आगे दुनिया झुक जाती है।

हाँ, तो गुरु महाराज और छोटेलाल जी महाराज खाना और खिलाना जानते थे। उनको गोचरी भिक्षा लाने का बडा शौक था। वे जहाँ भी चले जाते,फौरन गोचरी मिल जाती। कोई-कोई साधु ऐसेभी होते है कि गोचरी के लिये जाएँ तो खाली हाथ लौटे। लाभान्तराय कर्म के उदय से कोई न कोई कारण ऐसा ही बन जाता है कि असूझता हो जाए। अर्थात् विधि विगड जाय, जैन साधुओ की भोजन लेने की खास विधि होती है। कई गृहस्थ भी ऐसे होते है जो न देना हो तो किसी न किसी प्रकार जान कर विधि विगाड देते है। कच्चा पानी ही रास्ते मे डोल देते है, जिससे साधु घर मे ही न आ सके, जैन साधु कच्चा पानी यदि रास्ते मे फैल रहा हो तो उस घर मे नही जाते। यद्यपि वे भी जेनी और धर्मी कहलाते है, किन्तु उनके धर्म के अनुसार अपने साधु के सिवाय किसी को देना एकान्त पाप है। जब कोई साधु जा पहुँचता है तो सीधी तरह मना न करके वे कोई ऐसा कारण उत्पन्न कर देते है कि साधु आहार आदि ले ही न सके। पजाब मे एक बाई ऐसे काम के लिए प्रसिद्ध है। वह घर तो दया-दान वालो की मान्यता का है, पर उसमे वह आगई है।

एक बार मैंने सोचा—चलो उनके यहाँ गोचरी ले आऊँ, ताकि दोनों की अन्तराय टूटे। उस बाई के श्वसुर मेरे साथ थे।

परन्तु ज्यो ही मै घर मे गया, उस वाई ने पानी का लोटा डोल दिया। फिर वह वोली—महाराज जी, मेरे अन्तराय कर्म है तो मैंने भी कह दिया—वाई जी, मेरे भी अन्तराय कर्म का उदय है! यह घटना देख कर उसके श्वसुर जी की मानो जान जल गई। वह वाई परीक्षा मे पूरी उतरी।

तो अभिप्राय यह है कि दान भी प्रत्येक नही दे सकता। झूठे इश्तिहार निकालने मे, झूठे दावे करने मे और विवाह आदि मे हजारो रुपये खर्च कर देते है, किन्तु कही दया धर्म की पानडी हो तो उनका दम घुटने लगता है। तो समझ लेना चाहिए कि पाखाने की ईट तो पाखाने मे ही लगनी है, वह महल मे नही लग सकती।

जो सम्पत्ति न्यायपूर्वक उपार्जित की गई है और जिसके पुण्य कर्म का उदय है, उसकी सम्पत्ति ही धर्म कार्य मे लगती है। पापियो की कमाई मुकदमेवाजी मे और लडाई-झगडे मे ही लगती है। उसे शुभ कार्य मे लगाना वहुत कठिन है।

तो मैं कह रहा था कि खाना और खिलाना, सुख पाना और सुख देना, यह तीसरी श्रेणी के मनुष्यो मे होता है।

चौथी श्रेणी के मनुष्य वे है जो अपना भी भला नही करते और अपने कर्तव्यो द्वारा दूसरो को भी लाभ नही पहुँचाते।

तो आप समझ सकते है कि मुनिराज आपके असाधारण शुभ-चिन्तक है। वे आपका अल्पकालीन द्रव्योपकार नही, शाश्वत भाव-कल्याण करते हैं और अपने खून का पसीना वना कर तथा नाना प्रकार के कष्ट उठा कर भी आपको उपदेश सुनाते है। उन्होने एक नही, हज़ारो पापी से पापी—पापमैल मे लिप्त आत्माओ को उपदेश देकर शुद्ध कर दिया है।

हाँ, तो सरकार भी उसी खान को हाथ लगाती है, जिसमे
सोना-चाँदी पर्याप्त मात्रा मे निकलने की सभावना हो। पर आप
गुरु तो मिट्टी को भी सोना वनाने का प्रयत्न करते है।

सम्यक्त्व वाहर से नहीं आता, वह आत्मा मे ही शक्ति र
से विद्यमान है। विरोधी तत्त्व हट जाने पर वह शुद्ध रूप मे प्रव
होकर चमकने लगता है। धर्मकथा की यही उपयोगिता है कि व
सम्यक्त्व को चमका देती है।

सत्य के प्रति सुदृढ आस्था ही सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व सत्य
जुदा नही है और सत्य सम्यक्त्व से जुदा नहीं है। विशुद्ध सत्य
सम्यक्त्व कहलाता है। भले ही तुम सत्य को सम्यक्त्व का नाम न
देते हो, किन्तु वह पूर्ण सत्य सम्यक्त्व ही है। जो वस्तु जैसी है उ
को वैसी ही स्वीकार करना सत्य है और वही सम्यक्त्व है। स
को सत्य और असत्य को असत्य मानना ही सम्यक्त्व है।

ससार मे सत्य का जितना भी प्रचार हो, उतना ही थो
है, क्योकि आज ससार असत्य की ओर ही प्रगति कर रहा है औ
असत्य की ही उपासना मे तल्लीन है। सर्वत्र असत्य का ही वो
वाला है। आज छोटे-छोटे वच्चे भी वडे-वडे असत्य का प्रयोग क
है। असत्य को सिखाने के लिए कोई स्कूल नही, शाला नही है, उ
की कही ट्रेनिंग नही दी जाती। उसकी परम्परा तो अनादिकाल
चली आ रही है। ऐसी स्थिति मे मनुष्य का यह कर्तव्य हो जाता
कि वह सत्य के प्रसार के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील हो। क
अग्नि जल रही है तो तमाशा मत देखो, उसे वुझाने का प्रयत्न करो
अर्थात् जो जीव मिथ्यात्व की अग्नि मे जल रहे है, उन्हे सम्यक
रूप पानी से शान्ति दो। परन्तु आज आग लगाने वाले और तमा

देखने वाले वहुत है, वुझाने वाले थोडे है। (मिथ्यात्व के प्रसारक वहुत है, किन्तु उसके निवारक वहुत कम है।)

आग कितनी ही क्यो न फंले, असत्य कितना ही क्यो न वढ जाय, आखिर विजय सत्य की ही होती है। सत्य का एक ही उपासक हजारो को उस आग से–असत्य से–वचा लेता है और एक ही असत्यसेवी हज़ारो को मिथ्यात्व–मुसीवत-दु ख—मे डाल देता है। अत एव मनुष्य को शक्ति भर असत्य के उन्मूलन के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

तो आठवे दर्शनाचार प्रभावना का अभिप्राय यही है कि आगे से आगे धर्म का प्रचार होता जाए। जो धर्म आपने सुना है, उसे दूसरो को सुनाते चलो। जैसे तुम सिनेमा देख कर आते हो तो उसका कथानक दूसरो को वड़े रस के साथ सुनाते हो। सिनेमा की दलाली तो कोयले की दलाली है, किन्तु धर्म की दलाली से यहाँ और वहाँ भी मुख उज्ज्वल ही होगा।

तो प्रभावना नामक आठवे दर्शनाचार के आठ भेद है, जिनमे पहला भेद प्रवचनप्रभावना है, अर्थात् धर्मशास्त्र को स्वय पढना और दूसरो को पढाना या सुनाना, विचारो का आदानप्रदान करना, धर्मशास्त्र के अध्ययन की व्यापक रूप से व्यवस्था करना और धर्मज्ञान का अधिक से अधिक प्रसार करना, यह सव प्रभावना के अन्तर्गत है।

दूसरी प्रभावना धर्मकथा है। गुरु की सेवा करके जो ज्ञान प्राप्त किया है, उसके द्वारा धर्मकथा करो और भूले-भटके लोगो को सन्मार्ग पर लगाओ। आप धनोपार्जन करते है तो उसका कोई न कोई लक्ष्य होता है। धन प्राप्त हो जाने पर उसे किसी दुनियावी

काम मे न लगा कर सिर्फ उसका पहरेदार ही बना रहने वाला हतभागी और कजूस कहलाता है। इसी प्रकार धर्मशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने का भी लक्ष्य यही है कि धर्मकथा द्वारा धर्म का प्रचार और आत्मा का कल्याण किया जाए।

मगर धर्मकथा का भी कोई ढग होता है। एक फूहड स्त्री भोजन बनाने बैठ जाती है तो माल का कुमाल कर देती है। इसके विपरीत चतुर बाई बनाने बैठ जाय तो उसी रसोई की रसायन कर देती है। वह भोजन खाने वालो को बडा स्वादिष्ट लगता है। इसी प्रकार एक कथावाचक कथा करने बैठ जाय तो लेने के देने पड़ जाते है।

कथा द्वेष-क्लेश को मिटाने के लिए होती है, न कि उसे उत्तेजित करने के लिए। पानी अग्नि बुझाने के लिए होता है न कि बढाने के लिए। मगर पानी-पानी मे भी अन्तर होता है। एक पानी जैसा पदार्थ होता हे मिट्टी का तेल—घासलेट और एक पानी होता है पीने के काम आने वाला। दोनो पानी के रूप मे जमीन मे से ही निकलते है। यद्यपि जमीन दोनो को ही जन्म देती है, किन्तु स्वभाव दोनो का भिन्न-भिन्न है। एक पानी वह है जो धधकती हुई ज्वालामुखी को शान्त कर देता है और इसके लिए स्वय को मिटा देता है। और दूसरो के जान-माल की हिफाजत करता है, और दूसरा पानी वह है जो दूर से ही आग को पकड लेता है और विस्फोट करके सारे गॉव को भस्म कर देता है।

दुनिया के लोगो! याद रखना। ज्ञानी पुरुष कहते है कि यह पृथ्वी रत्नगर्भा भी है और अगारगर्भा भी है। रत्न-प्रसविनी भी यही पृथ्वी है और कोयलो को जन्म देने वाली भी यही पृथ्वी है।

याद रखना जैसा तेरा स्वभाव होगा, वैसा ही तुझ को फल प्राप्त होगा ।

हीरे, पन्ने मुकुट मे लगाए जाते है। उस मुकुट को पहनने वाले को दुनिया प्रणाम करती है। क्योकि उनमे चमक है, स्वच्छता है। उनमे कालापन नही है, उनका स्वरूप निखरा हुआ है। अत उन्हे सव सिर पर चढाते हैं, अँगूठी मे जडवाते है और दूसरो को दिखाते हैं। जो जीवन मँजा हुआ हे ससार उसका मान करता है, उसे उच्चासन प्रदान करता है। किन्तु कोयले ! तू भीतर से भी काला और वाहर से भी काला है। इसी कारण तुझे आग मे झोकते है। तुझे कोई सिर पर नही चढाता और अँगूठी मे भी नही जड-वाता। कपडो से भी दूर रखते है। तू काला जो है ! जैसा जिसका जीवन होता है, वैसा ही उसे फल भुगतना पडता है।

अरे काले कोयले ! जिन्हे तू जलाने जा रहा है, वे कदाचित् जल या न जले, पर तू अवश्य ही भस्म वन जाएगा। और वह भस्म भी हवा के एक झोके से कही को कही उड जाएगी। उसका पता भी नही लगने वाला है।

हीरे पन्ने के नग वनाने वाले उन्हे खराद पर चढाते है, घिसते हैं और उनमे चमक लाते हैं। इतना कष्ट उठा कर भी वे दूसरे की शोभा ही वढाते है। इसी प्रकार धर्मी पुरुष आपत्तियो मे, कष्टो मे फँस कर भी दूसरो का भला ही करते है ! यही वास्तविक जीवन है।

तो धर्मकथा करने से भी धर्म की प्रभावना होती है। हाँ, स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा और राजकथा से फायदा होने वाला नही है। इन विकथाओ से मनुष्य स्वय मलीन होता है और दूसरो

को भी मलीन करता है। जीवन का महामूल्य समय भी व्यर्थ नष्ट होता है। समीचीन कथा वही है, जिससे दूसरे को और स्वयं कथाकार को भी शान्ति मिले। दवा वही अच्छी है, जिससे रोगी का रोग दूर हो।

संसार के कामों में चतुराई दिखाने वाले तो बहुत हैं, किन्तु धर्म में चतुराई दिखाने वाले कम हैं। कोई व्यक्ति घूमता घामता किसी रियासत में जा निकला। उसने राजा से मिलने का समय माँगा। द्वारपाल ने राजा को सूचना दी और राजा ने आने का प्रयोजन पूछा। उसने कहा—मैं हुजूर की चाकरी करना चाहता हूँ। राजा ने योग्यता के विषय में पूछा तो उसने बतलाया—हुजूर! मेरी अन्यान्य योग्यताएँ तो गौण है, परन्तु एक काम में मैं असाधारण पटु हूँ। वह यह है कि कोई कैसा भी रूस जाए, मैं उसे भी मना सकता हूँ। मैंने इसी बात का प्रमाण-पत्र प्राप्त किया है कि जो रूस जाए उसे बिना बात-चीत किए ही मना लेता हूँ।

सज्जनो यहाँ 'रूस जाय' का मतलब नाराज होना या रुष्ट होना है रूस (रशिया) देश चला जाय मत ले लेना, क्योंकि आप मतलब निकालने में प्रवीण हो। किसी ने अपने नौकर से कहा - जा पान ले आ। नौकर ने चट उत्तर दिया—श्रीमान् जी, सँभाल लीजिए अपनी नौकरी। मुझसे यह काम नहीं होगा। मालिक ने कहा - अरे मूर्ख! मामूली से काम से ही नौकरी सँभलाने लगा। यह नहीं करेगा तो क्या करेगा? नौकर बोला—हो सकता है आपके लिए मामूली काम हो! मगर मैं इतने बड़े जापान को कैसे ला सकता हूँ?

तो मतलब निकालने वाले बहानेबाज ऐसी-ऐसी बातें खोज लिया करते हैं।

तो उस व्यक्ति ने राजा को अपनी विशिष्टता का परिचय देते हुए वतलाया—किसी भी रूस जाने वाले को मना लेना मेरे वाये हाथ का खेल है। राजा ने सोचा—चलो यह भी उपयोगी आदमी है। कभी रानी तो कभी नौकरानी रूसती ही रहती है। मनाने के लिए कोई आदमी चाहिए। यह सोच कर राजा ने कहा, अच्छा, अभी अस्थायी रूप से तुम्हारी नियुक्ति की जाती है। परीक्षा मे उत्तीर्ण होने पर स्थायी नियुक्त किए जाओगे। उस ने नियुक्ति अगीकार कर ली और आराम से रहने लगा।

उस व्यक्ति को अपनी कला पर पूर्ण विश्वास था। वह जानता था कि मैं अनने कर्त्तव्य मे कभी असफल नही हो सकता। इधर राजा ने उस की परीक्षा करने की ठानो। अपनी एक दासी को समझा-बुझा कर वाग मे वैठा दिया और कह दिया—जव तक मै स्वय लेने न आऊँ,तव तक किसी देवता के कहने पर भी अपने आसन से विचलित न होना और न वापिस आना। अगर किसी के वहकावे मे आ गई तो समझ रखना—तेरी जान की खैर नही।

दासी गई और अनमनी-सी मूरत वना कर वैठ गई। उधर राजा ने उस व्यक्ति से कहा—तुम जव से आये, महल की दशा ही कुछ की कुछ हो गई। न मालूम क्या हो गया है दासी को, कि सवेरे से ही सव काम-काज छोड कर नाराज हो कर वाग मे वैठ गई, वापिस आने का नाम ही नही लेती। मैने मनाया, वजीर ने समझाया और सव ने मिन्नत की, मगर वह आने का नाम नही लेती। पगार वढाने का प्रलोभन भी उसे राजी न कर सका। कुछ वोलती भी तो नही है। आज तुम्हारी परीक्षा हो जायगी कि तुम कितनी चतुराई से उसे मना कर ले आते हो।

उसने कहा—अन्नदाता, दासी को मनाना क्या बडी बात है ? अभी हाजिर कर देता हूँ। आप मुझे चार आदमी और चार-चार कसी तथा कुदाल दे दीजिए।

राजा—इनका क्या करोगे ?

उसने कहा—यही तो मेरे मनाने के टोटके हैं। इसी मन्त्र से मेरी विद्या सफल होगी।

राजा—मगर वे क्या काम आएँगे ?

वह—वस यह मत पूछिए और न मेरे काम मे दखल ही दीजिए।

वह उक्त सामान के साथ बाग मे गया। उसने देखा कि गहनो से लदी दासी रोती हुई सी सूरत वनाये बैठी है। इसने उसी की ठीक सीध मे कुछ फासले पर फीता निकाल कर जमीन मापी। आदमियो से कहा—इस निशान से उस निशान तक एक गड्ढा खोदो। गड्ढा खोदना शुरू करवा कर उसने एक दो बार दासी पर दृष्टि डाल कर नाप सा लिया और आदमियो से कहा—जरा यो खोदो और कुछ अधिक गहरा करो।

उसने तीसरी वार इधर-उधर झुक कर फिर नाप लिया और गड्ढे को भी नापा। फिर कुछ और खोदने को कहा।

दासी चुप-चाप यह कार्रवाई देख रही थी, पर उस के दिल मे उथल-पुथल मच गई। उसने सोचा—मेरा नाप ले-ले कर यह कैसा ओवर-कोट तैयार किया जा रहा है। यह मामला क्या है ? इस प्रकार सोच कर वह घवराने लगी। उसे निश्चय हो गया—यह मेरे नाप की कब्र खुदवा रहा है। इसी समय उस पुरुष ने खोदने वालो से कहा—अव सव मामला ठीक हो गया। रूसने वालो को यही नतीजा

भुगतना पड़ता है। क्या अन्नदाता महाराज के सामने यह गडवड चल सकती है कि रूस जाना और मनाने पर भी न मानना ! यहाँ भी पोपा वाई का राज्य समझ रक्खा हे। राजा से रूसने वालो को इस धरती पर जीने का अधिकार नही । उन्हे तो जमीन के भीतर ही समा जाना पडेगा।

यह सुन कर दासी से न रहा गया। उसने कहा—यह तो वड़ा जुल्म हो रहा है !

सुनी अनसुनी करके उस आदमी ने कहा—वस चार अगुल और खोद डालो, फिर सारा मामला फिट वठ जाएगा।

दासी घवड़ा कर वोली—अरे यह कर क्या रहे हो ? और किस लिए गड्ढा खोद रहे हो ?

उसने उत्तर दिया—यह कब्र तेरे लिए है। तुझ जैसी नमक-हराम को हम जिन्दा हीं दफना देंगे । ऐसी दासी की महल मे जरूरत नही है। महाराज की यही आज्ञा है और उसका हमे पालन करना ही पडेगा।

दासी वोली—वाह, खूव है राजा की आज्ञा। राजा ने चोर को कह दिया—चोरी कर, और साहूकार से कह दिया कि जागता रह। राजा साहव की यह कैसी नीति है ? मुझे कह दिया कि परमात्मा के मनाने से भी न मानना सिवाय मेरे, और इधर यम-राज के दूत भेज दिये।

अन्त मे दासी वोली—मुझे मत दफनाओ और एक वार महाराज से वात कर लेने दो।

उस आदमी ने कहा—अगर वात करनी है तो सारे जेवर उतार कर दे दो।

दासी ने ज़ेवर उतार कर दे दिये। उसने जेवर कब्ज़े मे करके कहा—अब जल्दी जाकर वात कर आओ।

दासी रोती-पीटती राजा के पास पहुँची तो वह आदमी पहले ही पहुँच चुका था। उसने राजा से कहा—अन्नदाता, दासी पधार रही है।

राजा को उस दासी पर पूर्ण विश्वास था कि वह मेरी वात टाल नही सकती। अत एव उसने कहा—वह मुझ से नही मानी तो तुझ से कैसे मान सकती है ?

उस आदमी ने कहा—हजूर, हाथ कगन को आरसी क्या ? यह लीजिए उस के गहने। वह भी पहुँचती ही होगी।

राजा ने गहने देख कर कहा—गहने उस से छीन कर तो नही ले आये हो ?

वह—नही हुजूर, उसी ने अपने हाथो से उतार कर दिये है, उसी के मुँह से सारी कैफियत मालूम हो जाएगी।

इसी समय दासी रोती–पीटती, आँसुओ से मुँह धोती राजा के पास आई और वोली—अन्नदाता, क्या मेरे पिछले कर्मो का इसी प्रकार वदला लेना था ? आपने मुझे हुक्म दिया कि किसी के वहकावे मे मत आना और पीछे से मेरी मौत का सामान भिजवा दिया। हुजूर, कोई अपराध हो गया हो तो क्षमा करे। मेरी जान वख्शी जाय।

राजा दासी की यह अटपटी-सी वाते सुन कर परेशानी मे पड गया कि मामला क्या है ? तत्पश्चात् उसने उस आदमी से पूछा—क्या तुम ने इस से कुछ कहा है ?

अपने-अपने घर लौट गये, चित्त जी भी अपने स्थान पर आ गये।

चित्त जी के हृदय पर उपदेश का इतना गहरा असर पडा कि उसके रोम-रोम मे केशी स्वामी समा गये। राजकार्य से निवृत्त होकर वे पुन मुनिराज के पास गये। वहाँ उन्होने बारह व्रत धारण किये और अन्त मे निवेदन किया—भगवन्! मै श्वेताम्बिका नगरी को जा रहा हूँ।

महात्मा कुछ न बोले। मौन रहे।

तब चित्त जी ने पुन कहा—महात्मन्! मैं आज ही जा रहा हूँ।

महात्मा फिर भी मौन।

चित्त जी ने तीसरी बार मे कहा—भगवन्, आप भी अवश्य वहाँ पधारिए। श्वेताम्बिका नगरी अतिशय दर्शनीय है। वहाँ के बाग-बगीचे, महल, बाजार आदि सब मनोरम है।

चित्त प्रधान की बात महात्मा गौर से सुनते रहे। जब उन्होने तीसरी बार मे नगरी की मनोरमता का वर्णन किया तो केशी स्वामी बोले—अच्छा, तुम्हारी नगरी बडी सुन्दर है। बाग-बगीचे सुन्दर है। वहाँ सुगन्धित पुष्प खिलते है। अमृत के समान मधुर फल पथिको को मधुर रसास्वादन करवाते है। मगर चित्त जी, मै तुम से एक बात पूछता हूँ। कोई अतिशय रमणीक सुन्दर उद्यान हो, जिसमे रग-बिरगे सौरभ-सम्पन्न पुष्प खिले हो और वायुमण्डल को सौरभमय बनाते हो, मधुर फलो की प्रचुरता हो, शीतल और सघन छाया वाले वृक्ष हो और वे पथिको को विश्रान्ति लेने के लिए लालायित करते हो, परन्तु उस उद्यान मे यदि कोई क्रूर शिकारी रहता हो तो क्या वहाँ पक्षियो का जाना हितकर होगा? उन्हे वहाँ जाना चाहिए?

चित्त जी—नही भगवन्, ऐसे उद्यान मे पक्षियो का जाना सुरक्षित नही ।

केशी श्रमण—प्रधान जी, उद्यान तो बड़ा मनोरम है न, फिर पक्षी क्यो न जाएँ ?

चित्त—उद्यान के वह सब सुख दुःख के निमित्त बन जाते है, क्योकि वहाँ शिकारी जो रहता है ।

केशी स्वामी—चित्त प्रधान, तुम श्वेताम्बिका नगरी की प्रशंसा करते हो, किन्तु वहाँ भी, उद्यान में शिकारी के समान, एक बडा तीरदाज शिकारी रहता है । दूसरे शिकारी तो पशुओ और पक्षियो का ही शिकार करते हैं । परन्तु वह मनुष्यो को भी नही छोडता । वह बडा अधर्मी, अन्यायी और भयकर शिकारी है । वह झूठे को सच्चा और सच्चे को झूठा करने वाला है । ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति मे हम तुम्हारी नगरी मे आएँ तो कैसे आएँ ?

चित्त प्रधान बडा हाजिर-जवाब था । उसने कहा—महाराज! बात तो ऐसी ही है । वहाँ का राजा बडा ही अत्याचारी है, किन्तु आपको राजा से क्या लेना-देना है ? राजा रूठ भी जाय तो क्या साधु का बिगाड लेगा ? अत एव भगवन् आपको अवश्य पधारना चाहिए । वहाँ बड़े-बड़े धर्मात्मा रहते है । आपके पदार्पण से उन्हे धर्म-श्रवण का लाभ मिलेगा । उनका कल्याण होगा । वे सब आप की सेवा करेंगे । हम आपके लिए अपनी आँखो की पलकें बिछा देंगे ।

केशी स्वामी ने कहा—जैसा अवसर होगा, देखा जाएगा ।

चित्त जी परोक्ष आश्वासन मान कर अपनी नगरी मे वापिस आ गए । कुछ समय पश्चात् केशी मुनि भी अपनी शिष्य-

मण्डली के साथ श्वेताम्बिका नगरी मे पधार गये। नगरी के बाहर एक उद्यान मे ठहरे। उद्यानपाल ने चित्त जी को मुनिराज के पधारने की शुभ सूचना दी। यह अभीष्ट समाचार सुना तो चित्त प्रधान का रोम-रोम पुलकित हो उठा। वह असीम प्रमोदभावना के साथ मुनिराज की सेवा मे उपस्थित हुए। वन्दना और सुख-शान्ति की पृच्छा के पश्चात् निवेदन किया—भगवन् ! आपने यहाँ पधार कर हमारे ऊपर अपार अनुग्रह किया है। आपका दर्शन करके हम कृतार्थ हुए। मेरी एक प्रार्थना है और वह यह कि राजा प्रदेशी को उपदेश देकर धर्म-मार्ग की ओर आकर्षित कीजिए।

केशी स्वामी—ग्राहक दुकान पर आएगा तब ही तो सौदा पट सकता है। ग्राहक पास ही न फटकना चाहे तो उसे माल कैसे दिया जाय ?

चित्त—भगवन् ! यह जिम्मेवारी मेरी। मैं राजा को आपके निकट ले आऊँगा, किन्तु आप उनके राजत्व का ख्याल न करके ठीक-ठीक कोड़े लगाइएगा। जिस से उस की अक्ल ठिकाने आजायेगी।

सज्जनो ! ऐसे कोडे वही लगा सकता है जिसकी आत्मा सवल हो और आत्मा उसी की वलवान् होती है जिसमे सच्चाई और साहस हो। जिनकी आत्मा दुर्वल है, वे क्या कोडे लगा सकते है ?

तो चित्त जी ने कहा—आप ख्याल न कीजिए कि यह राजा है। कडवी-मीठी जैसी भी दवा देना चाहे, निस्सकोच भाव से दीजिएगा, क्योकि आप जो कुछ भी कहेगे अपने शुद्ध दृष्टिकोण से ही कहेगे और राजा के कल्याण के लिए ही कहेगे।

मुनिराज बोले—तुम राजा को यहाँ ले आओ। फिर जो होना होगा, समय पर हो जाएगा।

चित्त जी अब राजा को मुनि के पास लाने का उपाय सोचने लगे। सहसा उन्हें स्मरण आया—दो घोड़े,जो ट्रेण्ड करने—सिखाने-के लिए दिये गये थे, आज ही सीख कर आए हैं। उनकी परीक्षा के बहाने राजा को मुनिराज के पास लाना सरल होगा।

यह सोच कर चित्त जी ने राजा के समक्ष घोडो की परीक्षा करने का प्रस्ताव रक्खा और राजा ने उसे स्वीकार कर लिया। दोनो घोडो पर सवार होकर नगर से बाहर निकले। उन्होंने घोड़ो को इतना दौडाया कि राजा भी पसीना-पसीना हो गया। वह प्यास से घबरा उठा। तब राजा ने चित्त जी से कहा—मेरी राजमहल तक जाने की शक्ति नही है।

वजीर ने कहा—महाराज! आपका उद्यान निकट ही है। वही चल कर विश्राम कीजिए और जलपान कीजिए। उद्यान की शीतल वायु थकावट मिटा देगी।

दोनों बगीचे मे आ पहुँचे। यह वही बगीचा था जिसमे मुनि-राज केशी स्वामी विराजमान थे।

दलाल अपनी चतुराई से ग्राहक को मुकान तक ले आया। बगीचे मे पहुँच कर घोडे टहलने के लिए सौप दिए और दोनो आराम करने लगे। उसी समय राजा ने देखा—सामने ही एक दिव्य मूर्ति शेर की तरह गर्जना कर रही है।

आगे जाने का रास्ता बन्द था, क्योकि जनता धर्मोपदेश सुन रही थी। यह देख कर राजा हैरान हो गया और बोला—यह मूढ

सुनने वाले और मूढ सुनाने वाले कौन है ? इन्हों ने तो रास्ता ही रोक लिया है। मगर सुनाने वाला दीखता है दिव्य रूप वाला और विशाल काया वाला।

चित्त वोले—यह मुनि केशी श्रमण के नाम से प्रख्यात है। इन का सिद्धान्त आप से एक दम विपरीत है। इनका उपदेश है कि जीव अलग और शरीर अलग है।

राजा यह सुनते ही अभिमान के साथ मुनिराज के पास गया। उसने वन्दना किये विना ही पूछा—महात्मा, आप जीव और शरीर को पृथक्-पृथक् मानते है क्या ?

मुनिराज ने मूल प्रश्न की उपेक्षा करके तनिक कडक कर कहा—तू हमारा चोर है। तुझे माल खरीदने का अधिकार नही।

राजा विस्मित और स्तभित रह गया। वह अपने लिए सदैव 'अन्नदाता' और 'पृथ्वीनाथ' सम्वोधन सुनने का आदी था। आज से पहले ऐसे शव्द कभी उसने नही सुने थे। उसने सोचा—इन्होने मुझे चोर कैसे कह दिया ? इनमे इतनी हिम्मत कहाँ से आई ?

राजा ने तव कहा—आपने मुझे चोर कैसे कहा ?

केशी स्वामी—राजन्, कोई व्यापारी लाखो का माल वेचने के लिए किसी शहर मे ले जाय, मगर सदर चुगी के दरवाजे से न जाकर चोरी से माल अन्दर ले जाय और चुगी न चुकावे तो वह आपकी दृष्टि मे क्या होगा ?

राजा—वह चोर कहलाएगा।

मुनिराज ने राजा को फाँस लिया। वोले—तुम मुझ से आध्यात्मिक माल खरीदना चाहते हो, जीव और शरीर के विषय

मे निर्णय चाहते हो, किन्तु महसूल चुकाने से भी वचना चाहते हो ।

राजा की वोलती वद ! तव मुनिराज पुनः वोले—राजन् ! तुम ने वन्दनादि शिष्टाचार का पालन नही किया । क्या यह महसूल से वचना नही है ?

यह देख चित्त जी भी मन ही मन सोचने लगे—डाक्टर वड़ा ज़वर्दस्त मिला है ।

राजा वोला—आपकी आज्ञा हो तो वैठ जाऊँ ?

केशी स्वामी—राजन् ! जगह मेरी नही, तुम्हारी है । यह दरवार सव के लिए खुला है । जो माल खरीदना चाहे, खरीद सकता है ।

राजा ने वैठ कर आत्मा के विषय मे ग्यारह प्रश्न किये । मुनिराज ने उनका युक्तियुक्त उत्तर दिया । जैसा वीमार था वैसे ही अनुभवी डाक्टर भी मिल गए । उन्होने उसका रोग जड़ से उखाड़ दिया । मिथ्यात्व हटा दिया और राजा स्वर्ग का अधिकारी वना । एक भवावतारी हो गया, अर्थात् एक जन्म लेकर मोक्ष मे चला जायगा ।

यह विक्षेपणी कथा थी । इस कथा के प्रभाव से राजा प्रदेशी नरक से वच गया । जो भव्य जीव इस प्रकार की कथा सुनते-सुनाते है और सुनकर अमल मे लाते है, वे ससार-सागर से पार हो जाते है ।

व्यावर

१—१०—५६

प्रभावना आचार (२)

[धर्मकथा]

उपस्थित सज्जनो ।

सम्यक्त्व के प्रभावना आचार के निरूपण मे धर्म-कथा का प्रकरण चल रहा है। धर्म-कथा से धर्म का प्रसार होता है, धार्मिक भावना की जागृति होती है और लोग धर्म का पालन करके अपनी आत्मा का कल्याण कर सकते है।

आक्षेपणी और विक्षेपणी कथा का स्वरूप वतलाया जा चुका है। तीसरी सवेदनी धर्म-कथा है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है—सवेद्यते ससारासारताप्रदर्शनेन मोक्षाभिलाषा उत्पद्यते अनयेति सवेदनी। उक्तञ्च :—

यस्या श्रवणमात्रेण, मुक्तिवाञ्छा प्रजायते।
यथा मल्ली षड् नृपान् प्रत्यवोधयत्

उपर्युक्त सस्कृत-वाक्यो मे सवेदनी कथा का कथन करते हुए १९ वे श्री मल्लीनाथ जी तीर्थकर और उनके छ मित्र राजाओ का कथन किया है जिसका खुलासा विवरण आगे इसी व्याख्यान मे आएगा। हॉ,तो जिस कथा को सुनने से जीव को ससार की असारता विदित हो जाती है वह सवेदनो कथा कहलाती है।

ससार क्या है? ससरण करना अर्थात् आना–जाना, जन्मना–मरना या गति–आगति करना ही ससार है। जिस प्रवचन को सुनने से ससार के प्राणियो को, जो ससार मे आसक्त हो रहे है, घुल-मिल

रहे है, नाशमान भौतिक पदार्थों मे तल्लीन हो रहे है और अपना अहित कर रहे है,उन्हें वस्तु स्वरूप का वास्तविक ज्ञान हो जाय,ससार की असारता का बोध हो जाय और वे समझ जाएँ कि ससार दु.खो का घर है और आत्मा न तो शरीर रूप है और न इन्द्रिय-रूप है, वही सवेदनी या सवेगनी धर्म कथा है।

भगवान ने फर्माया है—

एव भव ससारे ससरइ सुहासु हेहि कम्मेहि।
जीवो पमाय बहुलो समय गोयम ! मा पमायए॥

अर्थात्—हे गौतम ! प्रमादी जीव अपने शुभ और अशुभ कर्मो के उदय से निरन्तर ससार मे भटक रहा है। इसमे कही स्थायी रूप से रहने का स्थान नही है। कदाचित् रहने को बडी से बडी उम्र मिल जाय तो भी उसके पश्चात् मरना पडता है और अन्यत्र जाना पडता है। ससार चार प्रकार का है—नरक,तिर्यञ्च,मनुष्य और देव ससार। इन चारो मे जीव का ससरण होता रहता है। एक जगह से जाना ही दूसरी जगह आना है। किसी के लिए जो जाना है दूसरो के लिए वही आना है। जिनके लिए आना है, वे खुशियाँ मनाते है और जिनके लिए जाना है वे रोते-पीटते है,मातम मनाते हैं। इस प्रकार ससार की स्थिति बडी विषम है।

ससार मे विभिन्न अपेक्षाओ से शब्दो का प्रयोग होता है। मान लीजिए नदी के दोनो किनारो पर दो मनुष्य खड़े है एक उनमे से इधर वाला कहता है—वह परले पार का है। और उधर वाला कहता है—वह परले पार का है। इस व्यवहार का कारण यह है कि दोनो के बीच नदी है। यदि नदी न होती तो यह शब्द-योजना भी न होती। इसी प्रकार कर्म बीच मे पड़े है जिससे आना-जाना हो रहा है। कर्म

वीच मे न पडे होते तो आना-जाना भी न होता। व्यक्ति (आत्मा) वही का वही है, फिर भी कर्म-नदी के कारण किसी अपेक्षा से आर और किसी अपेक्षा से पार कहलाता है। कर्मोदय की वदौलत ही यह जीव कभी नरक और कभी तिर्यञ्च, कभी मनुष्य और कभी देवता कहलाता है।

शुभ कर्मो के उदय से शुभ और अशुभ कर्मो के उदय से अशुभ गति होती है। पूर्ववद्ध कर्म यथासमय उदय मे आते है। परन्तु कर्मो का वध यो ही नही हो जाता। प्रमाद के वशीभूत होकर जीव कर्मो का वध करता है। अतएव भगवान् चेतावनी देते है—हे गौतम! इस ससरण को–आने जाने को— खत्म करने के लिए समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

यह प्रमाद ही तो है जो जीव को रुला रहा है—भटका रहा है। प्रमाद पॉच प्रकार का है—(१) कपाय अर्थात् क्रोध, मान, माया और लोभ। (२) विषय—पाँच इन्द्रियो के २३ विषय और २४० विकार। (३) निन्दा – दूसरे के विद्यमान या अविद्यमान दोषो को प्रकट करना। (४) विकथा—फिजूल वाते करना। जिनसे आना-जाना कुछ नही, ऐसी वातो से क्या लाभ। पानी को विलोने से मक्खन नही निकलता, वल्कि पानी का स्वाद और विगड जाता है। (५) मद्य– शराव से क्या हानियाँ होती है, यह कौन नही जानता। शरावी की दुर्दशा वडी दयनीय हो जाती है। उसका जीवन निरर्थक वन जाता है और लोक-परलोक विगड जाता है।

इन पॉच प्रमादो मे—भूलो—मे फँस कर यह जीव ससार मे चक्कर काट रहा है और मुक्ति से वचित हो रहा है। जीव प्रमाद का सेवन करता है और वही प्रमाद उसके दुख का कारण वन जाता है।

संसारभ्रमण करते मनुष्य-जन्म बडी कठिनाई से मिलता है। मनुष्य जन्म मे आर्य-कुल दुर्लभ और उसमे भी धर्म-श्रवण का अवसर मिलना दुर्लभ है। कदाचित् धर्म-श्रवण की प्राप्ति हो गई तो धर्म पर श्रद्धा होना तो अत्यन्त कठिन है। शास्त्र सुनते-सुनते वर्षों के वर्ष व्यतीत हो गये, जमाने गुज़र गये, सुनने मे कुछ कसर नही रहने दी, 'किन्तु श्रद्धा पुनरपि दुर्लभा' श्रद्धा होना फिर भी कठिन ही है।

कई भव्य प्राणियो के चित्त मे श्रद्धा का प्रादुर्भाव हो जाता है। और वे समझ जाते है कि अरिहन्तो की वाणी सत्य है, उसमे शका को कोई स्थान नही है, फिर भी शास्त्रकार-कहते है कि उस श्रद्धा के अनुसार अमल करना कठिन होता है।

मंज़िल पर मंज़िल चढ़ता जाने वाला तो शिखर पर पहुँच जाता है, किन्तु एक जगह बैठ रहने वाला अपना रास्ता नही काट सकता।

तो सवेदनी कथा बतलाती है कि—ऐ प्राणियो! ससार के भौतिक पदार्थों के प्रति तुम्हारी जो आसक्ति हो रही है,तुम जो समझ रहे हो कि यह पदार्थ हमारे है और हम इनके है और यह पदार्थ सार रूप है, यह तुम्हारा सब से बडा भ्रम है। यह पदार्थ सार रूप नही है, सुख दायक नही हैं। ये नाशवान पदार्थ तुम्हे चक्कर मे डाल रहे हैं। यह लकडी के बुरादे के लड्डू के समान निस्सार है।

सज्जनो! ससार मे सार होता तो महापुरुष ससार का त्याग न करते। वे विशाल राजप्रासादों को, आज्ञा मे चलने वाली और अप्सराओ को भी मात करने वाली रमणियो को और भोगोपभोग की उत्तम सामग्री को तिनके की तरह त्याग कर जगल की राह क्यो

लेते ? अपनी कोमल काया को तपस्या की भट्टी मे क्यो तपाते ? शालिभद्र जैसे ऐश्वर्यशाली भी दीक्षा अगीकार करके, घर-घर भिक्षा ले कर जीवन यापन करने को क्यो उद्यत होते ? उन्होने समझ लिया था कि ससार के भोग्य पदार्थ आत्मा के पतन के कारण वनते है और अधोगति के गहरे गर्त मे गिराते है। ये विष-मिश्रित मोदक है जो दीखने मे सुन्दर और खाने मे स्वादिष्ट है, परन्तु परिणाम मे दु खदायी है। अत एव इनमे मत लुभाओ और शीघ्र से शीघ्र इनका त्याग करो।

जव तक मनुष्य भोगोपभोगो पर आसक्ति रखता है तव तक उसे उनमे आनन्द का अनुभव होता है, किन्तु जव उसे वास्तविक ज्ञान होता है तो वह समझ जाता है कि ये मेरे जीवन को नष्ट करने वाले हैं, मेरी आत्मा को मलीन वनाते है और दारुण दुख के हेतु है, तव वह इनसे विरत हो जाता है। उस समय आसक्ति का स्थान विरक्ति ग्रहण कर लेती है। उस अवस्था मे आत्मा मे निस्पृहता और निराकुलता से जो आह्लाद उत्पन्न होता है, उसकी कोई तुलना नही हो सकती।

शरावी शराव को,मासाहारी मास को, व्यभिचारी व्यभिचार को और असत्यवादी असत्य को अच्छा समझता है और कभी-कभी अनिवार्य भी समझ वैठता है, उनमे आनन्द का अनुभव करता है, परन्तु जव इनके नुकसान को समझ लेता है तो फिर कोई जवरदस्ती भी सेवन कराना चाहे तो भी नही करता। चोर चोरी करने मे मजा मानता है परन्तु जव उसकी आत्मा मे जागृति उत्पन्न हो जाती है और वह समझ लेता है कि नही, यह कार्य अच्छा नही, निन्दनीय है, इससे यहाँ और परलोक मे भी दुखी होना पडेगा, तव वह भूखा मर जाना कवूल करता है, परन्तु चोरी करने की चेष्टा नही करता।

तो जिस कथा के श्रवण मे त्याग-वैराग्य का भाव जागृत हो, ससार निस्सार प्रतीत हो, मोक्ष प्राप्ति की इच्छा हो, कर्मो को नष्ट करने की भावना जागृत हो, वह सवेदनी कथा है।

भगवान् मल्लीनाथ ने, राजकुमारी के रूप मे, विवाह करने के लिए आये हुए, पूर्वजन्म के अपने छह मित्रो को अवसर पाकर यह कथा सुनाई थी और उनके अन्तर्नेत्रो को खोल दिया था। श्रीमद् ज्ञातासूत्र मे इस कथा का उल्लेख है। सक्षेप मे वह इस प्रकार है—

उन्नीसवे तीर्थंकर मल्लीनाथ जी स्त्री शरीर मे उत्पन्न हुए। अनन्त तीर्थंकर पुरुष के रूप मे ही उत्पन्न होते है, मगर ये स्त्री-रूप मे हुए, इस आश्चर्यमय घटना का एक बडा कारण था।

पिछले जन्म मे वे महाबल नामक राजा थे। बड़े साम्राज्य के अधिपति थे और सुन्दर रीति से शासन चलाते थे। इनके छह मित्र थे जो करीब-करीब समवयस्क थे। वे साथ-साथ खेले, कूदे, पढ़े बढे। महाबल राज्य के अधिकारी हुए और छहो मित्र अपने-अपने काम मे लग गये। वे स्वार्थ साधन के लिए मित्र नही बने थे, सुख-दुख मे काम आने वाले थे। उनकी मैत्री शुद्ध और पवित्र थी। कुछ काल तक ससार के आमोद-प्रमोद का अनुभव करने के पश्चात् राजा महाबल को वैराग्य उत्पन्न हुआ। राज्य की ओर से उनकी चित्त-वृत्ति हट गई और वे सयम ग्रहण करने के लिए तैयार हो गये।

उस समय महाबल ने अपने मित्रो को बुला कर कहा—तुम लोग सदा मेरे सुख-दुःख मे साथ रहे हो। परन्तु अब मैं त्यागमय जीवन अगीकार करना चाहता हूँ। आप लोगो की क्या इच्छा है? अगर साथ देना चाहो तो अवश्य आ जाओ।

मित्रो ने देखा—राजा का चित्त वैराग्य से परिपूर्ण है। पहले जो हास्य-विनोद और राग-रग होते थे, वह दुनिया और थी। अव इनके जीवन की दुनिया दूसरी ही हो गई है। चेहरे पर वैराग्य की गभीरता झलक रही है।

मित्रो ने पूछा—आपकी इस उदासीनता का कारण क्या है ?

महावल ने उत्तर दिया—मैं ने ससार के असली स्वरूप को समझ लिया है। इतने दिन अन्धकार मे भटक रहा था। अब प्रकाश मिला है। उस प्रकाश मे देखता हूँ तो समस्त ससार असार दिखलाई देता है। राग-रग भयकर जान पडते है। अत एव मै ने साधु बनने का निश्चय किया है। आप लोगो का क्या विचार है ?

छहो मित्रो ने देखा—महावल अन्तरतर से विरक्त हो गये है। विरक्ति की जो चिनगारी भीतर छिपी थी, अवसर पाकर प्रज्वलित हो उठी है। अन्त मे उन्होने निर्णय करके महावल को सूचित कर दिया—आपका विचार साधु वनने का निश्चित हो गया है तो हम सव भी आपका साथ देगे। जनम के साथी है तो इस कल्याण-कार्य मे भी साथी ही रहेगे।

सज्जनो ! मित्र वनने वाले वहुत होते है, पर मैत्री निभाने वाले विरले ही होते है। स्वार्थियो की मित्रता भग होते देर नही लगती। जव तक उनका स्वार्थ सिद्ध होता रहता है, तव तक उनकी मित्रता वनी रहती है और ज्यो ही स्वार्थ मे वाधा पडी कि मित्रता को वे धता वता देते है। परन्तु इनकी मित्रता स्वार्थमय नही, सच्ची थी। इस कारण महावल के प्रस्ताव को सव ने प्रसन्नता-पूर्वक स्वीकार कर लिया।

महावल वोले—आप सव दीक्षा के लिए तैयार है तो अव जो

एक-एक क्षण जा रहा है, वह अनमोल है। धर्म के कार्य मे प्रमाद करना उचित नही है। अत एव शीघ्र ही आप लोग आवश्यक व्यवस्था करके और अनुमति लेकर आ जाइए।

सव अपने-अपने घर की ओर विदा हुए। गृहस्थी का भार अपने-अपने उत्तराधिकारी को सौप कर महावल राजा के पास लौट आये।

सातो मित्रो ने आध्यात्मिक क्षेत्र मे मित्रता निभाने के लिए दीक्षा धारण कर ली और तपस्वी होकर वे कर्मो के साथ होली खेलने लगे।

कुछ समय पश्चात् राजर्षि महावल के मन मे एक अप्रशस्त भावना उत्पन्न हुई। उन्होने सोचा—मैं यहाँ वडा हूँ तो ऐसी करनी करूँ जिससे आगे भी अपने साथियों से वडा कहलाऊँ! यह सोच कर उन्होने कपट करना शुरू किया।

सज्जनो! इस वड़प्पन के भाव ने दुनिया को वर्वाद कर दिया। साधु वन गए, राजपाट और वैभव को लात मार दी, मगर अहकारजनित वडप्पन की भावना ने वहाँ भी पीछा न छोडा। उनके साथी उपवास अर्थात् एक दिन का व्रत करते तो महावल मुनि वेला यानी दो दिन का व्रत कर डालते और उनके साथ पारणा न करते। जव वे सव वेला करते तो ये तेला ठान लेते। इस प्रकार तपस्या करने मे कपट का सेवन करने लगे।

यथासमय काल करके सातो देवलोक मे उत्पन्न हुए। वहाँ से चय कर महावल देव मिथिला के राजा कुभ की रानी पद्मावती की कुक्षि मे कन्या के रूप मे आए और शेष छहो विभिन्न प्रदेशो के राजाओ के यहाँ उत्पन्न हुए।

कुमारी का जन्म होने पर तीर्थंकर के जन्म-कल्याणक के समय होने वाली सब बाते हुई। तपस्या के प्रभाव से मल्ली कुमारी को असाधारण रूप-सम्पत्ति प्राप्त हुई। तीर्थंकरो का रूप अद्वितीय होता ही है। उनके रूपसौन्दर्य का कोई मुकाबिला नही कर सकता। मानतुगाचार्य ने ठीक ही कहा है —

> यै शान्तरागरुचिभि परमाणुभिस्त्व,
>
> निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत ।
>
> तावन्त एव खलु तेऽप्यणव पृथिव्या,
>
> यत्ते समानमपर न हि रूपमस्ति ।

तीनो लोको मे असाधारण सौन्दर्यशाली प्रभो ! जिन अतिशय सुन्दर परमाणुओ से आपका शरीर बना है, जान पडता है कि इस विशाल भूतल पर वे परमाणु उतने ही थे। इस कल्पना का कारण यह है कि आपका जैसा सुन्दर रूप है अन्यत्र कही भी दिखाई नही देता।

इस प्रकार की रूप श्री से सम्पन्न मल्ली कुमारी ने धीरे-धीरे तारुण्यवय मे प्रवेश किया। तब विवाह का प्रश्न सामने आया।

माता-पिता की प्राय यही इच्छा होती है कि बच्चे की शादी मेरे सामने हो जाय। लोग यह अपनी आत्म-कथा स्वामी जी को भी सुनाते हे। वे कहते है—महाराज ! सब कुछ कर लिया, एक बच्चे की शादी करना शेष है। वास्तव मे उनके भाव यही होते है कि कही स्वामी जी अच्छा सम्बन्ध जोड दे। परन्तु भाई,स्वामी जी कोई नाई या सेवक तो है नही, जो शादी-सम्बन्ध जोडते फिरे। जिन बातो को नापसन्द करके हम ने त्याग दिया, उन बातो मे अब हम से भाग लेने की क्या आशा करते हो ? ऐसी बाते सुनना भी साधु

को शोभा नही देता। साधु को तो गृहस्थ के व्यवहारो से दूर ही रहना चाहिए। भगवान् ने साधु को चेतावनी दी है—'ऐ साधु! तेरी सफेद शाल मे थोडा-सा भी दाग लग गया तो वह बुरा दीखेगा। प्रत्येक साधु-साध्वी को इस सूत्र को स्मरण रखना चाहिए। इस सूत्र मे गम्भीर आशय निहित है। आत्मा के जागरण का भाव छिपा हुआ है। कहा है—

विजहित्तु पुव्वसजोगं, न सिणेह कहिंचि कुव्वेज्जा।
असिणेह सिणेह करेंहि, दोसपओ सेहि मुच्चए साहू॥

—उत्तरा० अ ८, गा २

अरे मोक्ष-पथ के पथिक श्रमण! इन स्नेहियो मे ज्यादा स्नेह मत कर। ये गृहस्थ लोग स्नेह सूत्र मे बँधे हुए है,किन्तु हे साधु! तूने स्नेह के धागे को तोड फेका है।

शास्त्र कहता है—इन स्नेहियो मे स्नेह मत करो और जो स्नेह-मोह मे फँसे है, उनके सम्पर्क मे ज्यादा मत आओ। अगर तुम अधिक दखल दोगे तो कभी तुम्हारे सयम का दिवाला निकल जायगा। वे तुम्हे भी अपने जैसा ही बनाने का प्रयत्न करेंगे। उनमे से किसी को स्त्री चाहिए, किसी को पुत्र चाहिए और किसी को धन चाहिए। तुम उनके मोह मे पड गये तो पथ-भ्रष्ट होते देर नही लगेगी। उनसे साठ-गाँठ की नही कि बाबा जी फिसले नही।

जिस चने मे घुन लग जाता है, उसका पौष्टिक तत्त्व नष्ट हो जाता है। ऊपर का खोल ही बाकी रह जाता है। इसी प्रकार जो साधु गृहस्थो के अधिक सम्पर्क मे रहता है। उनके साथ सांसारिक विषयो मे पत्र व्यवहार करता है, घटो घुल-घुल कर गृहस्थ-

का एकमात्र कारण यही है कि मिथ्यात्वरूपी घास का निदाण नही किया गया। इसी प्रकार समकित रूपी धान की फसल ठीक तरह न पक सकी।

आप प्रतिदिन प्रतिक्रमण मे वोलते है—मेरे समकितरत्न मे मिथ्यात्व-रूपी रज-मैल लगा हो तो 'तस्स मिच्छामि दुक्कड' और फिर दिन भर अगर वही दौर चलता रहे तो फिर उस 'मिच्छामि दुक्कड' का कोई खास महत्त्व नही रहता। यह तो वही वात हुई कि सीने वाले ने एक वालिश्त सिया और फाडने वाले ने दो वालिश्त फाड दिया। ऐसे सीने का क्या महत्त्व रह गया ?

इधर आप धर्मक्रिया करते हो और उधर उसे मिथ्यात्व-रूपी कैंचो से काटते जाते हो। इसी कारण आप उस धर्मक्रिया से यथेष्ट लाभ नही उठा सकते। अत मिथ्यात्व के घास-फूस को समूल उखाड फैकने की वडी आवश्यकता है। फिर आप देखेगे कि आप की आत्मा मे कैसी पवित्रता आती है।

मिथ्यात्व दो प्रकार का है—लौकिक और लोकोत्तर। सच्चे देव, गुरु और धर्म पर श्रद्धा न होना मिथ्यात्व है। कहने को तो वहुत है, पर प्रश्न तो अमल का है। सुन कर अमल न किया तो सुनना किस काम का ? आपको चाहिए कि वीतराग देव, निर्ग्रन्थ गुरु और अनेकान्तमय एव दयामय धर्म पर श्रद्धा करे और कुदेव, कुगुरु एव कुधर्म से अपने को विमुख करे। परन्तु आपको श्रद्धा तो कुदेव आदि पर से हटती नही है। आपकी यह वीमारी नयी नही, वहुत पुरानी है।

तो धर्म-कथा सुनने का सार यही है कि अनन्त काल से पिशाच की तरह लगे मिथ्यात्व को हटा कर सम्यक्त्व की ओर आकर्षित होओ।

मैं आपको बदल-बदल कर नुस्खे बतलाता जा रहा हूँ, दवा पलट-पलट कर दे रहा हूँ, परन्तु रोग पर यदि असर नही हो रहा है तो इसका प्रधान कारण यही हो सकता है कि रोग असाध्य-सा हो चुका है।

कई लोग कहते है कि मैं खण्डन करता हूँ परन्तु इस मिथ्यात्व को निकालने के लिए और रोगी को तन्दुरुस्त बनाने के लिए मिथ्यात्व-रोग का खण्डन करना पड़ेगा और करना ही पडेगा। जो मास गल गया है, डाक्टर को उसका आपरेशन करना ही होगा। डाक्टर उस मास को काटता है तो रोगी चूँ-चाँ करता ही है। परन्तु डाक्टर उसकी परवाह नही करता। और उस गले मास को काट देना ही रोगी के लिए सुखदायी है। इसी प्रकार मिथ्यात्व का खडन किये बिना यह रोग दूर होने वाला नही है। मिथ्यात्व का खण्डन तो बडे-बड़े तीर्थकरो ने किया है। खोटी चीज़ तो नष्ट करने योग्य ही होती है।

आत्मा मे मिथ्यात्व-रूपी जो चोर घुस गए है, उन्हे निकालना ही पडेगा। विक्षेपणी कथा इसी बीमारी को मिटाने के लिए की जाती है। इसका प्रयोजन भी मिथ्यात्व-रूपी सडे मास को काट कर फैंक देना है। इसी मे आत्मा का कल्याण निहित है। अन्यथा रोग बढता-बढता सम्पूर्ण शरीर मे फैल जायेगा और जहर का फैलाव हो कर सारे जीवन को ही समाप्त कर देगा।

तो जिसके द्वारा मिथ्यात्व का खण्डन हो और मनुष्य के हृदय से मिथ्यात्व का विष दूर हो जाय, उसको विक्षेपणी कथा कहते है। महामुनि केशी स्वामी ने राजा प्रदेशी को यही विक्षेपणी कथा सुनाई थी।

सज्जनो ! राजा प्रदेशी के रोम-रोम मे मिथ्यात्व व्याप्त था। उसकी पक्की श्रद्धा थी कि शरीर के अतिरिक्त आत्मा की कोई सत्ता नही है। जब आत्मा का ही अस्तित्व उसे स्वीकार न था तो परलोक—पुनर्जन्म—का तो कोई प्रश्न ही नही था। उसकी मान्यता थी कि शरीर के साथ ही चेतना की समाप्ति हो जाती है। मगर उसका सिद्धान्त बिलकुल मिथ्या था, क्योकि तलवार और चीज है तथा म्यान और चीज है। डिबिया अलग है और उसमे चमकने वाले हीरे-पन्ने अलग चीज है। तिजोरी और उसमे रक्खे माल को एक नही कहा जा सकता। मक्खन और छाछ भिन्न-भिन्न है और फूल तथा सुगन्ध भी एक नही है। ऐसा कौन बुद्धिमान् होगा जो दोनो को एक मान लेगा ? यह हरगिज नही हो सकता।

इसी प्रकार शरीर पौद्गलिक है—मैटर से बनने वाला है और नष्ट हो जाने वाला है। इसके विपरीत आत्मा अविनाशी है। आत्मभाव से न उसका जन्म है न मृत्यु है। आत्मा मे जन्म-मरण का आरोप-मात्र होता है, वास्तव मे जन्म पुद्गल का होता है और मरण भी पुद्गल का ही होता है। आत्मा अजन्मा है और अमर है। नया अस्तित्व होना जन्म है और अस्तित्व मिट जाना मृत्यु है। आत्मा मे यह दोनो ही बाते नही है। आत्मा कभी नये सिरे से—अभूतपूर्व रूप से—अस्तित्व को धारण नही करती और न कभी अस्तित्वहीन बनती है। वह तीनो कालो मे सदैव विद्यमान है और रहेगी। कही न कही, किसी न किसी योनि मे उसकी सत्ता सदैव रहती है। यहाँ नही तो अजमेर मे और अजमेर मे नही तो जोधपुर, दिल्ली, कलकत्ता या किसी परदेश मे रहती है। चारो गतियो मे से किसी न किसी गति मे उसका अस्तित्व रहता ही है। अगर चारो गतियो मे से किसी मे न रहे तो पचम-गति—मुक्ति—मे जाएगी।

किन्तु प्रदेशी के दिमाग में तो यही बात घुसी हुई थी कि जब शरीर से आत्मा भिन्न नही है तो परलोक भी नहीं है, पुण्य-पाप भी नही है और धर्म-अधर्म भी नहीं है। राजा इस निष्कर्ष पर यूँ ही नही पहुँच गया था। उसने मनुष्यो को काट-काट कर देखा था कि जीव कहाँ है और काला, नीला, पीला या कैसा है ? मगर इस प्रकार देखने से जीव दिखाई नही देता। सच तो यह है कि गुरु के विना ज्ञान नही होता—

गुरु विन माला फेरिए, गुरु विन कैसे ज्ञान ?
गुरु विन ज्ञान हराम है, पूछो वेद कुरान ॥

सज्जनो ! गुरु के विना प्राप्त किया गया ज्ञान सार्थक नही होता। ऐसा व्यक्ति कभी अपनी राह से फिसल जाता है। कभी-कभी गलत चीज दिमाग मे जम जाती है, जिस से अकल्याण हो जाता है।

राजा प्रदेशी को कोई गुरु नही मिला था, इसलिए उसके दिमाग में मिथ्यात्व ने घर कर रक्खा था। इसी कारण उसके हाथ खून से भरे रहते थे। किन्तु जब उसके मिथ्यात्व का जहर उतरने का समय आया तो एक महान् गारुड़ी मन्त्रवादी का सयोग हो गया। उन्हो ने ऐसा मन्त्र पढ़ा कि राजा का जहर उतर गया और जीवन पतन से बच गया।

मगर वे मन्त्रवादी अचानक यूँ ही नही आ गये थे। उन्हे बड़ी युक्ति से लाया गया था और जहर उतारने के लिये ही लाया गया था। राजा प्रदेशी के भाई चित्त जी थे, जो वज़ीर भी थे। वे एक बार राजकाज के लिए श्रावस्ती नगरी, जो आजकल स्यालकोट के नाम से प्रसिद्ध है, वहाँ गये।

पाकिस्तान वनने से पहले स्यालकोट स्थानकवासी जैनो का गढ था। वहाँ वडे-वड़े परिवार रहते थे। एक एक चूल्हे पर ६०-७० आदमियो का भोजन वनता था। जैनो का अच्छा सर्वस्व था।

प्रदेशी राजा श्वेताम्बिका नगरी का शासक था। चित्त जी सामत्थी नगरी के राजा के पास गए तो उसने उनका सुन्दर स्वागत किया। आदर-सम्मान के साथ उन्हे राज-मार्ग के निकट कोठी मे ठहराया। दोनो के वीच आवश्यक विचार-विनिमय होता रहा और चित्त जी जिस काम से गए थे, वह चलता रहा।

भाइयो! पुण्य प्रवल होता है तो 'जव होवेंगे दयाल तव देवेंगे वुला के' इस उक्ति के अनुसार देने वाला वुला कर दे देता है। पुण्य न हो तो माँगने पर भी धक्के ही मिलते हैं।

जव चित्त जी अपना राजकीय कार्य कर रहे थे, उन्ही दिनो केशी स्वामी अपने शिष्यो के साथ वहाँ पधार गये और आज्ञा लेकर वाग मे उतरे।

एक-एक मुनि की चढती हुई कला होती है। त्यागी महापुरुष की छाप दूसरो पर पडे विना नही रहती। मुनिराज के शुभागमन का समाचार नगर मे पहुँचा तो टोले के टोले लोग उनके दर्शनार्थ और वाणी को सुनने के लिए पहुँचने लगे। चित्त ने उन्हे जाते देख अपने सेवक से पूछा—आज इतने लोग क्या कही मेला देखने जा रहे है?

सेवक वोला—नही महाराज, ये मेला देखने नही जा रहे है। वाग मे केशी नामक एक महात्मा पधारे है। उनके दर्शन और उपदेश-श्रवण के लिए जा रहे है। वे वडे ज्ञानी और तपोनिधि है।

चित्त जी वोले—हमे भी इस सुअवसर से लाभ उठाना चाहिये। मुनिराज की उपासना करनी चाहिए।

सेवक वोला—अवश्य स्वमिन् ! पधारिए,

चित्त जी सवारी पर आरूढ होकर उद्यान की ओर चले, वहाँ पहुँच कर और सवारी से उतर कर केशी श्रमण की उपदेश-सभा मे पहुँचे।

केशी स्वामी ने चित्त प्रधान को देख कर सोचा—ग्राहक तो आ गया है, इसे इसके अनुरूप ही माल दिखलाना चाहिए। यह सोच कर उन्होने चित्त जी को तथा आई हुई परिषद् को समयानुकूल उपदेश देना प्रारभ किया। चार प्रकार की कथा का विस्तृत वर्णन करते हुए दो प्रकार के धर्म का स्वरूप भी दिखलाया। मुनिराज ने कहा —

दुनिया के लोगो ! धर्म के दो रूप है—गृहस्थ-धर्म और साधु-धर्म। साधुओ अर्थात् त्यागियो का धर्म पाँच महाव्रत-रूप होता है। वे हिसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्म और परिग्रह का पूर्ण रूप से त्याग करते हैं। किन्तु सभी लोग इस धर्म का पालन नही कर सकते।

मुनिराज ने देखा कि सभी इस माल को लेने वाले नही हैं क्योकि साधु-धर्म के दाम ऊँचे है। अत एव उन्होने अपेक्षाकृत कम कीमत की गृहस्थ-धर्म की वस्तुएँ भी दिखाई, उन्होने कहा—'सभी मनुष्य साधु वनने मे समर्थ नही है, लेकिन गृहस्थी मे रह कर भी मनुष्य अपनी आत्मा का वहुत कुछ कल्याण कर सकता है।'

यह कह कर उन्होने श्रावक के वारह व्रतो का वर्णन किया। पहले व्रत का विवेचन करते हुए कहा—श्रावक को चाहिए कि वह निरपराध त्रस्त प्राणियो की हिसा का त्याग कर दे। उसे अपराधी की हिंसा का त्याग अनिवार्य नही, क्योकि वह गृहस्थी मे वैठा है। अगर कोई चोर, डाकू, गुडा उस पर आक्रमण करता है अथवा उस

की वहिन-बेटी या धन सम्पत्ति का अपहरण करता है तो उनकी रक्षा करना उसका कर्त्तव्य हो जाता हे। उनकी रक्षा करने मे कदाचित् चोर या गुडे की मृत्यु हो जाए तो भी श्रावक अपने धर्म से पतित नही होता। उसका व्रत भग नही होता।

सज्जनो! जैन धर्म ऐसा लीचड धर्म नही है कि वह इतना अन्याय होने पर भी हाथ पर हाथ रख कर, टुकर-टुकर देखते रहने का विधान करे। वह कहता है कि गृहस्थ को अन्याय का मुकाविला करना ही पडेगा, पर विना अपराध एक कीडी को भी मत सताओ।

प्राचीन काल मे कई श्रावको ने अपने देश और धर्म की रक्षा के लिए डट कर शत्रुओ का मुकाविला किया और यो मन से प्राणी-मात्र के भी शुभचिन्तक वने रहे।

दूसरे व्रत मे साधु तो पूर्णतया झूठ का त्यागी होता है, किन्तु गृहस्थ की भूमिका ऐसी नही होती कि वह इतना त्याग कर सके, उसे अपना और अपने कुटुम्व का भरणपोषण करना पडता है। इस के लिए कभी असत्य का भी आश्रय लेना पडता है। फिर भी उसे स्थूल असत्य का त्याग तो करना ही चाहिए, अर्थात् उसे ऐसे असत्य का सेवन नही करना चाहिए जिसमे उसकी आत्मा का पतन हो और दूसरे का वुरा हो। कन्या के विषय मे, पशु धन के विषय मे, भूमि के विषय मे, धरोहर के विर्षय मे उसे असत्य का प्रयोग नही करना चाहिये। झूठी गवाही नही देनी चाहिए।

कई लोग स्वार्थ या द्वेष के वशीभूत होकर सुन्दर कन्या को भी कुरूप कह देते है, छोटी उम्र की हो तो वडी उम्र की और वडी उम्र की हो तो छोटी उम्र की वतला कर अपनी थैली भरना चाहते है, ऐसा करने से वडा अनर्थ हो जाता है और दूसरो का जीवन खतरे

मे पड जाता है। अत एव गृहस्थ को भी ऐसे अनर्थ कर स्थल मे असत्य से वचना चाहिए।

किसी ने विश्वास करके अपनी जिन्दगी की कमाई सुरक्षित रखने के लिए तुम्हारे पास जमा कर दी धरोहर के रूप मे। आवश्यकता पडने पर वह माँगता है और तुम अमानत मे खयानत करके उसे हडप जाते हो और कहते हो कि हमारे यहाँ कोई रकम जमा नही है; तो यह वडा भारी असत्य है और इस से घोर अनर्थ क्या हो सकता है! धन मनुष्य का वाह्य प्राण कहलाता है और उसके चले जाने से उसे तीव्र आघात लगता है। यहाँ तक कि उसका प्राणान्त भी हो जाता है।

जिस विपय मे तुम्हे सत्य का पता न हो, क्या चक्र चल रहा हैं, चक्रव्यूह की रचना कैसे और किस के द्वारा, किस प्रयोजन मे की गई है, उस मे साक्षी देना भी स्थूल असत्य है। वहुत-से लोग क्षुद्र स्वार्थ के लिए न्यायालयो मे जाकर झूठी गवाही दे देते है, यह एक महान् सामाजिक अपराध भी है और न्याय-व्यवस्था की जडो को खोखला करता है। श्रावक को इस अनर्थकर असत्य मे भी वचना चाहिए।

तीसरे व्रत मे मुनिराज ने वतलाया कि श्रावक को स्थूल चोरी का त्याग करना चाहिए। अर्थात् गृहस्थ को ऐसी कोई वस्तु स्वामी की विना आज्ञा ग्रहण नही करनी चाहिए, जिस का ग्रहण करना लोक मे चोरी कहलाता है, जिस से राज्य के कानून के अनुसार दण्ड का भागी होना पडता है और दुनिया मे तिरस्कार का भाजन वनना पडता है। साधु तो दाँत साफ करने के लिए एक तिनका भी विना दिये नही ले सकता, पर गृहस्थ को स्थल अदत्तादान से तो वचना ही चाहिए।

गृहस्थ को चाहिये कि वह जब दूसरे के घरमे जाय तो सावधान रहे। इस प्रकार की सावधानी जीवन को उज्ज्वल बनाने के लिए आवश्यक है। पर निरन्तर अभ्यास से ही वह आती है।

एक मणियारा अपनी गधी पर चूडियाँ रख कर देहात मे बेचने जाता था। वह गधी को तेज चलाने के लिए कहा करता था—'चल बेटी, चल अम्मा," उस का यह अनोखा सबोधन सुन कर लोग कहते—यह पागल तो नही हो गया है! कभी गधी को माँ बनाता है और कभी बेटी बनाता है!

एक ने उस से पूछा - यह क्या है ?

मणियारे ने कहा—गधी है।

वह—फिर इसे 'माँ' और 'बेटी' क्यो कहते हो ?

मणियारा—देखो भाई, मैं चूडियाँ बेचने के लिए गृहस्थो के घर जाता हूँ। वहाँ माताओ, बहिनो और देवियो से वास्ता पडता है। उनका हाथ पकड कर चूडियाँ पहनाता हूँ। यह काम करते समय मेरा मन न बिगड जाय और मेरी बदनामी न हो जाये, इस उद्देश्य से मै अपनी जबान को ऐसा कह-कह कर साध रहा हूँ, नियन्त्रित कर रहा हूँ,जिस से मै परायी स्त्रियो को माता, बहिन और पुत्री कह कर/पुकार सकूँ और इसी दृष्टि से देख सकूँ। अगर मै यहाँ भूल कर सकता हूँ तो वहाँ भी भूल कर सकता हूँ। यहाँ वाणी पर काबू रखता हूँ तो वहाँ भी काबू रख सकूँगा और इस से मानसिक सयम भी रखने मे समर्थ हो सकता हूँ।

सज्जनो! मनुष्य को अपना जीवन उज्ज्वल बनाने के लिए बडी सावधानी की आवश्यकता है। मनुष्य अपनी दिन-चर्या मे जैसे शब्दो का प्रयोग करता है, उसका प्रभाव उस के मस्तिष्क पर

अवश्य पडता है। माता कहने से पूज्यभाव और वहिन-वेटी कहने से वात्सल्य-भाव का स्रोत हृदय मे उमड पड़ता है। मन के विचार उस विमल स्रोत मे वह कर साफ हो जाते हैं।

शब्दो का महत्त्व कम नही है। शब्दो मे भी पुण्य-पाप और धर्म-अधर्म गर्भित है। सुख-दुख, मान-अपमान और सच-झूठ सब शब्दो मे समाया हुआ है। अपशब्दो के प्रयोग से पाप, अधर्म, तिरस्कार, दुख और अनर्थ की प्राप्ति होती है। अत एव खजाने मे से शब्दो को निकालने से पहले ज्ञान-तराजू पर तोल लेना चाहिये मुँह से शब्द निकाल देना आसान है, मगर फिर सँभालना कठिन होता है। इन्ही शब्दो की वदौलत वडे-वड़े महाभारत हुए है। खून की नदियाँ वही है। और शब्द के प्रताप से अनन्त आत्माएँ ससार-सागर से पार भी हुई है। यह शब्द स्वर्ग-नरक एव मनुष्य-पशुगति का दाता है।

तो श्रावक को स्थूल चोरी से वचते रहने के लिए अपनी वाणी, मन और शरीर पर नियत्रण रखने का अभ्यास निरन्तर करते रहना चाहिए। उसे शुद्ध वस्तु मे अशुद्ध वस्तु की मिलावट का, चोरी की चीज खरीदने का, चोर को सहायता देने का, नाप-तोल मे गडवड करने का तथा राजकीय कानून को भग करने का त्याग करना चाहिए। यह सव कृत्य मोटी चोरी मे गिने जाते है। इनका त्याग आवश्यक है।

चौथे व्रत मे साधु को पूर्ण रूपेण व्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए और गृहस्थ यदि पूर्ण व्रह्मचर्य न पाल सके तो कम से कम पुरुष को परस्त्रीगमन का और स्त्री को परपुरुषगमन का त्याग करना ही चाहिए। यह देशत व्रह्मचर्य है। उक्ति है—एक नरी सदा

ब्रह्मचारी ।' ऐसा नही होना चाहिए कि यहाँ तो मुँह बाँध कर वैठ गये और वाहर जाकर इधर-उधर भटकने लगे । ऐसा करने से तुम्हारी वदनामी होगी, तुम्हारे धर्म की वदनामी होगी और तुम्हारे गुरु की भी वदनामी हुए विना नही रहेगी । अत एव तुम्हारे जीवन मे सयम-शीलता होनी चाहिए। ब्रह्मचर्य का पालन करने से न केवल परलोक ही वरन् यह लोक भी सुधरता है ।

पाँचवाँ व्रत अपरिग्रह है। गृहत्यागी मुनि परिग्रह से पूर्ण-रूपेण विरत होते है, किन्तु गृहस्थ श्रावक का परिग्रह के विना काम नही चल सकता। अत एव वह उसका पूर्ण त्यागी नही हो सकता तथापि उसे परिग्रह की मर्यादा तो करनी ही चाहिए। इस लिए कहा गया है कि धन-धान्य, सोना—चाँदी, मकान-जमीन, पशु आदि की मर्यादा अवश्य वाँध लेना चाहिए। परिग्रह की मर्यादा से जीवन नियन्त्रित हो जाता है। तृष्णा पर अकुश लग जाता है । ममता मर्यादित हो जाती है। आकुलता सीमित हो जाती है। सन्तोष की वृद्धि से जीवन सुख-शान्तिमय वन जाता है। रात-दिन की हाय-हाय मिट जाने से निराकुलता का जन्म होता है। इस प्रकार यह परि-ग्रह-परिमाण व्रत वर्त्तमान जीवन को शान्त वनाने का अमोघ उपाय है।

प्रत्येक वस्तु मर्यादा मे ही ठीक रहती है । मर्यादा का उल्लघन सर्वत्र हानिकारक होता है। पानी अपनी मर्यादा का त्याग करता है तो प्रलय मच जाता है। गाँव के गाँव वह जाते है । लोग वेघरवार हो जाते है। अनगिनती पशु मारे जाते है । इसी प्रकार परिग्रह जव अमर्यादित होता है तो वह धर्मकर्म का खत्म कर देता है और जीवन को अभिशाप रूप मे परिणत कर देता है । अत एव

गृहस्थ को सब प्रकार के परिग्रह को मर्यादा अवश्य कर लेनी चाहिए ।

छठे व्रत मे गृहस्थ को दिशाओ का परिमाण करना चाहिए कि—मैं पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशा मे अमुक दूरी तक व्यापार वगैरह करूँगा । इससे आगे नही जाऊँगा ।

सातवें व्रत मे बतलाया गया है—ऐ गृहस्थो ! भोग-उपभोग मे आने वाले पदार्थों की भी मर्यादा करो । इस मर्यादा को ग्रहण करते हुए पन्द्रह प्रकार के महान् हिंसाकारी धन्धो (कर्मादानो) का अवश्य त्याग करना चाहिए, जैसे खान खुदवाना । खान खुदवाना फोडीकम्मे नामक कर्मादान है । कई खाने मीलो जमीन के अन्दर चली जाती हे । उनके भीतर खोदने वाले मजदूर काम करते हैं । कदाचित् अचानक पानी का सोता फूट पडा और उस से खान का कोई हिस्सा गिर पडा तो सैकड़ो आदमी मर जाते है । तर्क किया जा सकता है कि आज कोयला अनिवार्य आवश्यकता की वस्तु है । उसका व्यापार न किया जाय तो काम कैसे चलेगा ? मगर भाई ! पहले अपनी मक्खियाँ तो उडा लो, फिर दूसरो की चिन्ता करना । आप इस दुनिया मे नही थे तब भी काम चलता था और नही होगे तब भी काम चलेगा ।" काजी जी दुबले क्यो ? शहर का अँदेशा !" वाली कहावत चरितार्थ मत करो । अपनी अपनी फिक्र करो । दुनिया के काम तो यों ही चलते रहेगे । कदाचित् कहोगे कि हम पहले दूसरो की चिन्ता करते हे, तो इस का यही उत्तर है कि जो अपनी चिन्ता नही करता, वह दूसरो की क्या खाक चिन्ता कर सकेगा !

धन होता है तो गाँठ बँधती है । बिना धन के गाँठ कैसे बँध सकती है ? दाना तो चक्की मे ही पड़ेगा और पिसे बिना आटा

नही वनेगा। किन्तु कोई-कोई दाना कीली के नीचे पड जाने से वच भी जाता है। अत एव जो वचना चाहे अपने को वचा ले अन्यथा दुनिया के दौर तो चलते ही रहते हैं।

आठवाँ व्रत है अनर्थदण्ड-त्याग, अर्थात् निरर्थक पाप न करना। इस व्रत के अन्तर्गत खोटे ध्यान का भी त्याग समाविष्ट हो जाता है। अमुक का फलाँ अनिष्ट हो जाय, उसका लडका मर जाय, मकान मे आग लग जाय, इत्यादि विचार करना अपध्यान है और यह अनर्थ दण्ड मे गिना गया है।

हे भव्य! दूसरे के विपय मे सोचना ही है तो अच्छा सोच। किसी की भलाई का विचार कर। किसी का वुरा क्यो सोचता है? तेरे वुरा सोचने से ही उसका वुरा नही हो जायगा, मगर तू अवश्य पाप का भागी वन जायगा।

इसी प्रकार प्रमाद करना, घी, तेल पानी आदि के पात्रो को उघाडा छोड देना भी अनर्थदण्ड है। उघाडा छोड देने से कोई जीव गिर कर मर जाय तो वृथा ही पाप का भागी होना पडता है। इस के अतिरिक्त कभी तुम्हारा जीवन भी खतरे मे पड सकता है।

एक वार हम लुधियाना से जालधर जा रहे थे। रास्ते मे एक अफीम वाले के यहाँ रात वासा किया। रात्रि मे उसे उपदेश सुनाया तो उसे कुछ ज्ञान हुआ। कथा के वाद जव उसे प्यास लगी तो वह उठ कर गया और गट-गट करके पानी पीने लगा। सयोग की वात कि पानी मे एक टाँटिया (वर्रे) था और वह उसके गले मे चला गया। उसने झट से थूक दिया। वह लौट कर आया और कहने लगा—महाराज, आपका धर्म वहुत अच्छा है। वह टाँटिया डक मार देता तो मेरा मुँह वडे की तरह फूल जाता। यदि वह पानी

ढक कर रक्खा होता तो उस के मुख वह जीव विशेष जिसे पजाब में धमूडी कहते है, न आता।

भाइयो और वहिनो! यतना मे धर्म है और अयतना मे पाप है। जो विवेकवान् है वह सहज ही धर्म उपार्जन कर लेता है और अविवेकी निष्प्रयोजन ही पाप का शिकार वन जाता है।

घर-गृहस्थी मे आरम्भ की—पाप की क्रियाएँ होती है परन्तु वहिने यदि विवेक को सामने रख कर काम करे तो वहुत-से पाप से वच सकती है। उस पाप के कार्य मे से भी धर्म कमा सकती है। इस के विपरीत धर्म-क्रिया करने वाले अविवेकी अविवेकता के कारण पाप कमा लेते है।

इस प्रकार विवेक की रोशनी मे कार्य करने से अनेक पापो से वचाव हो सकता है। श्रावक-श्राविका का कर्त्तव्य है कि वह निरर्थक हिंसा से अवश्य वचे। जूठी मिस्री खाने से मुँह तो फिर भी मीठा हो जाता है। मगर जिस से मुँह भी मीठा न हो उसे खाने से क्या लाभ। जीवनोपयोगी साधन जुटाने के लिए दुनिया के धन्धे किए जाते है किन्तु जिन के करने से कुछ भी सिद्धि नही, ऐसे कार्य करने मे व्यर्थ का पाप पल्ले पडने के सिवा कुछ भी लाभ नही अत. प्रत्येक मे विवेक होना चाहिए।

नौवे व्रत मे वतलाया गया है कि जव तुम जीवन मे दिन-रात आरम्भ-समारम्भ कर रहे हो तो दो घड़ी धर्म के लिए भी निकालो। आत्मचिन्तन मे भी थोडा समय लगाओ।

कई वहाने-वाज कहते है—जव हम अट्ठाईस घडी पाप मे व्यतीत करते है तो दो घडी धर्म करने से क्या लाभ होगा ?

जिन्हे काम नही करना वे वहाने वनाया करते है। वे यह नही सोचते कि कुछ न करने से थोडा धर्म करना भी श्रेयस्कर ही है। अत एव ज्यादा न वन सके तो दो घडी तक तो सामायिक करना ही चाहिए—अपनी आत्मा को समभाव मे स्थित करके आत्म-परिमार्जन करना ही चाहिए। इस से तुम्हारी पाप-धारा का वेग मद होगा और व्याज नही वढेगा।

दसवाँ व्रत देशावकाशिक है। गृहस्थ को चाहिए कि वह पापो का सवर करे, प्रासुक भोजन करके एक अहोरात्र धर्मध्यान मे व्यतीत करे। मगर आज का मानव तो इतना वेभान वन गया है कि व्रत-नियम को जैसे भूल ही गया हो।

एक नगर मे मुसलमान कम और हिन्दू अधिक थे। उस गाँव के एक मुसलमान की लडकी की शादी दूसरे नगर मे हुई। लडकी का पति पक्का लीगी था। वह नमाज पढता और रोजा रखता था। लडकी सुसराल से पीहर आई तो उसका वह पति भी साथ आया। जव नमाज का वक्त आया तो उसने नमाज पढना शुरू किया। वह कभी उठता, कभी वैठता, कभी जमीन पर औधा-सा हो जाता और कभी घुटनो के वल वैठ जाता। उसकी सासू ने यह हाल देख कर लडकी से कहा—यह तो वडा खोटा रोग है। पहले मालूम हो हो जाता तो इस से तेरी शादी ही न करती।

लडकी ने कहा—यह तो घर मे भी ऐसा करते है और वाहर भी।

सासू—यह वडी खौफनाक वीमारी है।

जमाई जीमने वैठा तो सासू ने पूछा—वेटा, यह वीमारी तुझे कव से लगी है।

जमाई—अम्माजन, यह बीमारी नही है । यह तो खुदा की बदगी और रब्ब का खौफ है।

सासू—और बेटा, यह चीज बडी बुरी है । मैंने बहुत-सी बीमारियो के नाम सुने, मगर इस बीमारी का तो नाम ही खोटा है। बेटा, तू ऊँचा-नीचा होता है तो मेरा कलेजा ऊँचा-नीचा होने लगता है।

जमाई ने सासू को समझाने का बहुत प्रयत्न किया, वह न समझी सो नही ही समझी । उसने जमाई को आग्रह किया–बेटा, तू यही रहना शुरु कर दे। यहाँ न तो खुदा की बदगी है, न रब्ब का खौफ है।

तो जहाँ ऐसी-ऐसी धर्म-मूर्त्तियाँ हो, वहाँ किसी भी धर्म की उन्नति किस प्रकार हो सकती है ?

हाँ, तो केशी स्वामी ने श्रावक के ग्यारहवे व्रत का स्वरूप बतलाते हुए कहा—श्रावक को समस्त आरभ और चारों प्रकार के आहार का परिहार करके पौषध करना चाहिए। जैसे शरीर-पुष्टि के लिए अच्छे-अच्छे माल खाते हो, वैसे ही आत्मा को भी आध्यात्मिक चिन्तन की पौष्टिक खुराक देनी चाहिए ।

बारहवे व्रत मे श्रावक को चाहिए कि वह अतिथि को दान दे। जो साधु को कल्पनीय हो उन वस्त्रो मे से वस्त्र और भोजन मे से भोजन देना चाहिए। किन्तु इस प्रकार का दान भी भाग्य के विना नही दिया जा सकता।

इस प्रकार श्रमणवर केशी ने पाँच महाव्रतो और श्रावक के बारह व्रतो पर प्रकाश डाला। जिन्हे जो व्रत अगीकार करने थे, उन्होने अगीकार किये । तदनन्तर लोग वन्दना-नमस्कार करके

अपने-अपने घर लौट गये, चित्त जी भी अपने स्थान पर आ गये।

चित्त जी के हृदय पर उपदेश का इतना गहरा असर पडा कि उसके रोम-रोम मे केशी स्वामी समा गये। राजकार्य से निवृत्त होकर वे पुन मुनिराज के पास गये। वहाँ उन्होने बारह व्रत धारण किये और अन्त मे निवेदन किया—भगवन् ! मै श्वेताम्बिका नगरी को जा रहा हूँ।

महात्मा कुछ न बोले। मौन रहे।

तब चित्त जी ने पुन कहा—महात्मन् ! मैं आज ही जा रहा हूँ।

महात्मा फिर भी मौन।

चित्त जी ने तीसरी बार मे कहा—भगवन्, आप भी अवश्य वहाँ पधारिए। श्वेताम्बिका नगरी अतिशय दर्शनीय है। वहाँ के बाग-बगीचे, महल, बाजार आदि सब मनोरम है।

चित्त प्रधान की बात महात्मा गौर से सुनते रहे। जब उन्होंने तीसरी बार मे नगरी की मनोरमता का वर्णन किया तो केशी स्वामी बोले—अच्छा, तुम्हारी नगरी बडी सुन्दर है। बाग-बगीचे सुन्दर है। वहाँ सुगन्धित पुष्प खिलते है। अमृत के समान मधुर फल पथिकों को मधुर रसास्वादन करवाते है। मगर चित्त जी, मैं तुम से एक बात पूछता हूँ। कोई अतिशय रमणीक सुन्दर उद्यान हो, जिसमे रग-बिरगे सौरभ-सम्पन्न पुष्प खिले हो और वायुमण्डल को सौरभमय बनाते हो, मधुर फलो की प्रचुरता हो, शीतल और सघन छाया वाले वृक्ष हो और वे पथिको को विश्रान्ति लेने के लिए लालायित करते हो, परन्तु उस उद्यान मे यदि कोई क्रूर शिकारी रहता हो तो क्या वहाँ पक्षियो का जाना हितकर होगा ? उन्हे वहाँ जाना चाहिए ?

चित्त जी—नही भगवन्, ऐसे उद्यान में पक्षियों का जाना सुरक्षित नहीं।

केशी श्रमण—प्रधान जी, उद्यान तो बड़ा मनोरम है न, फिर पक्षी क्यो न जाएँ?

चित्त—उद्यान के वह सब सुख दु:ख के निमित्त बन जाते है, क्योकि वहाँ शिकारी जो रहता है।

केशी स्वामी—चित्त प्रधान, तुम श्वेताम्बिका नगरी की प्रशसा करते हो, किन्तु वहाँ भी, उद्यान मे शिकारी के समान, एक बडा तीरदाज शिकारी रहता है। दूसरे शिकारी तो पशुओं और पक्षियो का ही शिकार करते हैं। परन्तु वह मनुष्यो को भी नहीं छोडता। वह बडा अधर्मी, अन्यायी और भयकर शिकारी है। वह झूठे को सच्चा और सच्चे को झूठा करने वाला है। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति मे हम तुम्हारी नगरी मे आएँ तो कैसे आएं?

चित्त प्रधान बडा हाजिर-जवाब था। उसने कहा—महाराज! बात तो ऐसी ही है। वहाँ का राजा बड़ा ही अत्याचारी है, किन्तु आपको राजा से क्या लेना-देना है? राजा रूठ भी जाय तो क्या साधु का बिगाड़ लेगा? अत एव भगवन् आपको अवश्य पधारना चाहिए। वहाँ बड़े-बड़े धर्मात्मा रहते हैं। आपके पदार्पण से उन्हे धर्म-श्रवण का लाभ मिलेगा। उनका कल्याण होगा। वे सब आप की सेवा करेंगे। हम आपके लिए अपनी आँखो की पलके बिछा देंगे।

केशी स्वामी ने कहा—जैसा अवसर होगा, देखा जाएगा।

चित्त जी परोक्ष आश्वासन मान कर अपनी नगरी में वापिस आ गए। कुछ समय पश्चात् केशी मुनि भी अपनी शिष्य-

मण्डली के साथ श्वेताम्बिका नगरी मे पधार गये। नगरी के बाहर एक उद्यान मे ठहरे। उद्यानपाल ने चित्त जी को मुनिराज के पधारने की शुभ सूचना दी। यह अभीष्ट समाचार सुना तो चित्त प्रधान का रोम-रोम पुलकित हो उठा। वह असीम प्रमोदभावना के साथ मुनिराज की सेवा मे उपस्थित हुए। वन्दना और सुख-शान्ति की पृच्छा के पश्चात् निवेदन किया—भगवन्! आपने यहाँ पधार कर हमारे ऊपर अपार अनुग्रह किया है। आपका दर्शन करके हम कृतार्थ हुए। मेरी एक प्रार्थना है और वह यह कि राजा प्रदेशी को उपदेश देकर धर्म-मार्ग की ओर आकर्षित कीजिए।

केशी स्वामी—ग्राहक दुकान पर आएगा तब ही तो सौदा पट सकता है। ग्राहक पास ही न फटकना चाहे तो उसे माल कैसे दिया जाय?

चित्त—भगवन्! यह जिम्मेवारी मेरी। मै राजा को आपके निकट ले आऊँगा, किन्तु आप उनके राजत्व का ख्याल न करके ठीक-ठीक कोडे लगाइएगा। जिस से उस की अक्ल ठिकाने आजायेगी।

सज्जनो! ऐसे कोडे वही लगा सकता है जिसकी आत्मा सबल हो और आत्मा उसी की बलवान् होती है जिसमे सच्चाई और साहस हो। जिनकी आत्मा दुर्बल है, वे क्या कोडे लगा सकते है?

तो चित्त जी ने कहा—आप ख्याल न कीजिए कि यह राजा है। कडवी-मीठी जैसी भी दवा देना चाहे, निस्सकोच भाव से दीजिएगा, क्योकि आप जो कुछ भी कहेगे अपने शुद्ध दृष्टिकोण से ही कहेगे और राजा के कल्याण के लिए ही कहेगे।

मुनिराज बोले—तुम राजा को यहाँ ले आओ। फिर जो होना होगा, समय पर हो जाएगा।

चित्त जी अब राजा को मुनि के पास लाने का उपाय सोचने लगे। सहसा उन्हे स्मरण आया—दो घोडे,जो ट्रेण्ड करने—सिखाने-के लिए दिये गये थे, आज ही सीख कर आए है। उनकी परीक्षा के बहाने राजा को मुनिराज के पास लाना सरल होगा।

यह सोच कर चित्त जी ने राजा के समक्ष घोड़ो की परीक्षा करने का प्रस्ताव रक्खा और राजा ने उसे स्वीकार कर लिया। दोनो घोडो पर सवार होकर नगर से बाहर निकले। उन्होने घोड़ों को इतना दौडाया कि राजा भी पसीना-पसीना हो गया। वह प्यास से घबरा उठा। तब राजा ने चित्त जी से कहा—मेरी राजमहल तक जाने की शक्ति नही है।

वजीर ने कहा—महाराज! आपका उद्यान निकट ही है। वही चल कर विश्राम कीजिए और जलपान कीजिए। उद्यान की शीतल वायु थकावट मिटा देगी।

दोनो बगीचे मे आ पहुँचे। यह वही बगीचा था जिसमे मुनि-राज केशी स्वामी विराजमान थे।

दलाल अपनी चतुराई से ग्राहक को मुकान तक ले आया। बगीचे मे पहुँच कर घोडे टहलने के लिए सौप दिए और दोनो आराम करने लगे। उसी समय राजा ने देखा—सामने ही एक दिव्य मूर्ति शेर की तरह गर्जना कर रही है।

आगे जाने का रास्ता बन्द था, क्योकि जनता धर्मोपदेश सुन रही थी। यह देख कर राजा हैरान हो गया और बोला—यह मूढ

सुनने वाले और मूढ सुनाने वाले कौन है ? इन्हो ने तो रास्ता ही रोक लिया है। मगर सुनाने वाला दीखता है दिव्य रूप वाला और विशाल काया वाला।

चित्त वोले—यह मुनि केशी श्रमण के नाम से प्रख्यात हैं। इन का सिद्धान्त आप से एक दम विपरीत है। इनका उपदेश है कि जीव अलग और शरीर अलग है।

राजा यह सुनते ही अभिमान के साथ मुनिराज के पास गया। उसने वन्दना किये विना ही पूछा—महात्मा, आप जीव और शरीर को पृथक्-पृथक् मानते है क्या ?

मुनिराज ने मूल प्रश्न की उपेक्षा करके तनिक कडक कर कहा—तू हमारा चोर है। तुझे माल खरीदने का अधिकार नही।

राजा विस्मित और स्तभित रह गया। वह अपने लिए सदैव 'अन्नदाता' और 'पृथ्वीनाथ' सम्वोधन सुनने का आदी था। आज से पहले ऐसे शव्द कभी उसने नही सुने थे। उसने सोचा—इन्होंने मुझे चोर कैसे कह दिया ? इनमे इतनी हिम्मत कहाँ से आई ?

राजा ने तव कहा—आपने मुझे चोर कैसे कहा ?

केशी स्वामी—राजन्, कोई व्यापारी लाखो का माल वेचने के लिए किसी शहर मे ले जाय, मगर सदर चुगी के दरवाज़े से न जाकर चोरी से माल अन्दर ले जाय और चुगी न चुकावे तो वह आपकी दृष्टि मे क्या होगा ?

राजा—वह चोर कहलाएगा।

मुनिराज ने राजा को फाँस लिया। वोले—तुम मुझ से आध्यात्मिक माल खरीदना चाहते हो, जीव और शरीर के विषय

मे निर्णय चाहते हो, किन्तु महमूल चुकाने से भी बचना चाहते हो ।

राजा की बोलती बद ! तब मुनिराज पुन. बोले—राजन् ! तुम ने वन्दनादि शिष्टाचार का पालन नही किया । क्या यह महमूल से बचना नही है ?

यह देख चित्त जी भी मन ही मन सोचने लगे—डाक्टर बडा जबर्दस्त मिला है ।

राजा बोला—आपकी आज्ञा हो तो बैठ जाऊँ ?

केशी स्वामी—राजन् ! जगह मेरी नही, तुम्हारी है । यह दरबार सब के लिए खुला है । जो माल खरीदना चाहे, खरीद सकता है ।

राजा ने बैठ कर आत्मा के विषय मे ग्यारह प्रश्न किये । मुनिराज ने उनका युक्तियुक्त उत्तर दिया । जैसा बीमार था वैसे ही अनुभवी डाक्टर भी मिल गए । उन्होने उसका रोग जड़ से उखाड़ दिया । मिथ्यात्व हटा दिया और राजा स्वर्ग का अधिकारी बना । एक भवावतारी हो गया, अर्थात् एक जन्म लेकर मोक्ष मे चला जायगा ।

यह विक्षेपणी कथा थी । इस कथा के प्रभाव से राजा प्रदेशी नरक से बच गया । जो भव्य जीव इस प्रकार की कथा सुनते-सुनाते हैं और सुनकर अमल मे लाते है, वे ससार-सागर से पार हो जाते है ।

ब्यावर

१—१०—५६

———

प्रभावना आचार (२)

[धर्मकथा]

उपस्थित सज्जनो ।

सम्यक्त्व के प्रभावना आचार के निरूपण मे धर्म-कथा का प्रकरण चल रहा है । धर्म-कथा से धर्म का प्रसार होता है, धार्मिक भावना की जागृति होती है और लोग धर्म का पालन करके अपनी आत्मा का कल्याण कर सकते है ।

आक्षेपणी और विक्षेपणी कथा का स्वरूप वतलाया जा चुका है । तीसरी सवेदनी धर्म-कथा है । इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है—सवेद्यते ससारासारताप्रदर्शनेन मोक्षाभिलापा उत्पद्यते अनयेति सवेदनी । उक्तञ्च —

यस्या श्रवणमात्रेण, मुक्तिवाञ्छा प्रजायते ।
यथा मल्ली षड् नृपान् प्रत्यवोधयत्

उपर्युक्त सस्कृत-वाक्यो मे सवेदनी कथा का कथन करते हुए १९ वे श्री मल्लीनाथ जी तीर्थंकर और उनके छ मित्र राजाओ का कथन किया है जिसका खुलासा विवरण आगे इसी व्याख्यान मे आएगा । हाँ,तो जिस कथा को सुनने से जीव को ससार की असारता विदित हो जाती है वह सवेदनी कथा कहलाती है ।

ससार क्या है? स सरण करना अर्थात् आना–जाना, जन्मना–मरना या गति–आगति करना ही ससार है । जिस प्रवचन को सुनने से ससार के प्राणियो की, जो ससार मे आसक्त हो रहे है, घुल-मिल

रहे है, नाशमान भौतिक पदार्थो मे तल्लीन हो रहे है और अपना अहित कर रहे है,उन्हे वस्तु स्वरूप का वास्तविक ज्ञान हो जाय,ससार की असारता का बोध हो जाय और वे समझ जाएँ कि ससार दु खो का घर है और आत्मा न तो शरीर रूप है और न इन्द्रिय-रूप है, वही सवेदनी या सवेगनी धर्म कथा है।

भगवान ने फर्माया है—

एव भव ससारे ससरइ सुहासु हेहिं कम्मेहिं।
जीवो पमाय वहुलो समय गोयम ! मा पमायए ॥

अर्थात्—हे गौतम ! प्रमादी जीव अपने शुभ और अशुभ कर्मो के उदय से निरन्तर ससार मे भटक रहा है। इसमे कही स्थायी रूप से रहने का स्थान नही है। कदाचित् रहने को वडी से वडी उम्र मिल जाय तो भी उसके पश्चात् मरना पड़ता है और अन्यत्र जाना पडता है। ससार चार प्रकार का है—नरक,तिर्यञ्च,मनुष्य और देव ससार। इन चारो मे जीव का ससरण होता रहता है। एक जगह से जाना ही दूसरी जगह आना है। किसी के लिए जो जाना है दूसरो के लिए वही आना है। जिनके लिए आना है, वे खुशियाँ मनाते है और जिनके लिए जाना है वे रोते-पीटते है,मातम मनाते हैं। इस प्रकार ससार की स्थिति वडी विपम है।

ससार मे विभिन्न अपेक्षाओ से शब्दो का प्रयोग होता है। मान लीजिए नदी के दोनो किनारो पर दो मनुष्य खड़े है एक उनमे से इधर वाला कहता है—वह परले पार का है। और उधर वाला कहता है—वह परले पार का है। इस व्यवहार का कारण यह है कि दोनो के वीच नदी है। यदि नदी न होती तो यह शब्द-योजना भी न होती। इसी प्रकार कर्म वीच मे पड़े है जिससे आना-जाना हो रहा है। कर्म

वीच मे न पडे होते तो आना-जाना भी न होता। व्यक्ति (आत्मा) वही का वही है, फिर भी कर्म-नदी के कारण किसी अपेक्षा से आर और किसी अपेक्षा से पार कहलाता है। कर्मोदय की वदौलत ही यह जीव कभी नरक और कभी तिर्यञ्च, कभी मनुप्य और कभी देवता कहलाता है।

शुभ कर्मो के उदय से शुभ और अशुभ कर्मो के उदय से अशुभ गति होती है। पूर्ववद्ध कर्म यथासमय उदय मे आते है। परन्तु कर्मो का वध यो ही नही हो जाता। प्रमाद के वशीभूत होकर जीव कर्मो का वध करता है। अतएव भगवान् चेतावनी देते है—हे गौतम! इस ससरण को—आने जाने को—खत्म करने के लिए समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

यह प्रमाद ही तो है जो जीव को रुला रहा है—भटका रहा है। प्रमाद पॉच प्रकार का है—(१) कषाय अर्थात् क्रोध, मान, माया और लोभ। (२) विपय—पॉच इन्द्रियो के २३ विषय और २४० विकार। (३) निन्दा—दूसरे के विद्यमान या अविद्यमान दोषो को प्रकट करना। (४) विकथा—फिजूल वाते करना। जिनसे आना-जाना कुछ नही, ऐसी वातो से क्या लाभ। पानी को विलोने से मक्खन नही निकलता, वल्कि पानी का स्वाद और विगड़ जाता है। (५) मद्य— शराव से क्या हानियाँ होती है, यह कौन नही जानता। शरावी की दुर्दशा वडी दयनीय हो जाती है। उसका जीवन निरर्थक वन जाता है और लोक-परलोक विगड जाता है।

इन पॉच प्रमादो मे—भूलो—मे फँस कर यह जीव ससार मे चक्कर काट रहा है और मुक्ति से वचित हो रहा है। जीव प्रमाद का सेवन करता है और वही प्रमाद उसके दुख का कारण वन जाता है।

संसारभ्रमण करते-मनुष्य-जन्म वडी कठिनाई से मिलता है। मनुष्य जन्म मे आर्य-कुल दुर्लभ और उसमे भी धर्म-श्रवण का अवसर मिलना दुर्लभ है। कदाचित् धर्म-श्रवण को प्राप्ति हो गई तो धर्म पर श्रद्धा होना तो अत्यन्त कठिन है। शास्त्र सुनते-सुनते वर्षो के वर्ष व्यतीत हो गये, जमाने गुजर गये, सुनने मे कुछ कसर नही रहने दी, 'किन्तु श्रद्धा पुनरपि दुर्लभा' श्रद्धा होना फिर भी कठिन ही है।

कई भव्य प्राणियो के चित्त मे श्रद्धा का प्रादुर्भाव हो जाता है। और वे समझ जाते हैं कि अरिहन्तो की वाणी सत्य है, उसमे शका को कोई स्थान नही है, फिर भी शास्त्रकार-कहते हैं कि उस श्रद्धा के अनुसार अमल करना कठिन होता है।

मंज़िल पर मज़िल चढता जाने वाला तो शिखर पर पहुँच जाता है, किन्तु एक जगह वैठ रहने वाला अपना रास्ता नही काट सकता।

तो सवेदनी कथा वतलाती है कि—ऐ प्राणियो ! ससार के भौतिक पदार्थो के प्रति तुम्हारी जो आसक्ति हो रही है,तुम जो समझ रहे हो कि यह पदार्थ हमारे हैं और हम इनके हैं और यह पदार्थ सार रूप है, यह तुम्हारा सव से वडा भ्रम है। यह पदार्थ सार रूप नही है, सुख दायक नही हैं। ये नाशवान पदार्थ तुम्हे चक्कर मे डाल रहे है। यह लकड़ी के वुरादे के लड्डू के समान निस्सार हैं।

सज्जनो ! संसार मे सार होता तो महापुरुष संसार का त्याग न करते। वे विशाल राजप्रासादो को, आज्ञा में चलने वाली और अप्सराओ को भी मात करने वाली रमणियो को और भोगोपभोग की उत्तम सामग्री को तिनके की तरह त्याग कर जगल की राह क्यों

लेते ? अपनी कोमल काया को तपस्या की भट्टी मे क्यो तपाते ? शालिभद्र जैसे ऐश्वर्यशाली भी दीक्षा अगीकार करके, घर-घर भिक्षा ले कर जीवन यापन करने को क्यो उद्यत होते ? उन्होने समझ लिया था कि ससार के भोग्य पदार्थ आत्मा के पतन के कारण वनते है और अधोगति के गहरे गर्त मे गिराते है। ये विप-मिश्रित मोदक है जो दीखने मे सुन्दर और खाने मे स्वादिष्ट है, परन्तु परिणाम मे दु खदायी है। अत एव इनमे मत लुभाओ और शीघ्र से शीघ्र इनका त्याग करो।

जव तक मनुष्य भोगोपभोगो पर आसक्ति रखता है तव तक उसे उनमे आनन्द का अनुभव होता है, किन्तु जव उसे वास्तविक ज्ञान होता है तो वह समझ जाता है कि ये मेरे जीवन को नष्ट करने वाले है, मेरी आत्मा को मलीन वनाते है और दारुण दुख के हेतु है, तव वह इनसे विरत हो जाता है। उस समय आसक्ति का स्थान विरक्ति ग्रहण कर लेती है। उस अवस्था मे आत्मा मे निस्पृहता और निराकुलता से जो आह्लाद उत्पन्न होता है, उसकी कोई तुलना नही हो सकती।

शरावी शराव को,मासाहारी मास को, व्यभिचारी व्यभिचार को और असत्यवादी असत्य को अच्छा समझता है और कभी-कभी अनिवार्य भी समझ वैठता है, उनमे आनन्द का अनुभव करता है, परन्तु जव इनके नुकसान को समझ लेता है तो फिर कोई जवरदस्ती भी सेवन कराना चाहे तो भी नही करता। चोर चोरी करने मे मजा मानता है परन्तु जव उसकी आत्मा में जागृति उत्पन्न हो जाती है और वह समझ लेता है कि नही, यह कार्य अच्छा नही, निन्दनीय है, इससे यहाँ और परलोक मे भी दुखी होना पडेगा, तव वह भूखा मर जाना कवूल करता है, परन्तु चोरी करने की चेष्टा नही करता।

तो जिस कथा के श्रवण मे त्याग-वैराग्य का भाव जागृत हो, ससार निस्सार प्रतीत हो, मोक्ष प्राप्ति की इच्छा हो, कर्मों को नष्ट करने की भावना जागृत हो, वह सवेदनी कथा है।

भगवान् मल्लीनाथ ने, राजकुमारी के रूप में, विवाह करने के लिए आये हुए, पूर्वजन्म के अपने छह मित्रो को अवसर पाकर यह कथा सुनाई थी और उनके अन्तर्नेत्रो को खोल दिया था। श्रीमद् ज्ञातासूत्र मे इस कथा का उल्लेख है। सक्षेप मे वह इस प्रकार है—

उन्नीसवे तीर्थंकर मल्लीनाथ जी स्त्री शरीर मे उत्पन्न हुए। अनन्त तीर्थंकर पुरुष के रूप मे ही उत्पन्न होते है, मगर ये स्त्री-रूप मे हुए, इस आश्चर्यमय घटना का एक वडा कारण था।

पिछले जन्म मे वे महावल नामक राजा थे। वडे साम्राज्य के अधिपति थे और सुन्दर रीति से शासन चलाते थे। इनके छह मित्र थे जो करीव-करीव समवयस्क थे। वे साथ-साथ खेले, कूदे, पढे वढे। महावल राज्य के अधिकारी हुए और छहो मित्र अपने-अपने काम मे लग गये। वे स्वार्थ साधन के लिए मित्र नही वने थे, सुख-दुख मे काम आने वाले थे। उनकी मैत्री शुद्ध और पवित्र थी। कुछ काल तक ससार के आमोद-प्रमोद का अनुभव करने के पश्चात् राजा महावल को वैराग्य उत्पन्न हुआ। राज्य को ओर से उनकी चित्त-वृत्ति हट गई और वे सयम ग्रहण करने के लिए तैयार हो गये।

उस समय महावल ने अपने मित्रो को वुला कर कहा—तुम लोग सदा मेरे सुख-दु ख मे साथ रहे हो। परन्तु अव मैं त्यागमय जीवन अगीकार करना चाहता हूँ। आप लोगो की क्या इच्छा है? अगर साथ देना चाहो तो अवश्य आ जाओ।

मित्रो ने देखा—राजा का चित्त वैराग्य से परिपूर्ण है। पहले जो हास्य-विनोद और राग-रग होते थे, वह दुनिया और थी। अव इनके जीवन की दुनिया दूसरी ही हो गई है। चेहरे पर वैराग्य की गभीरता झलक रही है।

मित्रो ने पूछा —आपको इस उदासीनता का कारण क्या है ?

महावल ने उत्तर दिया—मै ने ससार के असली स्वरूप को समझ लिया है। इतने दिन अन्धकार मे भटक रहा था। अव प्रकाश मिला है। उस प्रकाश मे देखता हूँ तो समस्त ससार असार दिखलाई देता है। राग-रग भयकर जान पडते है। अत एव मै ने साधु वनने का निश्चय किया है। आप लोगो का क्या विचार है ?

छहो मित्रो ने देखा—महावल अन्तरतर से विरक्त हो गये है। विरक्ति की जो चिनगारी भीतर छिपी थी, अवसर पाकर प्रज्वलित हो उठी है। अन्त मे उन्होने निर्णय करके महावल को सूचित कर दिया—आपका विचार साधु वनने का निश्चित हो गया है तो हम सव भी आपका साथ देगे। जनम के साथी है तो इस कल्याण-कार्य मे भी साथी ही रहेगे।

सज्जनो ! मित्र वनने वाले वहुत होते है, पर मैत्री निभाने वाले विरले ही होते है। स्वार्थियो की मित्रता भग होते देर नही लगती। जव तक उनका स्वार्थ सिद्ध होता रहता है, तव तक उनकी मित्रता वनी रहती है और ज्यो ही स्वार्थ मे वाधा पडी कि मित्रता को वे धता वता देते है। परन्तु इनकी मित्रता स्वार्थमय नही, सच्ची थी। इस कारण महावल के प्रस्ताव को सव ने प्रसन्नता-पूर्वक स्वीकार कर लिया।

महावल वोले—आप सव दीक्षा के लिए तैयार हैं तो अव जो

एक-एक क्षण जा रहा है, वह अनमोल है। धर्म के कार्य मे प्रमाद करना उचित नही है। अत एव शीघ्र ही आप लोग आवश्यक व्यवस्था करके और अनुमति लेकर आ जाइए।

सब अपने-अपने घर की ओर विदा हुए। गृहस्थी का भार अपने-अपने उत्तराधिकारी को सौंप कर महाबल राजा के पास लौट आये।

सातों मित्रो ने आध्यात्मिक क्षेत्र मे मित्रता निभाने के लिए दीक्षा धारण कर ली और तपस्वी होकर वे कर्मों के साथ होली खेलने लगे।

कुछ समय पश्चात् राजर्षि महाबल के मन मे एक अप्रशस्त भावना उत्पन्न हुई। उन्होंने सोचा—मैं यहाँ बडा हूँ तो ऐसी करनी करूँ जिससे आगे भी अपने साथियो से बड़ा कहलाऊं! यह सोच कर उन्होने कपट करना शुरू किया।

सज्जनो! इस बडप्पन के भाव ने दुनिया को बर्बाद कर दिया। साधु बन गए, राजपाट और वैभव को लात मार दी, मगर अहकारजनित बडप्पन की भावना ने वहाँ भी पीछा न छोड़ा। उनके साथी उपवास अर्थात् एक दिन का व्रत करते तो महाबल मुनि बेला यानी दो दिन का व्रत कर डालते और उनके साथ पारणा न करते। जब वे सब बेला करते तो ये तेला ठान लेते। इस प्रकार तपस्या करने मे कपट का सेवन करने लगे।

यथासमय काल करके सातो देवलोक मे उत्पन्न हुए। वहाँ से चय कर महाबल देव मिथिला के राजा कुभ की रानी पद्मावती की कुक्षि मे कन्या के रूप मे आए और शेष छहो विभिन्न प्रदेशो के राजाओ के यहाँ उत्पन्न हुए।

कुमारी का जन्म होने पर तीर्थंकर के जन्म-कल्याणक के समय होने वाली सब बाते हुई। तपस्या के प्रभाव से मल्ली कुमारी को असाधारण रूप-सम्पत्ति प्राप्त हुई। तीर्थंकरो का रूप अद्वितीय होता ही है। उनके रूपसौन्दर्य का कोई मुकाबिला नही कर सकता। मानतुगाचार्य ने ठीक ही कहा है —

यैं शान्तरागरुचिभि परमाणुभिस्त्व,
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत !
तावन्त एव खलु तेऽप्यणव. पृथिव्या,
यत्ते समानमपर न हि रूपमस्ति।

तीनो लोको मे असाधारण सौन्दर्यशाली प्रभो ! जिन अतिशय सुन्दर परमाणुओ से आपका शरीर बना है, जान पडता है कि इस विशाल भूतल पर वे परमाणु उतने ही थे। इस कल्पना का कारण यह है कि आपका जैसा सुन्दर रूप है अन्यत्र कही भी दिखाई नही देता।

इस प्रकार की रूप श्री से सम्पन्न मल्ली कुमारी ने धीरे-धीरे तारुण्यवय मे प्रवेश किया। तब विवाह का प्रश्न सामने आया।

माता-पिता की प्राय यही इच्छा होती है कि बच्चे की शादी मेरे सामने हो जाय। लोग यह अपनी आत्म-कथा स्वामी जी को भी सुनाते है। वे कहते है—महाराज ! सब कुछ कर लिया, एक बच्चे की शादी करना शेष है। वास्तव मे उनके भाव यही होते है कि कही स्वामी जी अच्छा सम्बन्ध जोड दे। परन्तु भाई,स्वामी जी कोई नाई या सेवक तो है नही, जो शादी-सम्बन्ध जोडते फिरे। जिन बातो को नापसन्द करके हम ने त्याग दिया, उन बातो मे अब हम से भाग लेने की क्या आशा करते हो ? ऐसी बाते सुनना भी साधु

को शोभा नही देता । साधु को तो गृहस्थ के व्यवहारो से दूर ही रहना चाहिए । भगवान् ने साधु को चेतावनी दी है—'ऐ साधु ! तेरी सफेद शाल मे थोडा-सा भी दाग लग गया तो वह बुरा दीखेगा। प्रत्येक साधु-साध्वी को इस सूत्र को स्मरण रखना चाहिए । इस सूत्र मे गम्भीर आशय निहित है । आत्मा के जागरण का भाव छिपा हुआ है । कहा है—

विजहित्तु पुव्वसजोग, न सिणेह कहिंचि कुव्वेज्जा ।
असिणेह सिणेह करेंहि, दोसपओ सेहि मुच्चए साहू ॥

—उत्तरा० अ ८, गा. २.

अरे मोक्ष-पथ के पथिक श्रमण ! इन स्नेहियो से ज्यादा स्नेह मत कर । ये गृहस्थ लोग स्नेह सूत्र मे बँधे हुए है,किन्तु हे साधु ! तूने स्नेह के धागे को तोड़ फेका है ।

शास्त्र कहता है—इन स्नेहियो से स्नेह मत करो और जो स्नेह-मोह मे फँसे है, उनके सम्पर्क मे ज्यादा मत आओ । अगर तुम अधिक दखल दोगे तो कभी तुम्हारे सयम का दिवाला निकल जायगा । वे तुम्हे भी अपने जैसा ही बनाने का प्रयत्न करेंगे । उनमे से किसी को स्त्री चाहिए, किसी को पुत्र चाहिए और किसी को धन चाहिए । तुम उनके मोह मे पड गये तो पथ-भ्रष्ट होते देर नही लगेगी । उनसे साठ-गाँठ की नही कि बाबा जी फिसले नही ।

जिस चने मे घुन लग जाता है, उसका पौष्टिक तत्त्व नष्ट हो जाता है । ऊपर का खोल ही बाकी रह जाता है । इसी प्रकार जो साधु गृहस्थो के अधिक सम्पर्क मे रहता है । उनके साथ सासारिक विषयो मे पत्र व्यवहार करता है, घंटो घुल-घुल कर गृहस्थ-

सम्बन्धी बाते करता है, उसका सयम रूपी सत्त्व चला जाता है और ऊपर का वेषमात्र रह जाता है। यह सब पतन को आमत्रण देना है।

गृहस्थो को अपने दर्शनार्थ बुलाना और उनसे दुनियादारी की बातो के बारे मे पत्र-व्यवहार रखना साधुता से विपरीत चीजे है। पहले के जमाने मे साधु भजन भी नही लिखाते थे। कह देते थे—जबानी याद कर लो। सयम के प्रति उनमे कितनी सजगता थी। वे विशुद्ध सयम के पोषक थे। परन्तु आज क्या देखते है? गुरु की डाक अलग जा रही है तो चेले की डाक अलग ही चल रही है। यह काम सघ के सभापति या मन्त्री का हो सकता है, साधु का नही।

सज्जनो! आपका ऊँचा मस्तक यो ही झुकाने के लिए नही है कि हरेक के सामने झुक जाय, चाहे जिसके सामने झुकाने मे इसका गौरव नही है। बुद्धिमान का मस्तक तो त्याग और तप के आगे ही झुकेगा और बार-बार झुकेगा।

हम तुम से ऊपर क्यो बैठे है? हमारे पास क्या है? क्या हमारे सोने के पख लगे है? नही, साधु की विशेषता सयमयोग मे है। अगर साधु के वेष मे हम गृहस्थो का सा व्यवहार करते है तो समझ लो कि यह चना घुना हुआ है और इसमे दाल बनने की शक्ति नही है।

भद्रपुरुषो! हम साधु बने है, घर छोडा है और रोते हुए माता-पिता कुटुम्बी जनो को छोड कर साधुता अगीकार की है, उनकी सेवा भी नही कर पाये, तो हमे किसी दूसरे क्षेत्र मे तो अपना कर्त्तव्य पूरा करना ही चाहिए। अत एव साधु को दुनियादारी की

झझटो से वचना चाहिए, क्योंकि कितनी भी चतुराई से काम करो, नियम-विरुद्ध बाते प्रकाश में आये विना नही रहती ।

तो साधु का कर्त्तव्य है कि अन्य बातो को तिलाजलि देते हुए सम्पर्क मे आने वालो को सवेगनी कथा सुनावे जिससे धर्म की जागृति हो । श्रावको का भी कर्त्तव्य है कि किसी भी साधु की कोई शास्त्र-विरुद्ध बात देखे तो सद्भावना से उसे चेतावनी दे दे । याद रखिए, आप उन्हे महापुरुष समझ कर अपना मस्तक झुकाते हो और उनके चरणो की धूल मस्तक पर चढाते हो, तो आपका मस्तक फालतू नही है ।

तुम हमे उठा सकते हो और हम तुम्हे उठा सकते है । एक हाथ दूसरे हाथ को मदद देता है । आप जागरूक रहेगे तो हम भी जागरूक रहेगे । यह मत समझो कि ये हमारे गुरु है, अत. कुछ भी करे, हमे कहने का अधिकार नही । दोष किसी का भी हो, दोष ही है और उसका सुधार होना ही चाहिए । श्रावक और साधु के बीच धर्म का ही सम्बन्ध है । उसके बीच मोह या स्वार्थ को नही घुसने देना चाहिए ।

गृहस्थ के मामले मे पडना साधु को शोभा नही देता । ऐसा करके साधु स्वाध्याय-ध्यान से वचित होता है और गृहस्थ को भी पथ-भ्रष्ट करता है । इस मे दोनो का ही दिवाला निकलता है । एक अन्धा और दूसरा काणा सावित होता है । साधु अधा और गृहस्थ काणा समझिए । गृहस्थी की झंझटो मे पड़ने वाले साधु की दोनो आँखे फूट चुकी है । अरे साधु, गृहस्थ तो लालची है ही, परन्तु तू तो लालच त्याग चुका है, फिर क्यो लोभ के चक्कर मे पड कर पथभ्रष्ट होता है ?

सज्जनो ! साधु-जीवन बडी मुश्किल से प्राप्ता होता है, अत· इसे प्राप्त करके खो देना कितनी बुरी बात है ! उसके जैसा हत-भागी दुनिया मे कौन होगा ? इस जीवन को प्राप्त करने के लिए राजा-महाराजा राजपाट छोड कर जगलो मे भटकते हैं । चक्रवर्त्ती जैसे भी अपनो असाधारण विभूति को त्याग कर साधु वनने मे अपना अहोभाग्य मानते है। यदि साधु जीवन मे कोई स्पृहणीय महत्त्व न होता तो ससार के वडे से वडे सुखो का त्याग करके वे साधु क्यो वनते ? किन्तु नही, वह कोई अमूल्य निधि है जिसे पाने के लिए ही प्राप्त भौतिक साधनो का परित्याग करके साधुजीवन अगीकार किया जाता है और कोमल काया पर नाना प्रकार के कष्ट सहन करके भी धन्यता का अनुभव किया जाता है। हाँ, सच तो यह है कि हीरे की कद्र जौहरी ही करते है । शाक-भाजी वेचने वाला कूजडा उसे पत्थर समझ कर ठुकरा देता है।

तो सवेगनी कथा के स्वरो की यही मधुर झकार है कि ससार असार है। ससार के सुख अस्थायी और कल्पित है । अत एव इन सुखो की प्राप्ति मे जीवन का आनन्द न समझो । मनुष्य-जीवन से उस अक्षय, अनावाध एव शाश्वत सुख के खजाने को ढूँढने का प्रयत्न करो, जिसकी प्राप्ति हो जाने के पश्चात् कुछ भी प्राप्त-व्य नही रह जाता।

साधु दूसरो को सवेगनी कथा सुनाता जाय और समझाता जाय कि ससार असार है, पर वह स्वय इसमे फँसता जाय और अपने सयम का दिवाला निकालता जाये तो उससे वढ कर मूर्ख और कौन होगा ? यह तो वही कहावत चरितार्थ हुई कि पडित जी के वैंगन कहने के और तथा खाने के और है ।

एक पडित जी प्रतिदिन लोगो को उपदेश दिया करते थे—देखो, बैंगन वहुवीज है। स्वाथ्यनाशक है और तासीर से गर्म है। अत एव बैंगन नही खाना चाहिए। कई लोगो ने उपदेश सुन कर त्याग भी किया। पडितानी जी ने भी यह उपदेश सुना तो दूसरे दिन बैंगन का शाक नही बनाया। यद्यपि पडित जी को बैंगन खाने का वहुत शौक है, यह बात पडितानी जानती थी, पर उसने प्रभावशाली उपदेश सुन कर समझा कि पडित जी ने भी खाना छोड़ दिया होगा। जब पडित जी भोजन के लिए आसन पर बैठे तो पडितानी ने दूसरा शाक थाली मे परोसा। यह देख वह बोले—क्या आज बैंगन का शाक नही बनाया ?

पण्डितानी ने कहा—मैंने भी कल तुम्हारी कथा सुनी थी। बैंगन के दोषो को सुन कर मैंने न खाने का प्रण कर लिया है और तुमने तो पहले ही त्याग कर दिया होगा। मनुष्य उसी चीज के दोष बतलाया करता है जिससे उसे घृणा हो जाए या जिसके सेवन मे पाप समझने लगे।

पण्डितानी का उत्तर सुन कर पडित जी बोले—तू तो बडी भोली है। अरी, वह तो दूसरो को सुनाने की बात थी, स्वयं करने की थोडी ही थी। हाथी के दाँत दिखाने के और होते हैं, खाने के और होते हैं। उपदेश श्रोताओ के लिए होता है, वक्ता के लिए नही।

सज्जनो ! वक्ता ऐसे हो जाएँ तो श्रोताओ पर उनका क्या प्रभाव पडेगा ? उपदेशक का उपदेश श्रोताओ पर तभी प्रभाव डाल सकता है जब उपदेश व्यवहार मे से निकला हो। जो वक्ता स्वय ही अपने उपदेश के अनुसार आचरण नही करता, वह श्रोताओ से कैसे आशा कर सकता है कि वे उस पर अमल करे ? जो स्वय

रास्ता भूला हुआ है, वह दूसरो को क्या रास्ता दिखला सकता है ? त्यागमय जीवन मिलना वस्तुत वडा कठिन है।

तो उत्तराध्ययन शास्त्र का विधान है–ऐ साधु, तू इन स्नेहियो से विशेष गठवन्धन मत कर। तू असनेहियो से स्नेह कर। असनेही कौन हैं ? आचार्य,उपाध्याय और साधु। तू इन्ही से स्नेह कर। ऐसा करने से तेरे ज्ञान, ध्यान और स्वाध्याय की वृद्धि होगी।

अगर कोई गाजा, सुलफा चिलम पीने वालो के पास वैठैगा तो भले ही पीने की आदत न पड़े परन्तु कही न कही कपडे मे दाग अवश्य लग जाएगा। इसके विपरीत, इत्र वाले के पास वैठेगा तो देने वाला इत्र दे रहा है और लेने वाला ले रहा है, मगर उसकी खुशवू की लपट पास वैठने वालो को और उसके कपडो को भी सुगन्धित वना देगी।

साधु की सगति गधी—इत्रफिरोश—की सगति के समान है। उससे ज्ञान, दर्शन और चरित्र की सुवास अनायास ही मिल जाती है। यदि कुसगति की जाए तो उसका भी असर पडे विना नही रहता।

एक वार दो मित्र किसी सभा मे जाने के लिए निकले। उनमे से एक रास्ते मे सुलफा पीने वालो के इशारे पर वही वैठ गया। 'चिलम चडी न रही सुहागिन ते न रही रडी' ऐसा कह कर सुलफे का दम लगाने वालो की सगत से हानि ही होती है।

सज्जनो ! वावा लोग दो-चार रुपये तो सिर्फ सुलफे मे ही प्रतिदिन खर्च कर देते है। अमृतसर का एक सम्पन्न घराने का आदमी दिल्ली मे एक डेराधारी वावे का चेला वनने लगा तो गुरु ने कहा सवा मन सुलफा लाओ तो चेला वनाएँगे।

ऐसे गुरु का चेला वनने से क्या लाभ ? किन्तु भगत जी चेला वनने के लिए आमादा थे, अत एव कई हजार का मुलफा देकर भी चेला वने। ऐसे लोग अपना या पराया कल्याण नहीं कर सकते।

तो एक मित्र सुलफा-सेवको की मडली मे जा वैठा। ज्यो ही किसी ने दम लगाया कि चिलम मे से एक चिनगारी उछली और उसके कपडे पर जा गिरी। उसके कपड़े पर निशान वन गया। दूसरा मित्र इत्रफिरोश की दुकान पर वैठ कर उसकी प्रतीक्षा करने लगा। वहाँ लोग तरह-तरह का इत्र खरीद रहे थे। सयोग से इत्र-फिरोश के हाथ से इतर की एक शीशी छूट गई और इत्र के छीटे कपड़ो पर भी उछल गये। वह सुगन्ध उसके कपड़ो मे समा गई। थोडी देर मे उसका वह मित्र भी आ गया और दोनो सभा मे भाग लेने के लिए गये। सभामडप के द्वार पर पहुँचे तो इत्रवासित वस्त्र वाले को पोजीशन वाला समझ कर भीतर जाने दिया और दूसरे को रोक दिया, क्योकि उसके कपडो से सुलफे की गध आ रही थी और कपडे पर दाग लगा था। जव उसने रोकने का कारण पूछा तो द्वाररक्षक ने कहा—सुलफा पीने वाले अन्दर नही जा सकते। यह सुनकर वह वोला—परमात्मा की कसम खाकर कहता हूँ—मैंने सुलफा नही पिया। द्वाररक्षक ने कहा—न पिया होगा, मगर सुलफे की गंध आ रही है और कपडो मे दाग है, इससे सिद्ध होता है तुमने सुलफा पिया है अत एव तुम अन्दर प्रवेश नही कर सकते।

तात्पर्य यह है कि सिर्फ सगतिदोप से भी मनुष्य को अपमानित और जलील होना पडता है। दूसरे ने इत्र के लिये पैसा खर्च नही किया था, फिर भी सुसगति के फलस्वरूप उसके कपडे सुवासित हो गए और उसे प्रतिष्ठा के साथ सभा मे प्रवेश करने दिया गया।

हाँ तो साधु वन कर गृहस्थो के मामले मे दखल देना सुलफा पीने वालो की सगति करना है। मेरे शब्द, सम्भव है, किसी को कटुक प्रतीत होते हो, परन्तु आप गृहस्थ है, आपका जीवन अन्य प्रकार का है, आप ससारव्यवहार मे उलझे है, यद्यपि आपका और हमारा ससर्ग होना अनिवार्य है, तथापि साधु के सयम की रक्षा करना या खतरे मे डालना आपके हाथ मे है। आपको तात्त्विक चर्चा करनी हो अथवा धर्म-सम्वन्धी कोई वात पूछनी हो तो वड़े शौक से पूछ सकते है। परन्तु गार्हस्थिक मामलो मे साधु को घसीटना उचित नही। इससे साधु अपने मार्ग से गिर जाता है।

हमने पहले देखा कि जव इधर-उधर से विहार करते हुए साधु आपस मे मिलते थे तो थोकड़ो और शास्त्रीय वातो का चिन्तन करते थे और अपने-अपने ज्ञान, दर्शन एव चारित्र की वृद्धि करते थे। यही साधु का प्रधान धन्धा था। पर आज वह प्रणाली विलुप्त सी हो गई है।

हम जिस पथ के पथिक वने है, उसी पर हमे चलना चाहिए। इस मार्ग पर चलने के लिए तो राजा, महाराजा और चक्रवर्ती तक तरसते हैं और वैराग्य आ जाने पर इस राज-पथ पर चलने के लिए राजपाट आदि भी छोड देते है।

तो मैं कह रहा था कि भगवान् मल्ली ने ऐसे महलो मे जन्म लिया जहाँ जीवन के सव सुख मौजूद थे, भडार भरे थे। युवास्था मे पाँव रखते ही उनके अनुपम रूप लावण्य की प्रशसा चहुँ ओर इस प्रकार फैल गई, जैसे कस्तूरी की डिविया खुलने पर सुगध फैल जाती है।

उनके पूर्वभव के छहो मित्र अलग-अलग देशो के राजा वन

चुके थे। मल्ली कुमारी के सौंदर्य की प्रशंसा उनके पास भी येन केन प्रकारेण जा पहुँची। पूर्वभव की प्रीति की अव्यक्त प्रेरणा से और सौंदर्य-प्रलोभन से छहों राजकुमारी को प्राप्त करने के लिए लालायित हो उठे। जब संसार में उसके सदृश दूसरी कोई कन्या ही नही थी तो ऐसी राजकुमारी से शादी करने को कौन उत्कंठित नही होता। तो रूप के उस अतुल भडार को लूटने के लिए छहो राजा आ पहुँचे सब ने अपनी-अपनी सेना के पडाव नगर से बाहिर डाले।

राजा कुंभ और रानी पद्मावती बड़ी उलझन मे पड गये। राजकुमारी का विवाह तो करना है, पर कुमारी एक है और उससे विवाह करने वाले अनेक आ धमके है। ऐसी स्थिति मे क्या किया जाए? किसी एक के साथ विवाह करते हैं तो दूसरे आये हुए सभी राजा अपना अपमान समझकर युद्ध के लिए कटिबद्ध हो जायेंगे। निरर्थक ही हजारो निरपराध सैनिकों का खून बह जायेगा। हजारो शिशु अनाथ हो जाएँगे और हजारो रमणियों की माँग का सिंदूर पुँछ जायेगा।

राजा-रानी इसी चिन्ता से आतुर थे कि राजकुमारी मल्ली अचानक वहाँ पहुँच गई। आप इसी भव मे तीर्थंकर बनने वाली थी और जन्म से ही तीन ज्ञानधारिणी थी। तीर्थंकरो का अतिशय ही ऐसा होता है कि वे तीन ज्ञान-सहित ही गर्भ मे आते है।

तो मल्ली कुमारी ने अपने ज्ञान से सारी घटना जान कर और माता को प्रणाम करके कहा—आज आप इतने चिन्तातुर, शोकाकुल और खेदखिन्न क्यो दिखलाई देते है?

माता-पिता ने सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना कर कहा—बेटी, अब तू ही बता कि इसका किस प्रकार सही ढग से निराकरण किया जा सकता है।

राजकुमारी ने कहा—मेरे सम्बन्ध मे आप को तनिक भी चिन्तित होने की आवश्यकता नही। इस समस्या का मैं स्वय निराकरण कर लूँगी।

इस प्रकार माता-पिता को निश्चिन्त करके आपने अपनी सुन्दराकृति और शरीरपरिमित एक स्वर्ण पुतली वनवाई। पुतली के पीछे की ओर एक ढक्कन इस तरह वनवाया कि वह खुल जाए और वद कर देने पर किसी को ढक्कन का पता भी न चले। पुतली तैयार हो गई तो वह एक ऐसे मध्य स्थान पर रखवाई कि पृथक्-पृथक् छह कमरो मे से स्पष्ट देखो जा सके। तत्पश्चात् प्रतिदिन उसमे एक ग्रास भोजन डालना आरम्भ कर दिया।

पुतली इतनी वढिया वनी थी कि उसे देख कर कोई नही कह सकता था कि यह मल्ली कुमारी नही,पुतली है। कलाकारो ने कमाल कर दिखलाया था। रूप-लावण्य अग-प्रत्यग, सव कुछ हूवहू राजकुमारी जैसा ही था।

आगत राजाओ को आश्वासन देते हुए कई दिन व्यतीत हो गये। जव दवा तैयार हो चुकी तो छहो कामातुर रोगियो को वुलवाया और पृथक्-पृथक् कमरो मे भेज दिया। छहो कमरे वहुत सुन्दर ढग से सजे हुए थे। छहो राजा उस पुतली को टकटकी लगा कर निरखने लगे। एक राजा दूसरे राजा को देख नही सकता था और पुतली सव को साफ दिखाई देती थी। वह उन कामान्ध राजाओ को असली राजकुमारी दीख पडती थी।

जगली हाथी को पकडने के लिए शिकारी इसी प्रकार जाल विछाते है। वे एक वडा गड्ढा खोदते है और उसके ऊपर पतली पतली टहनियाँ डाल कर ऊपर से पत्ते छा देते हैं। उसके ऊपर

कागज़ की ऐसी हथिनी बनाते और रख देते हैं कि साक्षात् हथिनी ही मालूम हो। वे लोग पेड पर चढ कर छिप जाते हैं। हाथी आता और हथिनी को देखता है तो कामातुर हो कर तीव्र वेग के साथ उसकी ओर बढता है। परन्तु उस जाल पर पैर धरते ही गड्ढे मे गिर जाता है। वह बुरी तरह चिंघाडता है, परन्तु विषयान्ध हाथी आखिर मौत के मुँह मे चला जाता है। शिकारी उसे निकाल लेते है और फिर उसके दाँतो आदि का विक्रय करते हैं।

इसी प्रकार वह छहो राजा उस स्वर्णपुतली को देख कर मोहित हो रहे थे और प्रत्येक सोच रहा था कि इस राजकुमारी को पाकर मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा।

राजकुमारी ने जब ज्ञानबल से जान लिया कि टैंपरेचर हाई हो गया है तो बडी तरकीब के साथ पुतली का ढक्कन हटा दिया। वह स्वय दिखलाई नही दी और पुतली का नकलीपन भी प्रकट नही हुआ। ढक्कन हटते ही पुतली मे से सडे हुए अन्न की दुर्गन्ध फूट पडी। छहो कमरे दुर्गन्ध से व्याप्त हो गये। राजा बुरी तरह घबरा उठे और भागने की तैयारी करने लगे, पर रूप का वह झरना छोड़ा भी नहीं जा रहा था।

इस प्रकार की अस्तव्यस्तता देख कर मल्ली कुमारी ने कहा—तशरीफ रखिए। आप लोग अभी से घबरा गये। रूपनगर के सौदागर बन कर आए और हथियार छोड कर भागने लगे! मैदान से भाग जाना वीरो को शोभा नही देता।

राजा बोले—दुर्गन्ध से सिर फटा जा रहा है, दिल घबरा रहा है और पल भर भी बैठने को जी नही चाहता।

राजकुमारी ने कहा - भाई, जिस को प्राप्त करने के लिए

इतनी-इतनी दूर से सेना से सुसज्जित होकर आये हो, उसे प्राप्त किये विना जाना उचित नही है।

वे वोले—यह तो केवल देखने मे ही सुन्दर है। शरीर मे से तो दुर्गन्ध आती है। यहाँ खडा रहना कठिन है।

उचित अवसर देख कर मल्ली कुमारी ने उन्हे उद्‌वोधन करने का विचार किया। नीति मे कहा है—

चढते पानी पैसना, तामस मे अरदास।
औषध आवे ताव मे, तीनो करे विनाश ॥

पानी चढाव पर हो तो थोडा समझ कर भी उस मे से निकलने का साहस नही करना चाहिए। ऐसा करना वहुत वडा खतरा मोल लेना है। और जव मालिक नाराज हो तव अर्जी करना निरर्थक है। उस समय मे प्रार्थना करने से कोई लाभ नही होता।

एक माँ ने वेटे से कहा—जव सेठ जी हँसते हो तव वेतन वढाने के लिए कहना, अन्यथा नही। एक दिन सेठ जी गाँव जाने वाले थे तो नौकर से कहा—घोडे पर जीन कस कर ले आ। नोकर ने घोडा लाकर खडा कर दिया। दोनो रवाना हुए। रास्ते मे सेठ जी ने कहा—भाई, धूप का वक्त है, थोडी देर वृक्ष के नीचे आराम कर लेना ठीक होगा। मैं जरा सो लेता हूँ और तू घोडे की देख-रेख रखना। ठडे वक्त मे आगे चलेगे।

नौकर ने कहा—जो हुकुम! आप आराम कर लीजिए। मै ध्यान रक्खूँगा।

सेठजी सो गये। उधर नौकर भी घोडे की रस्सी अपनी कमर मे वाँध कर चवूतरी पर पेड की छाया मे सो गया। देवयोग से थोडी देर वाद ही एक उचक्का आया और इसे खुर्राटे लेते देख रस्सी को वीच मे काट कर और घोडे को लेकर नौ दो ग्यारह हो गया।

सेठ जी की नींद खुली तो देखा कि नौकर आराम से सो रहा है और उसकी कमर मे घोडे की रस्सी कटी हुई बँधी है। घोडा गायब है।

सेठजी ने नौकर को जगा कर पूछा—अरे घोडा कहाँ है? नौकर बोला—घोडा तो यही है साहब!

सेठजी—यहाँ कहाँ है?

नौकर—कहीं नही गया है सेठ साहब, मेरे पास ही है। देखिए न, घोडे की रस्सी मेरी कमर मे बँधी है। रस्सी यही है तो घोडा कहाँ जा सकता है?

सेठजी को घोड़ा पार हो जाने का बडा दुःख हुआ, मगर उसकी मूर्खतापूर्ण बात पर हँसी भी आ गई। उन्हे हँसते देख नौकर भी हँसने लगा और अपनी माँ की शिक्षा को याद करके बोला—'सेठ साहब, अब तो मेरी तनख्वाह बढ़ा दीजिए।

सेठजी के गुस्से का पार न रहा। बोले—'कम्बख्त! तू ने बड़ा अच्छा काम किया है न!' यह कह कर उसे नौकरी से अलग कर दिया।

अभिप्राय यह कि नाराजगी के समय मालिक से अर्जी करने से कोई लाभ नही होता। गाय-भैंस भी तभी दूध देती है तबियत से जब कि खा-पी कर सतुष्ट हो जाती है। भूखी को छेड़ोगे तो लात मारेगी। अत एव समय देख कर बात करनी चाहिए जिसमे दुष्परिणाम न निकले और कार्य सिद्ध हो जाय।

बुखार, जब न पूरे चढाव पर हो और न उतार पर हो, ऐसी हालत मे दवा दी गई तो रोगी न मरता होगा तो मर सकता है।

अत एव या तो बुखार पूरा चढा हुआ हो या नही चढा हो तब दवा देनी चाहिए।

तो राजकुमारी मल्ली जी ने भी देखा कि अब टेम्परेचर हाई हो चुका है,अत पुडिया देने का यही अच्छा अवसर है। इस समय दी गई दवा से ज्वर समूल नष्ट हो जायगा।

मल्ली कुमारी भावी तीर्थंकर थी। उनके वचनो मे अलौकिक शक्ति थी। अन्त करण मे वैराग्य की लहरे ठहाका मार रही थी। वाणी मे अद्भुत जादू था और त्याग का बल था। उन्हे ज्ञात था कि ये मेरे पूर्व जन्म के मित्र है, मगर क्या किया जाय! मोह की दशा बडी विचित्र है। मोह के कारण ही ये पागल हो रहे है।

अन्तत मल्ली कुमारी ने प्रकट मे कहा—आप लोग किस भ्रम मे पडे है? क्यो मोह से व्याकुल हो रहे है? यह सोने की मल्ली कुमारी है। इसमे प्रतिदिन एक-एक ग्रास भोजन का डालने से दुर्गन्ध उत्पन्न हो गई। पर जिसमे आप शादी करने आए हो वह तो हाड-मास-मल-मूत्र की ही पुतली है। इस शरीर के प्रत्येक द्वार से मल-मूत्र झरता है। ज़रा सोचो, समझो, विचार करो। क्यो आत्म-भाव से अनात्मभाव मे जा रहे हो? यह भोग तो क्षण भगुर है। इनमे जो फँस जाता है, उसका जीवन विडम्बना बन जाता है।

इस प्रकार उन्होने ऐसी प्रभावपूर्ण सवेगनी कथा सुनाई और ससार की असारता दिखाई कि छहो राजाओ को वैराग्य हो गया। उनके अन्तर नेत्र खुल गए और विषय-भोग जहर के समान दिखाई देने लगे। वे भोग से योग की ओर, और राग से विराग की ओर आकृष्ट हो गये। उनकी आत्मा मे जागृति की स्फुरणा हुई। उनका हृदय पुकार उठा—जब सोने की पुतली का यह हाल है तो हाडो के

ढाँचे (शरीर) का कहना ही क्या है! इसकी उत्पत्ति अशुचि से हुई है और अशुचि से ही यह परिपूर्ण है। अतएव अशुचि एवं क्षणभगुर के मोह मे फँसना योग्य नही है।

छहो राजाओ ने राज्य त्याग कर भागवती दीक्षा ग्रहण की और आत्मा का कल्याण किया।

इस प्रकार जीवन-परिवर्तन का श्रेय सवेगनी कथा को है। इस कथा को सुन कर अनन्त जीव मोक्ष चले गए, जा रहे है और जाएँगे।

इस कथा को सुन कर जो आत्मा को धर्म मे लगाएँगे वे ससार-समुद्र से पार हो जाएँगे।

ब्यावर
२—१०—५६

प्रभावना आचार (३)

निर्वेदनी धर्मकथा

सज्जनो !

सम्यक्त्व के आठवे आचार प्रभावना के विवेचन के सबन्ध मे धर्मकथा का प्रकरण चल रहा है। चार प्रकार की धर्मकथाओ मे से तीसरी सवेगनी कथा का वर्णन करते हुए बतलाया गया था कि—ससार असार है, क्षण-क्षण परिवर्तनशील है, कोई भी पदार्थ एक-सी स्थिति मे रहने वाला नही है, अत हे प्राणी ! तू इनमे मत लुभा। इनके पीछे-पीछे मत भटक। इनसे तेरी आत्मा का कल्याण होने वाला नही है। इन पदार्थों से तू सुख की अभिलाषा करता है, परन्तु वह सुख टिकने वाला नही है, और परिणाम मे दारुण दु ख देने वाला है। भौतिक पदार्थों से होने वाला सुख बादल की छाया के समान है।

एक पथिक गर्मी से घबरा गया था। धूप से बेचैन हो रहा था और चलते-चलते थक भी गया था। वह चाहता था कही छाया मिल जाय तो विश्राम कर लूँ। मगर उसने थलीप्रदेश का पथ पकड लिया था। वहाँ छाया मिले भी तो केर के झाड की मिलती है, जिस से शान्ति प्राप्त नही हो सकती। वह पथिक उसी आकुल-व्याकुल दशा मे जा रहा था कि भाग्य से एक बादल निकला और सयोग से पथिक के ऊपर छाया हो गई। उसे बडा आनन्द मिला। सोचा—छाया मेरे पास चल कर आई है तो अपनी थकान और गर्मी शान्त कर लूँ। भाग्य से हवा भी विशेष नहीं चल रही थी।

उस पथिक ने छाया मे अपना विस्तर विछा दिया वह लेटने की तैयारी मे था कि हवा का एक झोका उस वदली को उडा कर ले गया। उसकी सारी तैयारी व्यर्थ गई। मनसूवे मिट्टी में मिल गये।

तो ज्ञानी पुरुष कहते हैं—अरे पागल प्राणी! क्या तू वादल की छाया मे रह कर आराम करना चाहता है? वह कितनी देर तक टिक सकेगी? इस छाया के पीछे तू अपना समय और अमूल्य जीवन वर्वाद मत कर।

भगवान् महावीर से गौतम स्वामी ने प्रश्न किया—भगवन् क्या वादल, सिंह, हाथी, मनुष्य वगैरह का रूप धारण कर सकते है? भगवान् ने फरमाया—हाँ, गौतम, कर सकते है।

सज्जनो! आप ध्यानपूर्वक आकाश की ओर टकटकी लगा कर देखेंगे तो सिनेमा देखना भी भूल जाएँगे। पुद्गलो का स्वभाव नाना रूपो मे परिणत होने का है। उनका एक रूप कभी स्थिर नही रहता। अतएव विवेकवान् व्यक्ति उनका भरोसा नही करता और न उनके द्वारा सुख-प्राप्ति की आशा करता है।

चौथी धर्मकथा निर्वेदनी है। इस कथा से ससार की असारता समझ लेने पर वैराग्य की प्राप्ति होती है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है—

> यदाकर्णनमात्रेण, वैराग्यमुपजायते।
> निर्वेदनी यथा शालि-भद्रो वीरेण वोधित.॥

स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुसकवेद का वेदन होना—विकार होना—वेद है और जिस कथा को सुनने से यह वेद हट जाएँ और

श्रोता विषयविकार से विरक्त हो जाये वह निर्वेदनी कथा कहलाती है। सनातन धर्म मे चार वेद गिनाये गये है, उन वेदो और इन वेदो मे वहुत अन्तर है। यहाँ वेद का अर्थ विकार-विशेष है। यह वेद एकेन्द्रिय जीवो से लगा कर पचेन्द्रिय जीवो तक और प्रथम गुणस्थान से लेकर नौवे गुणस्थान तक के जीवो को लगे है।

यहाँ तीन वेदो की वात सुनकर किसी अनभिज्ञ व्यक्ति को शका हो सकती है कि एक वेद को क्यो उडा दिया? मगर उन और इन वेदो मे वडा अन्तर है। एक ही शव्द के अनेक अर्थ होते हैं, किन्तु प्रसगवशात् उनका उपयुक्त अर्थ ग्रहण करना चाहिए। उन चार वेदो मे वेद का अर्थ है जानना, अनुभव करना। किन्तु यह तीन वेद विकाररूप है।

सस्कृत मे एक 'सैन्धव' शव्द है। इसका अर्थ 'नमक' भी है और 'घोडा' भी है। जहाँ जैसा प्रसग होता है, वहाँ पर वैसा ही अर्थ लगाया जाता है। मगर जव शास्त्र के भावो को समझे विना अपनी कल्पना से अर्थ कर लिया जाता है तो मामला उलटा हो जाता है। देखना चाहिए कि प्रकरण क्या है? उस प्रकरण के अनुसार ही अर्थ करना चाहिए।

दूसरा शव्द लीजिए 'सुवर्ण'। इसके भी दो अर्थ है—अच्छा वर्ण अर्थात् रूप और अच्छा अक्षर। तो ठीक-ठीक अर्थ को समझने के लिए सोचना होगा कि प्रकरण क्या है? यदि आभूषण वनाने का प्रसग है तो उसका अर्थ होगा—सोना नामक धातु, यदि पठन-पाठन का प्रसग है तो 'अच्छा अक्षर' अर्थ समझना उपयुक्त होगा और यदि किसी स्त्री या पुरुष के शरीर सौन्दर्य का वर्णन चल रहा हो तो उसका मतलव समझना होगा—अच्छा रूप-रग .

आज शब्दो के मनमाने काल्पनिक अर्थ लगा लेने के कारण न जाने कितने मत और सम्प्रदाय खड़े हो गये है। शास्त्र मे आये हुए 'चेइए' शब्द का अर्थ कइयो ने मूर्त्ति ही कर लिया है । किन्तु आप को यह मालूम होना चाहिए कि इस शब्द के १०८ अर्थ बन गये है। पडित बेचर दास जी ने इस विषय मे एक पुस्तक लिखी है और उसमे सभी अर्थ बतलाये है।

तो ससार मे कई तरह के व्यक्ति है और कई तरह के अर्थ करने वाले हैं, किन्तु सुज्ञ साधु को प्रसगोचित रूप ही शास्त्रो के अर्थ करने चाहिएँ साधु को क्षमाशील होना चाहिए, यही नही, साधु को अकिंचन भी होना चाहिए, अर्थात् किसी भी प्रकार का परिग्रह नही रखना चाहिए। हाँ, उसे केवल अपने जीवन-निर्वाह के लिए ही लेना होगा और किसी अनुपयोगी चीज़ का सग्रह करना परिग्रह है। कहा है—

मुच्छा परिग्गहो वुत्तो ।

अर्थात् पदार्थो मे मूर्च्छा होना—आसक्ति होना—परिग्रह है। कहने वाले कहते है कि भरत जी ने वस्त्राभूषणो का त्याग कर दिया किन्तु लगोटी नही उतारी तो उन्हे केवलज्ञान नही हुआ। तो क्या लगोटी मे केवलज्ञान को रोक देने का शक्ति है? और क्या लगोटी न होने से ही केवलज्ञान होता है? अगर लगोटी न होने से ही केवलज्ञान होता हो तो बच्चे और तिर्यच भी बिना लगोटी रहते हैं, उन्हे केवलज्ञान क्यो नही होता? एक जगह दिगम्बर जैनो के ही घर थे। वहाँ हम गये तो उनकी धर्मशाला और मन्दिर होने पर भी हमें नही ठहरने दिया। साधु का धर्म जबरदस्ती करने का नही है, पर बात तो करनी ही चाहिए। मैने उन भाइयो से पूछा

तुम कौन हो ? उन्होने कहा—हम जैन है । तव मैंने कहा—जैन-जंन होने के नाते क्या हमारा और आप का इतना भी सम्वन्ध नही है कि आप हमे ठहरने को स्थान दे दे ? इस प्रकार धार्मिक वात कहने पर उन्होने स्थान दे दिया । हम उनके घरो से गोचरी भी लाये । मगर हमने उसी दिन वहाँ से विहार कर दिया । उसो नगर मे मुनि कवि श्री अमर चन्द जी भी गये थे । उस समय उनके मुनि भी वहाँ थे । कवि जी हर एक के परिचय मे आते हैं । इत्तिफाक से उधर जा निकले । दोनो मे आपस मे वाते होने लगी तो मुनि जी वोले—तुमने कपडे पहन रक्खे है, हम तुम से वात नही कर सकते । कवि जी कव चूकने वाले थे ! पास मे एक कुत्ता वैठा था । कवि जो ने व्यग मे कहा—अगर कपडे न होना ही अपरिग्रह है तो आप की व्याख्या के अनुसार यह भी अपरिग्रही है न ? इसके पास तो कोई उपकरण जैसी चोज भी नही है । फिर आप मुझ से नही तो क्या इससे वातें करेंगे ? यह उत्तर सुन कर उनकी अकल ठिकाने आ गई । तो वस्त्र-धारी साधुओ के प्रति ऐसी हीन भावना रखना कितनी वडी भूल है ?

तो दूसरे के अपमान की वात करना अपना ही अपमान कराना है । अत एव हरेक से सम्मानपूर्वक वात करनी चाहिए ।

मैं कह रहा था कि केवलज्ञान को हीरो-पन्ने के और सोने-चाँदी के सिंहासन भी नही रोक सकते । वह तो इन्हे भेद कर हो जाता है । राग-द्वेप की परिणतियो के सिवाय किसी मे भी उसे रोकने की शक्ति नही है । राग-द्वेप के वशीभूत होकर कोई कितनी ही तपस्या करे तव भी क्या वनने वाला है । वावी को चोट लगाने से साँप नही मरता । राग-द्वेप रूपी सर्प पर चोट करने से ही केवल-ज्ञान होगा । राग-द्वेषमयी दुर्भावनाएँ जव तक विद्यमान हैं, केवल-

ज्ञानप्राप्ति की आशा नही की जा सकती । जब तक सत्य को असत्य और असत्य को सत्य बताया जाता है और जब तक अपना काला बेटा भी सुन्दर नज़र आता है और दूसरे का रूपवान् बेटा भी काला दिखाई देता है, तब तक राग-द्वेष है, पक्षपात है और केवलज्ञान नही प्राप्त नही हो सकता ।

कहने का भाव यह है कि अच्छी चीज अच्छी ही है, चाहे वह मेरे पास है या दूसरों के पास है, हर जगह अच्छी है । वस्तु की अच्छाई किसी व्यक्ति पर निर्भर नही है, उसके गुणो पर निर्भर है।

तो मैं कह रहा था कि ससार के पदार्थ क्षणभगुर हैं और इनके पीछे पड कर अपने जीवन को वर्बाद कर देना मूर्खता है ।

तो कहा कि भरत जी ने लगोटी उतारी और केवलज्ञान हो गया, किन्तु यह तो बतलाइए कि मरु देवी माता ने कौन-सा गृहस्थ का बाना त्यागा था और साध्वी का बाना पहना था ? कौन-से राजसी वस्त्राभूषण उतारे थे ? वे तो हाथी के हौदे से भी नीचे नही उतरी थी । उन्हे शाही लिबास मे ही केवलज्ञान कैसे हो गया ? उन वस्त्राभूषणो ने और हाथी के हौदे ने केवलज्ञान को क्यो नही रोका ? तथ्य यह है कि इन मे से किसी मे भी केवलज्ञान को रोकने की शक्ति नही है जब उन्हे मालूम हुआ कि मेरा रिखबा—कन्हैया—बहुत दिनो के बाद आया है तो वे सजधज के साथ, मोह की मारी हुई, हाथी के हौदे पर बैठ कर वहाँ गई जहाँ भगवान् ऋषभ देव विराजमान थे। वह मन मे सोच रही थी कि आज अपने बेटे के दर्शन करूँगी । वह भी कैसा निर्मोही है । मैंने उसे पाल-पोस कर बड़ा किया और उसकी याद मे रो-रो कर दिन-रात व्यतीत किये, मगर उसने आज तक,जब से राज-पाट छोड साधु बना है मेरी

खबर नही ली । एक कागज तक नही दिया । आज मैं उसकी अच्छी खबर लूंगी । उपालभ देकर आज तक की मन की निकालूंगी ।

सज्जनो ! ऋषभदेव जी के लिए तो विश्व के सभी प्राणी माता, पिता, पुत्र, पुत्री आदि थे, वे किस-किसको पत्र लिखते ? अनादि काल से ससार मे भ्रमण करते हुए इस प्राणी के सब जीवो से सभी प्रकार के सम्बन्ध हो चुके हैं ।

सब जीवो के सब जीवो से सब सम्बन्ध हुए है ।
लोक प्रदेश असंख्य जीव ने अगणित वार छुए है ।।

इस चौदह राजू लोक मे अणु जितना भी स्थान शेप नही है जहाँ यह जीव उत्पन्न न हुआ और मरा न हो । आज कहता है यह धन मेरा, यह दुकान मेरी, घर मेरा, कुटुम्व मेरा । पर अरे भोले, इन पर न जाने किन-किन का अविकार हो चुका है । आज स्वेज़ नहर के लिए झगडा हो रहा है । कोई कहता है—इस पर हमारा अविकार है तो दूसरा कहता है—नही, इस पर हमारा पूरा अविकार है , पर उन्हे पता ही नही कि तुम्हारे जैसे अनगिनती आये और चले गये है । ससार का एक कण भी उनका नही हो सका ! यह धरती यही को यही रह गई । इसके लिए लाखो-करोडो का खून वहाया गया, अक्षौहिणियाँ खत्म हो गई और इस पर कब्जा करके भी न जाने कितने सूरमा चले गये । मगर यह पृथ्वी तो आज तक टस से मस नही हुई । वही की वही स्थित है । न किसी के साथ गई, न जायगी ।

तो मैं कह रहा था कि ऐसा कोई स्थान नही जहाँ इस जीव ने जन्म न लिया हो । स्थावर—मिट्टी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति मे भी अनन्त वार जन्म लिया । सिद्धशिला पर भी एकेन्द्रिय के

रूप में जन्मा है। पचेन्द्रियपन मे भी मोक्ष-क्षेत्र मे से गुज़रा है।

एकेन्द्रिय जीव जब ऊर्ध्वलोक से काल करके मनुष्य या पचेन्द्रिय तिर्यंच के रूप मे मध्य लोक या अधोलोक मे आते हैं, तो वे पहले सिद्धक्षेत्र को स्पर्श कर रहे थे। अब काल करके पचेन्द्रिय बन रहे है। एकेन्द्रियपन मे उनका सम्बन्ध छूट रहा है,अब उनकी गणना किस मे की जायगी ? एकेन्द्रिय जाति नाम कर्म के उदय से उन्हे जो एकेन्द्रिय जाति मिली थी, वह खत्म हो गई है। अब उनके पचेन्द्रिय जाति नाम कर्म का उदय हो गया है। वे सिद्धक्षेत्र से गुजर रहे है। उनकी गणना अपर्याप्त पंचेन्द्रियो मे ही होती है। वे पचेन्द्रिय जाति मे ही माने जाएँगे। मानो जिस आदमी को चैक मिल गया है, उसे रुपया मिल ही जायगा। इस अपर्याप्त दशा मे उनको पाँच भावेन्द्रियाँ है। इस प्रकार अपर्याप्त पचेन्द्रियपन मे भी यह जीव मोक्षस्थान का स्पर्श कर चुका है। परन्तु यह समझ लेना चाहिए कि मोक्षस्थान अलग चीज़ है और मोक्ष अलग चीज है।

तो मैं कह रहा था कि कोई ऐसी जगह शेप नही रही जहाँ ससारी जीव ने अधिकार न किया हो। पर वह अधिकार कायम नही रहा। यह जानते हुए भी यह जीव आज भूमि और मकान के लिए दूसरो का सिर फोडने के लिए तैयार रहता है। युद्ध करता हे, महाभारत की सृष्टि कर डालता है।

सज्जनो ! यह ऊपरी पदार्थ ही परिग्रह मे शामिल नहीं है किन्तु शरीर और कर्म भी परिग्रह मे सम्मिलित है। बल्कि इस शरीर के लिए ही बहुत-से साधन जुटाने पडते है, तो ऐसी बात नही है कि कपड़े पहनने से ही केवलज्ञान रुका हुआ है। एकेन्द्रिय से लेकर तिर्यंच पचेन्द्रिय जीव कहाँ कपडे पहनते है ? फिर भी

उन्हे केवलज्ञान नही होता । दूसरे हीरे पन्ने सोने-चाँदी आदि पदार्थो मे भी कोई शक्ति नही है कि वे केवलज्ञान को रोक सके । केवल-ज्ञान का विरोधी तत्त्व तो रागद्वेप है । मूर्छा, गृद्धि, आसक्ति ही परिग्रह है । मेरे हाथ मे यह पुस्तक है—ज्ञान का साधन है । अगर मै इस का उपयोग नही करता हूँ और सिर्फ हिफाजत करता रहता हूँ और सोचता हूँ कि यह कही फट न जाय और मैली न हो जाय, यह सोच कर काम मे नही लेता हूँ तो यह नोटो से भी ज्यादा परि-ग्रह है । अत एव वस्त्राभूषणो के उतारने से ही केवलज्ञान नही हो जाता । उन सब को शान के साथ धारण करने पर भी यदि उन के प्रति आसक्ति-भाव निकाल दिया जाय तो केवलज्ञान-दर्शन प्रकट हो जायगा ।

हाँ, तो मरुदेवी माता हाथी के हौदे पर वैठी हुई और परिग्रह को धारण किये हुए कहती है—मेरा छोकरा ऐसा निर्मोही निकला कि उसने एक कागज भी न दिया । उनकी यह भावना परिग्रह है, वच्चे का मोह परिग्रह है । यही केवलज्ञान मे वाधक है । मोह से ग्रस्त हो कर वह कहती है ।—

म्हासू मूँडे वोल ।
वोल वोल आदीश्वर व्हाला,
काँई थारी मरजी रे, म्हासूँ मूँडे वोल ।
वार तिवोर ताता भोजन वन कर आता रे,
थारी याद मे ठडा हो जाता, पूरा न भाता रे ।
म्हासू मूँडे वोल ॥

सज्जनो ! माता के मन मे मोह की कैसी जवर्दस्त तरग उठ रही है ! माँ की ममता का सागर फूट पडा है, हृदय मे उथलपुथल

मच रही है। अपने वेटे के दर्शन के लिए कितनी उत्कठा और कैसी उतावल है !

सज्जनो ! किस किस माँ को रोएँ ? एक माँ हो तो उसका ख्याल भी रक्खा जाय, किन्तु जव अनन्त जन्मो में अनन्त माताएँ हो चुकी है तो किस-किस का ख्याल रक्खा जाय ? यहाँ तो सभी जीव किसी न किसी जन्म की माता हैं !

यही वात जम्वू कुमार ने माता के एक प्रश्न के उत्तर मे कही थी—

एक लोटा पानी पीऊँ री, माता ! माय ने वाप अनेक।
सगलाँ री दया पालसू माता ! आप समाना लेख।
माता मेरी साँभलो जननी ! लेसू सयम भार ॥

सज्जनो ! यह वैराग्यमय-गाना पुराने चावल हैं। नये चावलो का तो मलीदा ही वन जाता है। पुराने चावल खिल कर लम्वे-लम्वे हो जाते है। इसी प्रकार जो आनन्द-उल्लास और वोलने का मजा पुराने रागो मे है और पुरानी कविताएँ जैसी भावपूर्ण होती है, वैसी आजकल की, नई तर्जो मे वनाई हुई, इधर-उधर की कविताओ मे मजा नही है। उनमे भावो की गहराई नही पाई जाती।

तो जम्वू कुमार को जव वैराग्य हो गया तो आठो विम्वोष्ठियो को भी छोडने को तैयार हो गये, दहेज मे आया ९९ करोड़ का धन और विपुल पैतृक धन भी त्यागने को उद्यत हो गये। तव माताजी ने जम्वूजी से कहा—वेटा, वडी आशाओ से पाल-पोस कर तुझे वडा किया है और अव तू अपनी माता को मँझधार मे छोड कर जाना चाहता है। तू इस अन्धी की लकडी का सहारा है। इस वुढिया पर दया कर। तेरे दिल मे इतनी भी दया नही है ? क्या इसीलिए मैंने

तुझे इतना वडा किया है कि इस असहाय दशा मे छोड कर चला जाय ? जरा विचार कर तो देख बेटा !

यह सुन कर जम्बू कुमार बोले—माता जी, आप ठीक कहती है। माता-पिता को दुख देना तो अच्छा नही है, मगर मै किस-किस माता-पिता की सार-सँभाल करूँ। मैं एक लोटा पानी पीता हूँ तो उसमे असख्य जीव है और वे असख्य वार मेरे माता-पिता हो चुके है। उन्हे मै जठराग्नि मे छोड कर भस्म कर देता हूँ। अव मैं समझ गया हूँ कि वे सव जीव मेरे पूर्वभव के माता-पिता है। इसी कारण तो मैं उन सव की रक्षा करना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ, मेरे निमित्त से किसी भी प्राणी को कष्ट न हो। मैं सव की पालना चाहता हूँ। मेरी आन्तरिक अभिलापा है कि मेरे द्वारा किसी को नुकसान न हो। नीति के अनुसार वहुत लाभ के लिए थोडा लाभ त्याग दिया जाता है। लोहवणिक् के समान वनने से वाद मे पश्चात्ताप का ही भागी वनना पडता है।

कुछ वणिक् वनोपार्जन के लिए घर से निकले। रास्ते मे उन्हे लोहे की खान मिली। सव ने लोहा उठा लिया। आगे चले तो ताँवे-पीतल की खान मिली। उन्होने लोहा छोड कर ताँवा-पीतल ग्रहण कर लिया। फिर आगे वढने पर चाँदी की खान मिली तो चाँदी ले ली। मगर उनमे से एक लोहे के वजन को ही उठाये चलता चला। उसने न ताँवा लिया, न चाँदी ही। और आगे वढने पर जव सोना मिला तो अन्य वणिको ने तो चाँदी फैंक कर सोने की पीली-पीली डलियाँ उठा ली, परन्तु उस लोहवणिक् ने उस ओर भी फूटी आँखो से न देखा। वह लोहे की गठरी वाँधे ही चलता रहा। आगे जाने पर हीरे-पन्ने मिले तो दूसरे अक्लमदो ने सोने की डालियाँ फैंक

दी और कीमती जवाहरात उठा लिये। मगर लोहवणिक् का दिल न पिघला। वह उठाये हुए लोहे को न फैंक सका। साथियो ने वहुत समझाया, किन्तु उसने एक भी न सुनी। उसने कहा—वाह साहव वाह ! मैं जव इतनी दूर से लोहे को उठाये ला रहा हूँ तो अव कैसे फैंक दूँ ? अजी, मनुष्य का कोई ध्येय होना चाहिए। मैं मुरादावादी लोटा नही हूँ कि इधर-उधर लुढकता फिरूँ। मेरा एक विचार है और वह अटल है। मैं घर जाकर ही लोहे को छोड़ूँगा। मुझे जो सव से पहले मिल गया, वही मेरे लिए जीवनाधार है।

किन्तु अरे मूर्खशिरोमणि ! निरक्षर भट्टाचार्य ! तू रत्नों के वदले मे भी लोहे को छोडने के लिए तैयार नही है तो तेरे जैसा विवेकहीन ससार मे और कौन होगा ? तेरे जैसा मूर्ख तो विश्व के अजायवघर मे ही रखने योग्य है। खैर, तू अपनी जिद और हठधर्मी का फल भोगेगा। उस समय हाथ मल-मल कर पछताएगा।

आखिर वही हुआ। दूसरो ने रत्नो को वेच कर लाखो रुपये कमाये, जिस से आलीशान गगनचुम्वी हवेलियाँ वनवाई, दुकाने खोल ली और शाहीजीवन विताया, पर लोहवणिक् थोड़े से पैसे पा सका, और उन्हे थोडे ही दिनो मे खा-पीकर समाप्त कर दिया।

लोहवणिक् दर-दर का भिखारी वन गया। अपने साथियों का रग-ढग देख कर पश्चात्ताप करने लगा। तव साथियो ने उस से कहा—हम ने पहले ही तुम्हे खूव समझाया था कि यह लोहा फैंको और रत्न ले लो, पर तुमने एक न मानी और अपनी ही जिद पूरी की। अव उसका दुष्परिणाम तुम को ही भोगना पडेगा। उसने कहा—वात ठीक है। मैंने उस समय भारी भूल की, पर अव क्या हो सकता है। अव तो दरिद्रता ही मेरे भाग्य मे है।

सकल पदारथ है जग माही,
करमहीन नर पावत नाही।

उक्ति है—'पदे पदे निधानानि' अर्थात् कदम-कदम पर निधान गड़े हुए है, और पग-पग पर वूटियाँ है, मगर भाग्यहीन को इनकी प्राप्ति नही होती। वह उन से वंचित ही रह जाता है।

पूज्य धर्मदास जी म० के सम्प्रदाय के पूज्य नन्दलाल जी म० और चम्पालाल जी स्वामी का एक वार उदयपुर मे चौमासा था। पंजाव प्रान्त के श्री छोटेलाल जी महाराज का चौमासा भी वही था। चम्पालाल जी म० और छोटेलाल जी महाराज एक वार शौचादि के लिए पहाड की तरफ चले गये। तव चम्पालाल जी महाराज ने कहा—छोटेलाल जी! देखो, यह जडी खडी है जो लोहे को सोना वना देती है। किन्तु भाग्य के विना किसी को कुछ मिलने वाला नही।

साधु सव कुछ जानता हो तो भी गृहस्थ को ऐसी वात नही वता सकता, क्योकि वह तीन करण और तीन योग से सावद्य क्रिया का त्यागी होता है।

आशय यह है कि भाग्य के विना कुछ नही मिलता। आज भी उस लोहवणिक् के साथी वहुत है। वे भाग्यहीन तरोताजा और उन्नत विचार मिलने पर भी नही ले सकते। वे कहते है—हमारे पूज्य महाराज ने तो ऐसा कहा था। हम उन के कहने का निरादर नही कर सकते। अरे मूर्खो! उन्होने समय के अनुसार ठीक कहा था। उस समय सम्प्रदायो की आवश्यकता थी। अत एव उन के अनुसार चलना उचित था, उपयुक्त था। उस समय औरो ने भी अपनी-अपनी मर्यादाएँ वाँध ली थी। सव ने अपना-अपना कार्यक्षेत्र

सीमित कर लिया था और उसी सीमा मे कार्य करते थे। परन्तु धीमे-धीमे जब सम्प्रदायो मे कलह होने लगा और लाभ के बदले हानि होने लगी, प्रचार की जगह सहार होने लगा, इन सब के फल स्वरूप शासन की हानि होने लगी तो उन्होने सोचा—इस लोह के भार को डाल कर चाँदी, सोना और रत्न उठाना ही श्रेयस्कर है। धर्म-शासन के अभ्युदय के लिए यही हितकारी है। तब उन्होने रत्नो की गाँठे बाँध ली। हम उन महापुरुषो की मर्यादाओ का अपमान नही करते। शास्त्रो मे भी गच्छो का वर्णन आया है। जब तक वे गच्छ धर्म की उत्तरोत्तर वृद्धि करते हैं और अपने-अपने दायरे मे धार्मिक जागृति कायम रखते है, तब तक तो ठीक है, किन्तु जब धर्म की जगह अधर्म को और, प्रेम के स्थान पर द्वेष को प्रश्रय मिलता हो और वे अग्नि को बुझाने के बदले अधिक प्रज्वलित करते हो तो कुछ दूसरी बात सोचनी पडती है और उसे रोकना पड़ता है।

हम उस आग मे अपनी ओर से एक आहुति और दे दे यह नही हो सकता। दुनिया के लोगो! नये पत्ते आते है तो वे वृक्ष की शान बढ़ाते है और वृक्ष फूलता फलता है। अगर वही पुराने पत्ते लगे रहे तो वृक्ष की शोभा नही रहती। अत एव निसर्ग के नियम के अनुसार पुराने पीले पत्ते झड जाते है और नूतन कोपले फूट पडती है। वे वृक्ष को नये सिरे से लहलहा देती है।

और वे नये लगने वाले पत्ते ही होते है, कोई पत्थर नही होते। जो ताजगी नये पत्तो मे होती है। वह पुराने पत्तो मे नही होती और उन से लाभ भी क्या है? जब धीरे-धीरे उन मे विकार आ जाता है, वे सब स्वय झड जाते है।

उन सम्प्रदाय वालो ने यह नही कहा था कि तुम दूसरे सम्प्रदाय वालो को नमस्कार मत करना और उन्हे गुरु मत समझना। हमारे तीर्थंकरो ने तो एक ही पाठ पढाया था—'णमो लोए सव्व-साहूण।' अर्थात् लोक के सभी सच्चे साधुओ को नमस्कार है। उन्हो ने पाकिस्तान और हिन्दुस्तान की तरह सम्प्रदायो का बँटवारा नही किया था। उन महापुरुषो के मन मे सकीर्ण एव रागद्वेषमय विचार-धारा नही थी।

किन्तु कालान्तर मे द्वेपी, क्लेशप्रिय और ढोगी लोगो ने अपने स्वार्थ का पोपण करने के लिए और मान-प्रतिष्ठा के लिए सम्प्रदायो को विकृत कर दिया। महापुरुपो की बुद्धि सन्तुलित थी और बुद्धि ठीक-ठीक काम कर रही थी। जिन वातो मे विकृति नही आई वे आज भी कायम है, पर जो वाते कुछ का कुछ रूप धारण कर चुकी है, विकृत हो चुकी है, उन्हे कॉट-छॉट कर निकाल देने मे ही बुद्धिमत्ता है। जो कमी महसूस होती हो, उसकी पूर्ति करनी चाहिए। लोह-वणिक् की तरह सडे-गले अर्थहीन, राग-द्वेपोत्पादक सम्प्रदायो को मोह-वश पकडे रखना बुद्धिमत्ता नही है, व्यर्थ का भार उठाये चलने मे कोई सार नही है। पहले जो भार उठाया तो वह भी ठीक था, पर जव रत्न मिल गये तव भी उसी भार को उठाये रहना तो मूर्खता ही होगी।

लोह-वणिक् ने समझाने पर भी लोहे को नही छोडा। वह छोडे भी क्यो? लोह-वणिक् जो ठहरा! उसकी डेढ चावल की खिचडी तो अलग ही पकेगी। चाहे पतेली फट जाय और खिचडी भी न पके, वह इस वात की परवाह नही करेगा। मगर उसकी यह नीति घातक नही तो क्या है?

अरे मूर्ख, साथी तो तेरे हितैषी है और वे चाहते है कि अव भी तू सम्प्रदायवाद के लोहे को छोड दे और हमने जो हीरो-पन्नो की कठी तैयार की है, तू भी उसका एक मणि वन जा ! सव के साथ अपनी शान को वढा ।

मगर जिन्हे मिर्चो की ही माला पहननी है, वे तो उसे ही पहनेगे । अरे, मिर्चो की माला पहनेगा तो खाँसी के मारे दम फूल जायगा और छाती मे धसका लगेगा ।

भाई, आँखे खोल कर देखो कि ससार मे क्या हो रहा है ? जमाने की क्या पुकार है और तुम किधर जा रहे हो ?

सज्जनो ! साथियो ने तो उसका भला ही चाहा और कहा—लोहे को छोड दे, पर उसने नही छोडा तो अन्त तक रोना ही शेप रह गया । वह तो एक ही जन्म मे रोया, किन्तु राग-द्वेप के पुजारी रूढिवादियो को तो भव-भव मे रोना पड़ेगा । पर जिनके भाग्य मे ऐसा वदा है उन्हे रोना ही पडेगा और भाग्य मे जो मिलना लिखा है वही मिलेगा । मगर कर्मो पर विश्वास भी तो होना चाहिए । हाँ, भाग्य पर विश्वास करके ही पुरुपार्थ को वालाएताक भी नही रख देना चाहिए । भगवान् ने पुरुपार्थ पर वडा जोर दिया है । भगवान् ने कहा कि भाग्य के अनुसार मिलेगा, परन्तु उसके लिए भी पुरुपार्थ की आवश्यकता है ।

जिसे भाग्य पर भरोसा है उसे व्लैकमार्केटिंग और धोखा देही नही करनी पड़ती । वह तो यही मानता है कि प्रारव्ध मे जो है वह मिल कर ही रहता है ।

एक पण्डित जी घूमते-घूमते किसी राज्य मे जा पहुँचे । वे राजा के दरवार मे गये । राजा ने उनका खूव सम्मान किया, क्योकि

गुणवानों की सब जगह कद्र होती है। राजा ने उनसे पूछा—आप क्या काम करना जानते है ?

पण्डित जी—मै कथावाचक हूँ।

राजा—अच्छा मुझे और मेरी प्रजा को यही रह कर कथा सुनाओ।

पण्डित जी—वहुत अच्छा, मै आपकी सेवा करने को तैयार हूँ। इसी लिए आया हूँ।

राजा—मगर आप क्या लेगे ?

पण्डित जी—हजूर, कथा की क्या कीमत है ? जो भाग्य मे होगा, पूर्णाहुति पर मिल जायगा।

राजा—मैं आपको एक अशर्फी दूँगा।

ब्राह्मण सन्तोपी जीव था। उसने कथा प्रारम्भ कर दी।

उसने ईमानदारी से कथा सुनाई और जव वह जाने लगा तो राजा ने एक अशर्फी दे दो। वह उसे लेकर चला गया और बाजार मे जिस दुकान से उसका लेनदेन था, उसे हिसाव करके एक रुपया दे दिया और चार रुपये बाकी रह गये, पण्डित ने उससे कहा—तुम मेरी पोथी रख लो। मै शेष रुपया देकर इसे उठा ले जाऊँगा।

दुकानदार को पण्डित पर विश्वास हो गया कि आदमी सच्चा है तो उसने कहा—पण्डित जी, पुस्तक रखने की आवश्यकता नही है। मैंने भी आपकी कथा सुनी थी और वदले मे कुछ भेंट देनी चाहिये। मै यह चार रुपया आप को भेंट करता हूँ। कल आप मेरे यहाँ भोजन करना।

इधर यह बात हो रही थी, उधर किसी ने राजा से कह दिया—महाराज, आप ने जिस पण्डित को अशर्फी दी थी, वह आप के सामने तो कुछ नही कह सका, किन्तु पीछे से बहुत नाराज हुआ। आप जानते है कि ब्रह्मतेज बडा विकट होता है वह भस्म कर देता है।

राजा ने सोचा— इसका प्रायश्चित्त करना चाहिए। यह सोच कर उसने एक आल मँगवाई और उसमे छेद करके सौ मोहरे भर दी और छेद बन्द करा दिया। वह आल दूसरे ब्राह्मण को दान मे दे दी गई। राजा को तसल्ली हो गई कि अब मैं ब्रह्मकोप से मुक्त हो गया।

ब्राह्मण वह आल ले कर जा रहा था और संयोगवशात् उस दुकानदार सेठ का नौकर शाक लाने गया था, रास्ते मे दोनो का मिलाप हो गया। नौकर ने कहा—मै भी आल लाने जा रहा हूँ। ब्राह्मण बोला—यही ले लो न ! मैं इसे ले जाकर क्या करूँगा ?

नौकर ने दो पैसे दे कर आल ले ली और घर जाकर सेठ को सँभाल दी। सेठ ने वही आल पडित जी को शाक बनाने के लिए दे दी। साथ ही आटा, दाल, घी, शक्कर वगैरह सामान भी दे दिया और कहा—पडित जी, प्रेम से भोजन बना कर जीमिये।

पण्डित जी ने ज्यो ही आल काटी कि सौ मोहरे निकल पडी उन्होने भोजन बना कर खाया। मोहरो की बात खुफिया तौर पर राजा के पास पहुँच गई। उसे मालूम हो गया कि मोहरे उन्ही कथा-वाचक के पास पहुँच गई हैं। तब राजा ने उन्हे बुलाया और ऊँचे आसन पर बिठा कर कहा—पडित जी, आप बडे सन्तोषी और भाग्य पर भरोसा करने वाले है। आप की मोहरे जैसे-तैसे करके आप के पास पहुँच ही गई।

सज्जनो ! किन्तु आज कर्म-सिद्धान्त को मानने वालो को अपने भाग्य पर भरोसा नही है।

अभिप्राय यह है कि आजीविकोपार्जन के लिए बेईमानी मत करो। बेईमानी से मिलता है तो ईमानदारी के साथ भाग्य पर विश्वास रखने से भी मिल सकता है। भाग्य का लिखा अवश्य मिलेगा। उसे कोई रोकने वाला नही है। परन्तु विश्वास कहाँ है अपने भाग्य पर ! तभी तो पाप की पोटली बाँधते जाते है।

भाइयो ! मनुष्य भूखा उठता है पर भूखा सोता नही है। कीडी को कन और हाथी को मन मिलता ही है। मगर निष्ठा होनी चाहिए। निष्ठा के बिना काम बनने वाला नही है।

तो मैं कह रहा था कि कर्मवश होकर इस जीव ने सब जगह जन्म लिया है और सब जीवो के साथ सम्बन्ध स्थापित किया है। ससार के सभी पदार्थों को भोगा है। इतना होने पर आज भी जीव विरक्त होने को तैयार नही।

शास्त्रकार कहते है–निर्वेदनी कथा यही बतलाती है कि ऐ मनुष्य ! तू जिन क्षणभगुर पदार्थों के पीछे पडा है, वे बादल की छाया के समान है। उनके बनने बिगडने मे देर नही लगती। अत एव इन के पीछे न पड कर आत्मसाधना करना ही उचित है। जो विवेक-शील प्राणी आत्मा की साधना करते हैं, वे ससार–समुद्र को पार कर अनन्त सुख के भाजन बन जाते है।

ब्यावर
४-१०-५६

———

प्रभावना-आचार (४)

निर्वेदनी धर्मकथा

उपस्थित सज्जनो !

कल सम्यक्त्व के आठवे प्रभावना नामक आचार के अन्तर्गत निर्वेदनी धर्मकथा के सम्बन्ध मे बतलाया गया था। आप जानते है कि धर्म की प्रभावना करना सम्यग्दृष्टि का प्रधान कर्त्तव्य है और धर्मकथा प्रभावना का सर्वोत्तम उपाय है। धर्मकथा को सुन कर मिथ्यात्वी जीव मिथ्यात्व से हट कर सम्यक्त्व के मार्ग पर आते है।

धर्मकथा से जीव को भान होता है कि मिथ्यात्व जीव के लिए दु ख रूप है, ससार परिभ्रमण का कारण है और जो जीव सम्यक्त्व को धारण करता है, वह ससार-सागर से पार हो जाता है। अर्थात् जन्ममरण की महाव्याधि से छुटकारा पा लेता है। वही जीव इस लोक तथा परलोक मे सुखी बनता है।

तो धर्मकथा वह साधन है जो जीव को मिथ्यात्व मे छुड़ा कर सम्यक्त्व की ओर उन्मुख करता है। यही नही, जिन्होने सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया है पर सम्यक्त्व मे दृढता एव प्रगाढता नही पाई है, उनके लिए भी धर्मकथा अतीव उपयोगी सिद्ध होती है।

यो तो सम्यक्त्वी कहलाने वाले बहुत हैं और गुरु से सम्यक्त्व ली भी जाती है, किन्तु चित्र को पूरी तरह चित्रित नही किया जाता तो वह अधूरा ही रह जाता है। इसी प्रकार व्यवहार से सम्यक्त्व धारण कर लिया, किन्तु उसमे मिथ्यात्व के धब्बे लगे हुए है और वे

चित्र को अशोभनीय वना रहे है, और उसके सौन्दर्य को खराब कर रहे हैं, तो इस कमी को पूरा करने के लिए भी धर्मकथा को सुनने की आवश्यकता है।

धर्मकथा को सुनने से सम्यक्त्व के भव्य चित्र मे लगे हुए मिथ्यात्व के धव्वे दूर हो जाते है और इन धव्वो से कोई विरला ही वचा होता है। यही धब्बे और यही छीटे चित्र को खराव करते है।

सज्जनो! चित्र तो तभी ठीक आएगा जव तुम स्वय ठीक होओगे। जव फोटो खिचवाते हो तो तुम्हे ठीक मोशन मे—ठीक ढग से-बैठना होता है। अगर थोडी-सी भी गलत चीज दिखाई देती है तो फोटोग्राफर फौरन टोकता है कि इस तरह मुँह रक्खो और गर्दन जरा ऊँची या नीची करो आदि। फिर वह कैमरे मे देख कर अदाज करता है और थोडी-सी खामी नजर आती है तो उसी समय दूसरी वार चेतावनी देता है। फोटो खीचने पर भी यदि उसे सन्तोष नही होता तो वह दूसरी फोटो खीचता है और सन्तोप हो जाता है तो नही खीचता।

तो याद रखिए, फोटो खिचवाने वालो को फोटोग्राफर के इगारे पर वरावर सावधानी से वैठना पडता है। उस समय के लिए अपने शरीर को और इन्द्रियो को पूरी तरह नियत्रण मे रखना पडता है, मानो कोई चित्र लिखित मूर्ति हो। वहाँ वरावर यही खयाल रहता है कि कही मेरा फोटो खराव न हो जाय।

जहाँ नाशमान भौतिक फोटो खिचवाने के लिए भी इतनी सावधानी-सतर्कता-जागरूकता, अप्रमत्तावस्था रखनी पडती है, मुस्कराती शक्ल मे आना पडता है और कई साधन जुटाने पडते हैं, वहाँ इस फोटो को खिचवाने के लिए कितनी सावधानी न वरतनी

होगी ? इस फोटो को खिचवाते ज़माने के जमाने गुज़र गए, फिर भी नुक्स रह गया और चित्र पूरी तरह साफ नही खिच सका। पूरा चित्र तैयार हो जाता तो वेडा पार ही न हो जाता।

अरे, ये मिथ्यात्व के धव्वे ही तो चित्र को विगाड रहे है। और तुम अपनी आदत से लाचार हो। जव फोटोग्राफर 'रेडी' वोलता है तो तुम आढे-टेढे हो जाते हो और वह फोटो फिर जैसा का तैसा आ जाता है। जैसे तुम स्वय होओगे, वैसा ही तो फोटो आएगा।

यह संसार भी एक कैमरे की तरह है। इस कैमरे मे भी फोटो खीचे जाते है। जैसा 'व्यू' होगा, 'पोज़' होगा, वैसा ही तेरा चित्र ससार के सामने आएगा। उस कैमरे का तो यही काम है कि उन के सामने जैसी वस्तु हो उस का वैसा ही फोटो खीच ले। अत एव जो चीज जैसी स्थिति मे होगी, वह वैसी ही चित्र मे आए-गी। यह नही हो सकता कि तू तो और रग मे खेले, तेरी सूरत-शक्ल और आकृति तो और ही ढग की हो और फोटो दूसरी तरह का आ जाय। जव जड कैमरा भी हूवहू वैसा ही फोटो खीचता है तो यह ससार रूपी कैमरा दूसरी तरह की फोटो कैसे खीच सकता है ?

ऐ मानव! संसार के सामने जैसी तेरी क्रिया होगी, वर्त्ताव होगा, ससार के लोगो के हृदय रूपी कैमरा में वैसा ही फोटो आए-गा। लोगो की तेरे प्रति वैसी ही भावना हो जायगी। उन के हृदय मे तेरे लिए वैसा ही स्थान वन जायगा।

अगर एक वार भी पूर्ण रूपेण शुद्ध चित्र चित्रित हो जाय तो आत्मा कृतकृत्य हो जाती है और फिर उसे संसार रूपी कैमरे मे

फोटो खिचवाने की आवश्यकता नही रहती। उस हालत मे ऐसा फोटो खिचता है कि उस के आगे सब फोटो मात हो जाते है।

मनुष्य का चित्र एक अवस्था का नही होता। शैशव काल का, बाल्यावस्था का, किशोरावस्था का, युवावस्था का और वृद्धा-वस्था का, अलग-अलग होता है। किन्तु याद रखना, ये चित्र तो नष्ट हो जाने वाले है। हाँ, यदि क्षायिक समकित का चित्र खिच जाय तो वह टूटने वाला और नष्ट होने वाला नही है। वह चित्र सदा साथ रहने वाला है। हमने और-और तरह के चित्र तो खिच-वाए और उन्हे देख-देख कर प्रसन्न भी हुए, किन्तु आत्मा के चित्र की ओर ध्यान नही दिया। यह नही देखा कि मेरे शरीर पर जो अलौकिक छटा नजर आ रही है, वह आत्मा की नही है, वह तो पुद्गल की है। आत्मा इन सब के परे है।

सज्जनो! गुलाब के फूल का फोटो खीचा जाता है तो वह बडा सुन्दर प्रतीत होता है। बढिया रग और एक-एक पखुडी खिली हुई। उस कैमरे मे गुलाब के फूल का चित्र तो वैसा ही आ गया, परन्तु फूल में रही हुई सुगन्ध तो चित्र मे नही आ सकती। आज तक तो ऐसा सुनने मे आया नही, कदाचित् वैज्ञानिक ऐसा कोई आविष्कार करे और गध भी फोटो मे आने लगे तो भी क्या है? फूल भी पौद्गलिक है और उसका गधगुण भी पौद्गलिक है। गुलाब का जो फूल नजर आता है, वह उसका स्थूल रूप है और सुगन्ध सूक्ष्म रूप है, किन्तु दोनो ही इन्द्रिय-ग्राह्य होने से पुद्गल है। फूल साकार है तो उसकी खुशबू भी साकार है। फोटो निराकार का नही आ सकता, साकार का आ सकता है। इस पृथ्वीतल पर ऐसा कोई माई का लाल पैदा नही हुआ और न होगा, जो निराकार का

फोटो ले सके। कैमरा साकार है और साकार साकार का ही फोटो ले सकता है। निराकार का तो कैमरा ही निराला है। वह अविनाशी है और उसमे आने वाला चित्र भी अविनाशी है। वह निराकार कैमरा क्या है? सिद्धो की आत्मा।

जितना ही साफ कैमरा होगा, उतना ही साफ चित्र आएगा। इसी प्रकार आत्मा जितनी परिमार्जित होगी, राग-द्वेष के मैल से धुली हुई होगी उसका प्रतिभास भी उतना ही निर्मल होगा। किन्तु आत्मा का साक्षात्कार जड से नही, चैतन्य से होगा। जिन महापुरुषो ने भी आत्मसाक्षात्कार किया है, आत्मा से ही किया है। अज्ञानी जीव आत्मा का साक्षात्कार करने के लिए वन मे विचरण करता है, कठोरतर तपश्चरण भी करता है और नदी-नालो की खाक भी छानता फिरता है फिर भी आत्मा का साक्षात्कार नही होता, क्योकि कैमरा साफ नही है।

तो निराकार का चित्र खीचना साधारण बात नही है, कोई हँसी मज़ाक नही है। स्वय भगवान् महावीर ने आत्मा के चित्र को खीचने के लिए २७ जन्मो तक खूब मिहनत की थी। तब कही २७वे भव मे वह चित्र पूर्णतया खिच पाया था और चित्र क्या खिचा, वे स्वय कैमरा बन गये और स्वय ही चित्र बन गये।

सज्जनो! तमाशबीन बन जाना मुश्किल नही है। दो-आना का टिकट लिया नही कि झट तमाशबीन बन गये। तो तमाशबीन बनना मुश्किल नही, मुश्किल है तमाशा बनना। तमाशा बनता है लाखो रुपये खर्च करने पर। एक-एक फिल्म के बनाने मे कई-कई लाख खर्च हो जाते हैं। बड़े-बड़े भवन बनाने पड़ते है, अभिनेताओ और अभिनेत्रियो को हज़ारो भेट करने होते है, दूर-दूर जाकर शूटिंग

लेनी पडती है और कई वर्षों वाद एक फिल्म तैयार हो पाती है। इसके वाद कही तमाशा देखने को मिलता है। पर आज का मानव तमाशवीन तो वनना जानता है, पर तमाशा नही वनना जानता। अगर मानव स्वय तमाशा वन गया होता तो इस का फल यह होता कि आज जहाँ वह तमाशवीन वन कर तमाशे के पास जाता है, वहाँ दूर-दूर से लोग उसे देखने आते। पर तमाशा वनने के लिये आत्म-भोग और वलिदान की आवश्यकता पडती है। भगवान् महावीर जव स्वय तमाशा वन गये तो किसी देव के पास नही जाते थे और न वुलाने के लिए दुनिया के लोगो के पास जाते थे, वल्कि वारह प्रकार की परिषद् स्वय ही तमाशवीन वन कर उनके पास दौडी आती थी और टकटकी लगा कर उस तमाशे को देखती थी। दुनिया के लिए वह भी एक अलौकिक तमाशा था। देवताओ के स्वर्गीय नाटक भी उस तमाशे के आगे फीके पड जाते थे। देवगण स्वर्गीय विलास को त्याग कर और वत्तीस प्रकार के नाटक को छोड कर भगवान् का दर्शन करने और उनकी वाणी को सुनने के लिए आते थे। इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान् रूप तमाशे के सामने दिव्य नाटक का सुख भी फीका प्रतीत होता था। भरे हुए देव-विमान सग ऽ ऽ ऽ ऽ करते हुए चले आते थे। सौ दो सौ नही, करोडो देवता चले आते थे।

तो विना किसी सकोच के मानना पडेगा कि उन्होने आत्म-साधना की और लोकोत्तर आलोक प्राप्त किया जिससे वे स्वय तमाशा वन गए। लेकिन भगवान् कही घोषणा करने नही गये कि तुम मेरे पास आना। भ्रमर स्वय ढूँढ लेते है कि फूल की खुशबू कहाँ है ?

सज्जनो ! भ्रमर भी काला होता है और गोवर का गिडोला भी काला होता है, मगर दोनो की प्रकृति मे कितना अन्तर है ? भ्रमर सुगन्वित पुष्पो को ढूँढता फिरता है और गिडोला गोवर को ही ढूँढता है। दोनो ही अपनी आदत से लाचार है। भ्रमर फूल का आशक है—प्रेमी है, और वह फूल की तरफ ही जाता है जब कि गोवर का कीडा गोवर को ही पसन्द करता है।

और गुलाव का फूल तथा गोवर भी अपने-अपने गुण-स्वभाव से लाचार है। गोवर के पास दुर्गन्ध है और वह उसी को दे सकता है। वह गुलाव की सुगन्ध नही दे सकता। और गुलाव मे से गोवर की वास नही आ सकती। गुलाव को गोवर वनने की आवश्यकता भी क्या है ? किसी को निमत्रण देने की भी क्या जरूरत है ? भ्रमर, जो सुगन्ध के रसिक है और जिनका जीवन ही सौरभ के विना शून्य है, वे स्वय खोजते हुए उसके पास जा पहुँचते है।

तो कहने का आशय यह है कि यह आत्मा गिडोले का साथी तो अनन्त काल से वना हुआ है, किन्तु गुलाव के सुगन्वित पुष्प की सुगन्ध लेने वाला भ्रमर नही वन सका। आश्चर्य है कि मनोहर उद्यान मे विविध प्रकार के पुष्प पुष्पित हो रहे है। अपनी अद्भुत छटा दिखला रहे है। फिर भी दुर्भाग्य-वश उनसे जीवन सुवासित नही वनाया जाता। कुसुमोद्यान मे कई ऐसे फूल भी होते है जिनके जीवन मे सुगन्ध नही होती, भला वे दूसरो को सुगन्धित कैसे कर सकते है ?

तो भगवान् महावीर का जीवन सौरभ से परिपूर्ण था। जो अध्यात्म-प्रेमी भ्रमर उनके दर्शन के लिए आते थे, उन्हे अध्यात्मवाद की झलक विशेष रूप से दिखाई देने लगती थी।

जव वैराग्य आता है तो हरिद्वार और वृन्दावन तथा वनो मे ढूँढता फिरता है कि ऋपि-मुनि मिल जाय। तो मै पूछता हूँ कि ऋपि-मुनि के जीवन मे ऐसा क्या आकर्पण है कि जिसके लिए राजा महाराजा उन्हे जगलो मे खोजते फिरते हैं? वह आकर्षण उन महान् आत्माओ का अलौकिक त्याग ही तो है। सच वात तो यह है कि आत्मानन्द आत्मा मे ही है। महात्माओ की सगति एक वाह्य निमित्त मात्र ही है। मोक्षाभिलापी को अपने आत्मदेव पर विश्वास रख कर अपनी इस सिद्धि की ओर अग्रसर होना चाहिए।

एक कवि ने कहा है—

एक गुल पर हो फिदा वुलवुल तू हरजाई न वन।
खुद तमाशा वन मगर दुनिया तमाशाई न वन।

सज्जनो, एक चिडिया होती है काली और उसका पिछला भाग लाल होता है, उसे वुलवुल कहते है। उसे फूल से प्रेम होता है। उर्दू का शायर उस से कहता है—ऐ वुलवुल तू एक ही फूल की उपासिका—चरणसेविका—वन जा। उसी के चरणो मे अपनी सेवा समर्पित करदे। हाँ, पहले तू जाँचपडताल कर ले और वाग मे घूम कर फूलो को देख ले और जिस फूल मे सुगन्ध और सौन्दर्य दोनो उत्तम हो, उस पर कुर्वान होजा। अपना सर्वस्व निछावर कर दे। कभी इस फूल पर और कभी उस फूल पर जाने मे तेरी शोभा नही है। एक अपने पति पर निष्ठा रखने वाली पत्नी पति-व्रता कहलाती है और इधर-उधर घूमने वाली कुलटा कहलाती है। उसे स्वैरिणी सज्ञा दी गई है।

सज्जनो, जव तुम्हे शुद्ध देव गुरु धर्म रूपी सुगन्धित पुष्प मिल गया तो फिर उसी पर निछावर हो जाओ, उसी पर अपनी दृष्टि

केन्द्रित कर लो। फिर इधर-उधर देखने की आवश्यकता नही है। ऐसा करते-करते एक दिन तुम स्वय तमाशा हो जाओगे। तुम्हे दुनिया देखने आएगी। तुम तमाशवीन नही रहोगे। मगर ऐसा वनना सरल नहीं है। स्वय तमाशा वनने के लिए त्याग और उत्सर्ग की आवश्यकता है।

तो स्वय तमाशा वनने के लिए प्रथम सोपान धर्मकथा है। धर्मकथा से मिथ्यात्वी भी सम्यक्त्वी वन जाते है। जो मिथ्यात्व-असत्य मे रमण कर रहे है, उन्हे मिथ्यात्व का फल वतलाना चाहिए कि इससे जीव को भटकना पडता है। अत एव सम्यक्त्व-सत्य को ही अपनाना चाहिए। सत्यवादी की आत्मा सत्य से गद्‌गद् हो जाती है। सत्य मे कुछ ऐसा अलौकिक प्रभाव है कि सर्वप्रथम तो सत्यवादी स्वय अद्‌भुत आनन्द का अनुभव करता है और फिर दूसरो को भी उसका मधुर आस्वाद चखाता है, जिससे वे भी सत्य के निकट आते है। पुष्प पहले स्वय सुवासित होता है फिर सारे वायुमडल को सुवासित करता है। जलाशय पहले तो स्वय ही जल की शीतलता का आनन्द लेते हैं, वाद मे दूसरो की प्यास वुझाते है। इसी प्रकार जव आत्मा मे सत्य का निर्मल निर्झर फूटता है तो सर्वप्रथम सत्यवादी ही आनन्दविभोर होता है, फिर उसके कारण दूसरो की भी प्यास वुझती हे—दूसरों को भी शान्ति मिलती है।

सत्यवादी की वाणी सुन कर, जिन सम्यक्त्वी लोगो की आत्मा पर मिथ्यात्व के हलके धव्वे लगे रह गए है, वे भी उन्हे दूर करने के लिए प्रयत्नशील हो जाते है। मिथ्यात्व के धव्वे जिनके पूरी तरह दूर हो गए है, किन्तु जो अव्रती है, उन्हे अव्रत के धव्वे मिटाने के लिए और जीवन-चित्र को सुन्दरतर वनाने के लिये धर्मकथा का

श्रवण करना ही चाहिए। जब चित्र मे दूसरा रग भर दिया जाता है तो उसका सौन्दर्य और चमक उठता है।

प्रथत तो चित्र मे सौन्दर्य है ही, फिर उसे शीशो मे जड दिया जाय तो उसकी रौनक और बढ जाती है। यदि सुन्दर और कीमती चौखट लगा दी जाय तब तो चित्र मानो बोलने ही लगता है।

इसी प्रकार श्रावक जब चौथे से पाँचवे गुण-स्थान मे आता है तो उसका सत्य-सौन्दर्य और भी खिल उठता है।

तो पाँचवे गुणस्थान मे पहुँचकर उसने अव्रत के धब्बे को हटा दिया, फिर भी चित्र पूरा नही हो पाया। अभी वह देशव्रती है, सर्वव्रती नही बन पाया है फिर उसके चिह्न प्रकट हो गए है। अत. उसे भी धर्मकथा सुननी चाहिए जिससे उसमे सर्वव्रती होने की अभिलाषा जागृत हो जाय।

तो कहो, चित्र को सर्वांग सुन्दर बनाने मे कितनी देर लगती है? कितने ही जन्म इस की तैयारी मे लग जाते है। ज्यो-ज्यो महात्मा गुण स्थानो पर ऊँचा-ऊँचा चढता जाता है, त्यो-त्यो धब्बे मिटते जाते है। इस प्रकार कमियाँ दूर होती जाती है और अन्तत तेरहवे गुणस्थान मे चित्र पूर्ण रूप से तैयार हो जाता है। अब जो कुछ बनना था, बन चुका। केवलज्ञान और केवल-दर्शन का चित्र बन कर तैयार हो गया। वह तमाशबीन से तमाशा बन गया। अब कही जाकर उसे फोटो लेने की आवश्यकता नही। विश्व के समस्त दृश्य स्वय उस के कैमरे मे प्रतिभासित होने लगे। उस सिनेमा हाल—समवसरण—मे बडे राजा-महाराजा, सेठ, सेनापति और साधारण जन तमाशबीन बन कर आने लगे। कई तो घर-बार छोड कर वही रहने लगे। उन्होने सकल्प कर लिया कि हम भी तमाशा बन कर दुनिया की आँखो मे समाएँगे।

लेकिन एक वात याद रखना। इस नाशमान सिनेमाहाल मे और उस अनन्त ज्ञानमय हाल मे वैठने की सीटो मे वडा अन्तर है। यहाँ दूर वैठने मे आनन्द आता है और वहाँ निकट वैठना आनन्दायक होता है। यहाँ दूर की सीट के अधिक दाम देने पडते है, अगर नजदीक की कम दामो वाली सीट पर वैठ गए तो आँखे खराव होने का अदेशा रहता है और फिर डाक्टर को मिहनताना देना पडता है।

अगर इस आध्यात्मिक सिनेमा-हॉल मे ज्ञान-दर्शन की फिल्म देखनी है तो यहाँ समीप मे वैठना होगा। उस मे तो 'तम्मणे, तच्चित्ते' होकर प्रवेश करना होगा। वहिर्मुख से अन्तर्मुख वने विना उसका आनन्द नही उठाया जा सकता। वाहर-वाहर घूमने पर वाहर की ही चीजे दिखाई देगी और यदि अन्दर जाओगे तो अन्दर के नजारे दिखाई देंगे।

उस फिल्म को वही देख सकेगा जिस के नेत्र निर्मल होगे, जिन की आँखो पर मोतिया छा गया है, वे वदनसीव उस दृश्य का आनन्द नही ले सकते। जव तक वे किसी सुयोग्य डाक्टर से इलाज नही करा लेते, तव तक देखने योग्य नही हो सकते। अगर सफेद मोतिया हुआ तव तो जल्दी इलाज हो जायगा और यदि वदकिस्मती से काला मोतिया हुआ तो वह लाइलाज है। इस मे डाक्टर करे भी तो क्या करे? डाक्टर तो फ्री इलाज कर रहा है और हजारो के नेत्र खोल रहा है, मगर जिन की आँखो की ज्योति ही खत्म हो चुकी है, उस के आगे तो होशियार से होशियार डाक्टर को भी हार ही माननी पडेगी। उसका इलाज तो ब्रह्मा भी नही कर सकता। कहा है—

ऋतु वसन्त मे सभी हँसत, केर न लाता नूर।
पढ सुन के शास्त्र न करता अमल,
फिर तो ज्ञानी का क्या है कसूर।

पतझड आती है तो पेडो के पत्ते अपनी जीवन-लीला समाप्त कर जाते हैं, पके पान खिर जाते हे, किन्तु वसन्त के आते ही वे वृक्ष नवपल्लवित हो जाते है, कमनीय कोपले से अतिशय कान्त दिखाई देने लगते है। जोवन मे एक नई अँगडाई लेते है। मगर उस वसन्त मे भी केर-करीर-के पेड मे पत्ते नही आते।

क्या केर रो वसन्त को द्वेष है ? नही, पर केर का स्वभाव ही ऐसा है।

ऐसे ही सावन-भादो मे काली-काली वरसाती घटाएं आती है और उमडघुमड कर जल-थल को एक कर देती है। फिर भी चातक यदि प्यासा रह जाय तो इस मे मेघो का क्या अपराध है ?

इसी प्रकार सूर्य उदित हो गया और जहाँ-तहाँ प्रकाश ही प्रकाश के कण विकीर्ण हो गये, सभी प्राणियो को दृश्य दिखाई देने लगे। सब अपनी-अपनी अजीविका के उपार्जन मे व्यस्त हो गये। फिर भी उलूक जैसे पक्षियो को नजर नही आता तो सूर्य का क्या दोप ? उनके लिए सूर्योदय होना सूर्यास्त होना है और सूर्यास्त होना सूर्योदय होना है। उस कम्बख्त को सूर्य अनुकूल ही नही पडता तो सूर्य क्या करे ? अगर उल्लू को प्रकाश दे तो उसे रात्रि बनना पडे, किन्तु यह उसके स्वभाव के विरुद्ध है। इसके अतिरिक्त ऐसा करने से वहुजन समाज प्रकाश से वचित हो जाएगा। अव सूर्य को क्या करना चाहिए ? सूर्य को तो लाजिमी तौर पर उदित होना ही पडेगा। उसके उदय को कोई शक्ति रोक नही सकती। मगर सूर्य

का उदय इस लिए नही होता कि किसी का देखना वद हो जाय, वह तो वल्कि इस लिए उदित होता है कि जिसे न दीखता हो, उसे दिखने लगे। किन्तु किस्मत की वात है कि उल्लुओ को सूर्योदय होने पर नही दीखता।

उल्लू सूर्योदय से पहले ही पहाड़ो की गुफाओ मे या किसी अधेरे मकान मे छिप जाते है, ताकि सूर्य का प्रकाश उन पर न पडे। वे निकले भी तो कैसे निकले, क्योकि उनमे निकलने की योग्यता ही नही है। वे जानते है कि हम सूर्य के प्रकाश के सामने चले जाएँगे तो हमारी यत्किंचित् देखने की जो योग्यता है, वह भी चली जाएगी। अगर उनमे शक्ति है तो सामने आवे और जैसे दूसरे प्राणी प्रकाश का आनन्द लूट रहे है, वे भी लूटे।

तो ससार मे सभी पदार्थ उपलब्ध है, किन्तु भाग्यहीन को नही मिलते।

सज्जनो! जिन-वाणी का सूर्योदय हो रहा है, अत लाभ लेना हो तो ले लो, अन्यथा एक दिन फूक निकल जाएगी और पछताते ही रह जाओगे। प्रकाश मे ही किसी चीज का पता लग सकता है, अन्धेरे मे नही, अत एव जिन-वाणी के प्रकाश मे आओ समकितधारियो की प्रशसा करो, गिरे हुओ को उठाओ। इससे धर्म की वृद्धि होगी। जो धार्मिको की निन्दा करते है वे अपना अध-पतन आमन्त्रित करते हैं, इस कारण निन्दा करना छोड दो। गुणी जनो के गुण गाओ। कहा भी है —

निन्दा मत कर पारकी,
निन्दा से व्याय छेनार की।

श्री गौतम ने भगवान् से प्रश्न किया —निन्दा सयम है या असयम है?

भगवान् ने फर्माया—निन्दा करना सयम है, कल्याणकर है, अत एव निन्दा करनी चाहिए। (भगवती)

शका हो सकती है कि भगवान् ने निन्दा को सयम कैसे वतला दिया ? मगर सावधान, मलाई खाते-खाते कही रुई को मलाई समझ कर मत खा लेना, अन्यथा लेने के देने पड जाएँगे। भगवान् ने निन्दा को सयम वतलाया है पर वह पर निन्दा नही वह अपने आत्मदोपो की निन्दा है। निन्दा करो तो ऐसी करो कि—मैं चुगलखोर हूँ, मैं चोर हूँ, मैं विश्वासघाती हूँ, मै कृतघ्न हूँ, मैं कामी, क्रोधी, मोही, लालची हूँ। तुम पाप की निन्दा करो और दिल खोल कर करो। ऐसी निन्दा करोगे तो वेडा पार हो जाएगा। इसी प्रकार की निन्दा की भगवान् ने छूट दी है।

पर तुम तो परनिन्दा करके पाप का पोषण करते हो। अमुक ऐसा है और फलाँ वैसा है, इस प्रकार की निन्दा मत करो। इस प्रकार की निन्दा रुई की मलाई है। अगर मलाई के भरोसे रुई गले मे फँस गई तो दोजख का टिकट कट जायगा। जो पराई निन्दा करते है, उनकी दशा वडी खराव होती है।

एक जगह एक धर्मशाला मे वहुत-से मुसाफिर ठहरे हुए थे। वही दो पडित भी आ पहुँचे और विश्राम करने के लिए ठहर गये, वे अपने को गौड समझते थे, परन्तु दूसरी जगह न मिलने से वहाँ ठहरना पडा। दूसरे लोग भी वहाँ ठहरे थे और उनके वाल वच्चे टट्टी-पेशाव भी करते थे, यह वात उन्हे वहुत ही नापसद थी। फिर भी वे दोनो मकान के दो कोनो मे ठहर गये।

उसी धर्मशाला मे एक सेठ भी आ गया। उसने देखा कि ये किसी से वोलते-चालते नही और माथे पर सल चढाये, दूसरो को

घृणा की दृष्टि से देख रहे है। यहाँ तक कि अपने कपड़ो को भी सिकोडे बैठे हैं। जैसे मन मे समझते है कि हमारे सिवाय दूसरे सब किसी सक्रामक रोग के रोगी है और उनकी छूत से बचना बहुत आवश्यक है।

यह हाल देख कर सेठ एक ब्राह्मण के पास गया और पूछा—आप कौन हैं ?

ब्राह्मण—मैं गौड ब्राह्मण हूँ।

सेठ—अच्छा, तो आप मेरे यहाँ भोजन करना। आप जैसे कुलीन ब्राह्मण बड़े भाग्य से मिलते है।

भोजन का नाम सुनते ही ब्राह्मण की कली-कली खिल गई। सोचने लगा—आज सहज ही सौदा पट गया। खूब खीर-मालपुवा छकेगे।

सेठ ने सोचा—मै इन्हे जिमाऊँगा तो सही, परन्तु इनके ब्राह्मणत्व की परीक्षा तो करनी चाहिए। यह सोच कर सेठ ने दूसरे ब्राह्मग के विपय मे पूछा—ये कितने विद्वान् है ?

ब्राह्मण—वह मेरा क्या मुकाबिला कर सकता है। मैंने चारो वेद पढे है, १८ पुराण पढे है, निघण्टु पढा है, स्मृतियाँ पढी है और सस्कृत के सभी ग्रथ पढ़ डाले है और वह तो कोरा बैल है। उसे एक अक्षर भी नही आता।

सेठ उठा और दूसरे ब्राह्मण के पास पहुँचा। कहा—आप आज मेरे घर भोजन की कृपा करना। परन्तु यह तो बतलाइए आप के साथी दूसरे ब्राह्मण कैसे है ?

ब्राह्मण—सेठ जी, वह निरा गधा है। उसे न ब्राह्मण के खट-कर्म का बोध है, न क्रिया काण्ड का। मैंने सभी शास्त्र पढे हैं।

सज्जनो ! यह उसका भी गुरु-घटाल निकला । सेठ जी ने दोनो की वाते सुन ली । वह वहुत चतुर था , जो समझना चाहता था, समझ गया ।

दोनो ब्राह्मण निश्चित समय पर भोजन के लिए आये तो सेठ ने उनका यथोचित स्वागत किया, चरण धुलवाये और भोजन के लिए आसन पर विठलाया । तत्पश्चात् एक के आगे घास डाल दिया और दूसरे के सामने भूसा रख दिया, यह देखते ही दोनो ब्राह्मणो की त्यौरियाँ चढ गईं और आँखे लाल हो गई । तव सेठ ने शान्ति से कहा—महाराज, करो हरि—हर ! और आवश्यकता हो तो तैयार है ।

यह सुनते ही तो वे आग ववूला हो गये और कहने लगे—आप निमत्रण देकर ब्राह्मणो का अपमान कर रहे है । क्या यह आपके लिए शोभा की वात है ?

ब्राह्मणो ने सोचा तो यह था कि तरह-तरह के माल मिलेगे परन्तु यहाँ तो जानवरो का खाना सामने आया ।

सेठ ने कहा—महाराज, जो मुझ से वना, वह हाजिर कर दिया । मेरी इतनी ही शक्ति है ।

ब्राह्मण—तो क्या मनुष्यो का सादा भोजन नही करा सकते थे ? हमे पशु समझ कर पशुओ का खाना खिला रहे हो । क्या यह भले आदमी के लिए उचित है ?

सेठ—मैंने आपको पशु नही समझा । आपने जैसा समझाया वैसे ही समझ रहा हूँ ।

ब्राह्मण—अरे भले मनुष्य, क्या हमने कहा था कि हमे पशुओ का खाना खिलाना ?

सेठ—ब्राह्मण देवता ! यह मंत्र किसी और ने नहीं, आप ही लोगों ने सिखलाया है। इस मंत्र को फूंकने वाले गुरु आप दोनों हो। इन्होंने आप को कोरा बैल बतलाया और आपने इन का 'निरा गधा' कह कर परिचय दिया। मैंने आप दोनों की बात सच्ची समझ कर आपके योग्य हो यह भोजन प्रस्तुत कर दिया। अब बतलाइए, मैंने क्या अन्याय, उपहास या अनुचित काम किया है ? क्या मैं आपको सत्यवादी न समझ कर मिथ्यावादी समझता ? आप के कथनानुसार सामग्री उपस्थित करने में मैंने कोई कसर नहीं रक्खी है।

सेठ जी ने यह पोल खोली तो वे चुप रह गये। आखिर कहते भी तो क्या कहते ?

सज्जनो ! उन ब्राह्मणों ने एक-दूसरे को नीचा दिखलाने के लिए जैसा मंत्र सिखाया, वही उन पर प्रयुक्त हुआ। तो जो दूसरे की निन्दा करते हैं, वे निन्दा के पात्र स्वयं बनते हैं। उन्हें परिणामस्वरूप घास-भूसा ही मिला करता है। वे खीर-खाँड के भोजन से सदा के लिए वंचित हो जाते हैं। सेठ जी ने उन ब्राह्मणों की बातों से परख लिया कि ये सच्चे ब्राह्मण नहीं हैं, वरन् बैल और गधा हैं।

तो दुनिया बड़ी सयानी और चतुर है और उड़ती चिड़िया को पहचानने वाली है। वह समझ लेती है कि पंडित कौन है तथा गधा-बैल कौन है।

जो दूसरों को कब्र में गाड़ने की कोशिश करते हैं, वे खुद ही कब्र में गड़ जाते हैं।

ब्राह्मणों के ब्राह्मणत्व की पहचान तो यह थी कि जो जैसा

था, उसे वसा ही कह देते । कम से कम मनुष्य को गधा और वैल तो न वनाते ।

हाँ, तो सेठ जी ने उन दोनो को डॉट कर कहा—समाज को तुम्हारे जैसे निन्दको, पामरो और मिथ्याभापियो की जरूरत नही है। तुम को यहाँ जीमने का अधिकार नही है।

भद्रपुरुषो ! निन्दको को सम्मान के वदले अपमान ही मिलता है। उत्थान के वदले पतन मिलता है। अगर अपने आप को ऊँचा उठाना चाहते हो तो गिरे हुओ को उठाओ, उन्हे छाती से लगाओ और उन के आँसू पोछो। नीचा दिखाने की कोशिश करोगे तो याद रक्खो, तुम्हे स्वय नीचा देखना पडेगा। इस मे सन्देह नही।

तो शास्त्रकार कहते है—दर्शन का काम वडा खराखरी का है। धर्मकथा से दर्शन उत्पन्न भी होता है और चमकता भी है। अत एव आपस मे धर्म की वाते करो। निन्दा-चुगली से वचोगे तो जीवन पवित्र वनेगा। इस प्रकार जो धर्मकथा करके सम्यक्त्व की प्रभावना करते है, वे ससार-समुद्र से पार हो जाते है।

व्यावर]
५—१०—५६]

———

प्रभावना-आचार (५)

[निर्वेदनी धर्मकथा]

सज्जनो !

कल बतलाया गया था कि धर्म-कथा सुनने से मिथ्यात्वी को सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है और सम्यक्त्वी के सम्यक्त्व में यदि कोई त्रुटि-कमी रह गई हो तो वह दूर हो जाती है। सम्यक्त्वी देशविरत या सर्वविरत बनता है और इस प्रकार धर्मकथा आध्यात्मिक विकास का कारण होती है। उत्तरोत्तर उच्च-उच्चतर स्थिति प्राप्त करते-करते अन्ततः आत्मा केवलज्ञान-दर्शन को प्राप्त कर लेता है और फिर चौदहवे गुणस्थान मे पहुँच कर और उसे भी पार करके सिद्ध, बुद्ध, अजर, अमर, अविनाशी पद प्राप्त करता है।

निर्वेदनी धर्म-कथा आत्मा को विषयविकारों से विलग करती है, विरक्ति उत्पन्न करती है, भोगो के प्रति अरुचि जागृत करती है और कामभोग के पदार्थो मे नफरत उत्पन्न करती है। कहा भी है—

निर्वेद्यते—विषयभोगेभ्यो विरज्यते श्रोताऽनयेति निर्वेदनी।

उक्तञ्च—

यदाकर्णनमात्रेण, वैराग्यमुपजायते।
निर्वेदनी यथा शालि-भद्रो वीरेण देशित ॥

जो कथा श्रोता के चित्त मे वैराग्य उत्पन्न करती है, वह निर्वेदनी कथा है। पंजाबी भाषा मे कहावत है—'मनदा की समझाणा, इधरो पट्टण उधर लाणा'। अर्थात् मन का क्या समझाना !

इधर से अर्थात् विषयों की तरफ से उखाड़ना—विरक्त करना—और उधर लगा देना अर्थात् वैराग्य की ओर लगा देना है। कहने को तो हर कोई कह देता है कि 'मनदा की समझाणा इधरो पट्टणा ते उधर लाणा' उपरोक्त कहावत की वात है तो छोटी किन्तु है वडी मजेदार। मन विरक्ति की ओर तभी लगता है जव उधर—विषयविकार—से उखड जाता है। मगर विषयवासना अनादिकालीन है और उस की जड़ पाताल तक पहुँची हुई है। वह पुरानी प्रीति है और साठगाँठ है। इसी कारण विषयविकारो का त्याग वडा कठिन प्रतीत हो रहा है। इस के लिए निर्वेदनी कथा का शस्त्र ही काम दे सकता है। यही शस्त्र पाताल तक गई हुई विकार की जड को भी उखाड कर फैंक सकता है।

मार्ग तो दो ही है—राग का और वैराग्य का। मन या तो राग मे रहता है या वैराग्य मे। यदि इस तरफ का दरवाजा वन्द हो गया हो तो उधर से ही आना जाना होता है। तो जिस जिन-वाणी के श्रवण से वैराग्य प्राप्त हो, वह निर्वेदनी कथा है।

शालिभद्र ने भगवान् महावीर की वाणी सुनी तो उन्हे वैराग्य हो गया। यद्यपि उन्हे ससार-सम्वन्धी सभी सुख प्राप्त थे, वत्तीस स्त्रियाँ—सुकुमारियाँ, मनोमोहक रूपलावण्य से युक्त और हाल ही की कुसुमित कलियाँ, आज्ञा मे चलने वाली मौजूद थी, कहते है कि शालिभद्र के घर मे स्वर्ग से प्रतिदिन ३३ पेटियाँ वस्त्राभूपणो की और ३६ प्रकार की भोजन सामग्रियाँ आती थी, किन्तु भगवान् की निर्वेदनी कथा ने उनके मन को उधर से उखाड दिया और वैराग्य के पौधे को रोप दिया।

तो वात यह है कि कथा तो वहुत सुनते है, पर प्रभाव उसका उसी पर पडता है जो लघुकर्मा—हलुकर्मी हो, मोक्षगामी हो। दवा उसी पर असर करती है जिसके सातावेदनीय कर्म का उदय हो गया हो। असातावेदनीय के तीव्र उदय वाले पर कितनी ही ऊँची दवाओ का प्रयोग करो और ऊँचे से ऊँचे सिविल सर्जन भी केस हाथ मे क्यो न ले ले, कोई अभीष्ट परिणाम नही निकल सकता। ऐसी स्थिति मे निराश ही होना पडता है, इसी प्रकार वैराग्य का स्रोत तो हलुकर्मी जीव के अन्तर से ही फूटता है। कहा है —

खरो मार्ग वीतराग को, कूड नही लवलेश।
जिनकी भवथिति पक गई, उनको यह उपदेश।

जिनेन्द्र भगवान् के मार्ग पर वही चल सकता है जिसकी भवस्थिति पक गई हो, जो जन्म-मरण से छुटकारा पाने का प्रमाण-पत्र प्राप्त कर चुका हो। उसी पर निर्वेदनी कथा जादू का सा प्रभाव दिखलाती है। अन्यथा, वहुतो के तो जन्म-जन्मान्तर गुजर जाते है, फिर भी उनका दिल वैराग्य की ओर आकर्षित नही होता।

चारो कथाओ का निष्कर्ष यही है कि मनुष्य जन्म मे जो सुख है, वह क्षणविनश्वर है। ससार के योग्य पदार्थ पल भर मे वादल की छाया के समान विलीन हो जाते है। इनमे रचना-पचना आत्मा के पतन को आमन्त्रित करना है। अत एव ससार को असा-रता जान कर, भोगो से मन को हटा कर वैराग्य की ओर लगाना चाहिए, धर्मकथा के अनुरागी इन सुखो को क्षणभगुर समझते है और भोगो को अनन्त दु खो का कारण मानते है। उत्तराध्ययन सूत्र मे कहा है .—

भोगी भमइ ससारे, अभोगी नोवलिप्पइ ।

अर्थात् भोगप्रिय लोगो को ससार मे परिभ्रमण करना पडता किन्तु अभोगी इन सुखो मे लिप्त नही होता । वह तो समझता है कि ससार के सुख अनन्त दु खो के वीज है । कहा भी है —

खणमित्तसुक्खा वहुकाल दुक्खा,
पगामदुक्खा अणिगामसुक्खा,
ससार मोक्खस्स विपक्खभूया,
खाणी अणत्थाण उ कामभोगा ॥

उत्तराध्ययन, अ० १४ गा० १३

शास्त्रकार कहते है —ससार के कामभोगो मे क्षणमात्र का सुख है और अनन्त काल का दु ख है । वह क्षणिक सुख भी कल्पना मात्र का है, वास्तव मे तो सुख आत्मा का गुण है और वह जड़ पदार्थो मे सभव नही है । कुत्ता सूखी हड्डी चवाता है तो उसकी दाढ़ो मे से खून निकलने लगता है । वह अपने ही खून को चाटने मे सुख मानता है और समझता है कि यह सुख हड्डी से मिल रहा है । इसी प्रकार भोगी जीव भोग्य पदार्थो मे सुख की कल्पना करता है और अपनी शक्ति को, वलवीर्य को क्षीण करके समझता है कि इसमे से आनन्द का स्रोत उमडा आ रहा है ।

कुत्ता पशु है, विवेकहीन है । उससे भूल होना क्षम्य है, किन्तु अफसोस तो इस वात का है कि मनुष्य भी उसी के समान मूर्ख वन कर काम कर रहा है ।

शहद से भरी तलवार की धार को चाटने से थोडी-सी देर मिठास मालूम होती है, किन्तु जव जीभ कट जाती है तो सदा के लिए दु ख हो जाता है । वास्तव मे भोगो मे अगर राई के वरावर सुख है भी तो मेरु पर्वत के समान दु ख है ।

ससार मे जो रगडे-झगडे है, द्वेष और क्लेश हो रहे है, रुधिर की सरिताएँ वहती हैं सो किसके लिए ! इसी सुख के लिए इतना अनर्थ हुआ और हो रहा है। हर एक यही चाहता है कि मैं अधिक से अधिक कमा कर अधिक से अधिक सुख भोगूँ। वह उससे और वह उससे भी आगे दौड़ लगाने का प्रयत्न करता है। किन्तु जिन कामभोगो के पीछे सुख मान कर मनुष्य दौड लगा रहा है, वही घोर अनर्थ की खान हैं। मुमुक्षु आत्माओ के लिए ये अर्गला के समान है। कामभोग मोक्ष का द्वार नही खुलने देते। ये दलदल कीचड़ के समान हैं। जैसे दलदल मे फँसा हाथी ज्यो-ज्यो निकलने का प्रयास करता है त्यो-त्यो अधिकाधिक फँसता जाता है और वही प्राण गँवा देता है, उसी प्रकार भोगो मे लिप्त प्राणी भी मरणशरण होता है।

असली सुख त्याग मे है। जो सुख चक्रवर्ती, देवता और इन्द्र को भी मयस्सर नही, वह त्यागी तपस्वी तपोधन साधु को प्राप्त होता है। मगर साधु होना चाहिए सच्चा त्यागी, अनासक्त ! साधु की शोभा त्याग मे ही है। कही साधुओ की मण्डली जा रही थी। किसी ने पूछा—आप कौन है ? उत्तर मिला—सन्त। उसने पुन प्रश्न किया—कौन-से सन्त ? तो कहा गया—निर्मल सन्त ! तो यह एक सम्प्रदाय है। सच्ची निर्मलता तो निर्मल कर्म से ही आ सकती है।

दूसरे कहते हैं—हम विरक्त साधु है। किसी ने पूछ लिया—तो साथ मे चेले-चाँटी कैसे फिर रहे हैं ? वह बोले—यह सब विरक्त महात्मा की माया है।

तो निर्मल या विरक्त नाम रखने से क्या हुआ जबकि छोरा-छोरी उसे घेरे फिर रहे है। अत एव नामधारी साधु होने से काम

नही चलता। सच्चा साधु वही है जो कामभोगो से विरक्त हो चुका है और तपोधन है।

अभिप्राय यह कि विरक्ति और त्याग मे जो सुख है, वह भोगो मे नही है। अगर भोगो मे सुख होता तो साधु को सुख नही होना चाहिए था, क्योकि उसके पास भोग्य पदार्थ नही है। ऐसी स्थिति मे सुख का अधिकारी तो धनीपुत्र ही हो सकता है। मगर ज्ञानी-जन कहते है—

न हि सुही देवया देवलोए, न हि सुही सेट्ठिसेणावई य।
न हि सुही पुढवीपई राया, एगो सुही मुणी वीयरागी॥

वह सुख तो देवी-देवता, चक्रवर्ती, वलदेव, वासुदेव, सेठ, सेनापति आदि को भी प्राप्त नही है, जो सुख कषाय का शमन करने वाले साधु को प्राप्त है। सुख पदार्थों मे गृद्ध होने मे नही, छोडने मे है।

सज्जनो! जव आपको नीद आती है तो जागने पर कहते हो कि आज तो वडा आनन्द आया। ऐसी गहरी और शान्त नीद आई कि वस आनन्द आ गया। सारी थकावट मिट गई। परन्तु उस समय आपने कौन-सी वस्तु भोगी कि इतना आनन्द आ गया? उस समय आप वेभान पडे थे और स्थूल पदार्थों की दुनिया आपके सामने नही थी, फिर उस नीद को कैसे सुखमय मानते हो? तथ्य यह है कि उस निद्रावस्था मे आप भोग्य पदार्थों से विरक्त हो गए थे। इसी कारण थोडी देर के लिए सुख मिला। अगर कोई मनुष्य इन्द्रियो के भोग मे ही लगा रहे और नीद न लेवे तो उसके शरीर मे दुख उत्पन्न हो जाता है। यही कारण है कि राजा-महाराजा सेठ-साहूकार डाक्टरो को नीद लेने के लिए हजारो रुपये दे देते है, फिर भी किसी-किसी अभागे को नीद नही आती। उसे नीद न आने की ही

बीमारी लग जाती है। नीद आये विना दिल, दिमाग और देह को आराम नही मिलता। नीद आने से मनुष्य मे नूतन शक्ति, बल, उत्साह और जोश आ जाता है। कभी-कभी रोगी को चीखते-तडफते देख कर नीद आने की दवा दे देते हैं, जिससे उसे नीद आ जाती है और उसे किंचित् राहत मिलती है।

जिसको नीद आती है और भूख लगती है, दुनिया कहती है, उसे रोग ही क्या है? तो निद्रावस्था को संसार ने सुख माना है, यद्यपि वह दर्शनावरणीय पाप कर्म के उदय से आती है। दर्शनावरणीय कर्म के नौ भेदो मे पाँच प्रकार की निद्रा भी है—निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि। इसके अतिरिक्त चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण नामक चार भेद और है। इस कर्म से देखने की शक्ति पर आवरण आ जाता है। उदाहरणार्थ—तेली के बैल को लीजिए। उसकी आँखे हैं, देखने की शक्ति है, परन्तु आँखो पर पट्टी आ जाने से उसे दिखाई नही देता कि उसने कितनी मञ्जिल पार कर ली है। उसी प्रकार आत्मा में अनन्त दर्शनशक्ति है, किन्तु दर्शनावरणीय कर्म के उदय से वह देख नही पाता।

तो निद्रा पाँच प्रकार की है, जिसका स्वरूप यो है—

(१) निद्रा—आराम से सो जाना और आराम से समय पर जाग जाना।

(२) निद्रानिद्रा—समय पर स्वय सो जाना किन्तु दूसरो के जगाने पर जागना। अर्थात् नीद मे कुछ प्रगाढता आ जाना।

(३) प्रचला—बैठे-बैठे ही नीद आ जाना। यह तीसरे नवर की निद्रा है। व्याख्यान देने वाला दे रहा है और श्रोता बैठे-बैठे ही नीद ले ले।

(४) प्रचलाप्रचला—चलते-फिरते नीद आ जाना, जैसे घोडा चलता-चलता नीद ले लेता है।

(५) स्त्यानगृद्धि—इस नीद का तो कहना ही क्या है। इस का नशा अत्यधिक गाढा होता है। जिसका वज्रऋषभनाराचसहनन होता है, जिसकी उँगली के ऊपर से चालीस मन की भरी गाडी निकल जाने पर भी कुछ न विगडे, उसको ऐसी नीद आती है। मर कर वह नरक मे जाता है।

तो इन पॉच निद्राओ से भी दर्शन का आवरण होता है। नीद आँखो पर विना पट्टी की पट्टी है।

आँख मे मोतिया वगैरह आ जाने से देखना वन्द हो जाता है। अत एव आँख से देखना वन्द हो जाने का कारणभूत कर्म चक्षुदर्शनावरण कहलाता है। चक्षु के सिवाय अन्य इन्द्रियो से होने वाले सामान्यग्रहण को अचक्षुदर्शन कहते है। इसे जो कर्म आवृत करता है वह अचक्षुदर्शनावरण कहलाता है।

यहॉ वैठे-वैठे हजारो कोस दूर के रूपो पदार्थो को देखा जा सकता है। वहॉ आत्मप्रदेश ही आँखो का काम करते है। अवधिदर्शन वाले मे इतनी दूर की वस्तुओ को देखने की शक्ति होती है, सव मे नही। जो कर्म इस अवधिदर्शन को रोकता है, वह अवधिदर्शनावरणीय कहलाता है।

सज्जनो ! आत्मा मे ऐसी-ऐसी विस्मय-जनक शक्तियाँ विद्यमान है, मगर अपने घर के आगन मे जो अपरिमित धनराशि दवी पडी है, उसे तो निकालने की कोशिश नही करते और अभागे वन कर व्याज पर रकम मॉगते फिरते है।। अरे, उधार मॉगते-मॉगते कव तक काम चलाओगे ? एक दिन उत्तर भी मिल जायगा।

अत एव घर को ही रसोई वनानी चाहिए। मगर कई प्रमादी ऐसे भी होते हैं जो पडौसी के यहाँ से माँग कर ही काम चला लेते है। वे मेहनत के चोर सोचते है—कौन चूल्हाफूँकी करे। किन्तु ऐसा करके क्या ज़िदगी पूरी को जा सकती है ?

तो यद्यपि अवधिदर्शन वहुत विशाल है और असख्य योजनो तक विना आँखो के ही देखता है, फिर भी वह सीमित है—अल्पज्ञ है। आत्मा मे इससे भी अधिक और विशाल दर्शनशक्ति विद्यमान है, जिससे तीन लोक का कोई भी पदार्थ नही वच सकता। वह शक्ति केवलदर्शन की है। इस शक्ति को रोकने वाली दर्शनावरण की नौवी प्रकृति है जिसे केवलदर्शनावरण कहते है। जव यह शक्ति प्रकट हो जाती है तव आत्मा दुनिया के तमाम पदार्थो को हस्तरेखाओ की तरह स्पष्ट रूप से देखने लगता है। यह दर्शनावरण की नौ प्रकृतियाँ है।

नीद कर्मोदय-जनित होने के कारण यद्यपि विकार-रूप है तथापि मनुष्य उसमे आनन्द मानता है। दुनिया खुश होती है कि वडी मीठी नीद आई। इसका कारण यह है कि उतने समय के लिए मनुष्य दुनियादारी के झझटो से मुक्त हो जाता है। जागरणवेला तक के लिए स्थूल दुनिया से सम्वन्ध विच्छिन्न हो जाता है। मगर उस समय भी सूक्ष्म ससार तो तुम्हारे पास ही मौजूद रहता है। नीद ही नोद मे शादी हो जाती है, कुँए मे गिर जाता है, इत्यादि जो भी कार्य स्वप्नससार मे हो रहे है, वे इसीलिए हो रहे है कि उस समय भी भोगो की वासना मौजूद है, मानसिक दुनिया खडी है और विकारो से छुटकारा नही मिला है। वासना का वीज भीतर दवा पडा रहता है और वही स्वप्न के रूप में अकुरित हो जाता है। इसी से स्वप्न मे नाना प्रकार के कार्य होते है। वाणी के द्वारा भी वही

सस्कार प्रकट होते है। कई तो नीद से उठ कर कार्य करके पुन सो जाते है और पता ही नही चलता कि मैं नीद मे था या जागता था ? इस प्रकार दुनियादारी का चक्र नीद मे भी चलता रहता है। उस समय भी उसका विराम नही होता।

तो आशय यह है कि भोगोपभोगो को ग्रहण करने मे नही त्यागने मे ही सुख है। जितना-जितना भोग्य पदार्थों का सग्रह होगा, उतनी ही उतनी आसक्ति वढती जायगी और ज्यो-ज्यो आसक्ति वढेगी त्यो-त्यो विकलता और तज्जनित दु ख की भी वृद्धि होगी। इसके विपरीत आसक्ति कम होगी तो आराम मिलेगा।

धर्मकथा से यही शिक्षा मिलती हैं कि—हे भव्य जीवो, तुमने जो सुख का मार्ग समझा है, वह वस्तुत दु ख का मार्ग है। परिग्रह को तुम सुख का साधन समझते हो किन्तु वही असल मे समस्त दु खो का मूल है। भोग्य पदार्थों से कदाचित् क्षणिक सुख मिल भी गया तो क्या हुआ ? उसके पीछे अनन्त दु ख का दुश्चक्र जो मौजूद है। किचाक फल देखने मे वडा सुन्दर लगता है और खाने मे भी वहुत मधुर होता है, पर उसका परिणमन प्राणान्तकारी होता है। इसी प्रकार इन भोगो के पीछे भी अतीव भयकर परिणाम छिपा है।

अगर भोगो मे सुख होता तो तीर्थंकर और चक्रवर्ती हर्गिज राज्य न छोडते और जगल मे जाकर कठोर साधनाएँ न करते—तपस्या करके शरीर को अस्थिपिजर न वनाते। क्या उनके महलो मे सुखसाधनो की कुछ कमी थी ? पर नही, उनके अन्तरतर से एक दिव्य नाद प्रकट हुआ—'विषय विप है, भोग रोग है और वन्धुजन वन्धन है, अरे आत्मन्, तू क्यो हलाहल को अमृत समझ कर ग्रहण कर रहा है ?'

इस अन्तर्नाद की बलवती प्रेरणा से वे ऐश-आराम एव भोग-विलास मे लिप्त आत्माएँ सर्प की काहली के समान भोगों को त्याग कर आत्मिक निधि की खोज मे निकल पड़ी और अपने ध्येय को सिद्ध करके ही विरत हुईं।

सज्जनो ! वे पागल नही थे कि यो ही राज-प्रासादो को त्याग कर चल पडते। उन्होंने पूरी तरह समझ लिया था कि इन भोगों मे महान् भय छिपा हुआ है। जैसे धनी पुरुषो को चोरो का भय रहता है, सज्जन पुरुषो को दुष्टो का भय रहता है, इसी प्रकार समस्त पदार्थों मे कोई न कोई भय छिपा ही रहता है। निर्भय स्थान है तो वह वैराग्य ही है। वैराग्यदशा मे कोई पीडा नही, कोई फिक्र नही।

आप जानते ही है कि माया को सदैव भय रहता है। माया वाला कही बाहर जाना चाहता है तो इस का जाना दूभर हो जाता है, क्योंकि उसके दिमाग मे नाना प्रकार के भय उत्पन्न होते है। कही रास्ते मे लुटेरे लूट न ले, डाकू हमला न कर दे। पीछे से कोई चोर चोरी न कर ले, आदि। जब तक वह वापिस घर नहीं पहुँच जाता, उस का चित्त अशान्त ही रहता है। उसको खाना-पीना हराम हो जाता है।

स्पष्ट है कि वास्तविक सुख का—निर्भयता का—सतोष का और निराकुलता का अनुभव वही करता है जिस ने माया रूपी पिशाचिनी से अपना पिण्ड छुडा लिया है और वैराग्य को धारण कर लिया है, ऐसे ज्ञानी पुरुष ससार के महान् दु खो से सदा के लिए छूट कर सयम के सुरम्य उद्यान मे रमण करते है और आत्मानन्द मे विभोर रहते हैं।

तो धर्मकथा सुनाने का प्रयोजन क्या है ? जैसे दलाल को दोनो धनियो से दलाली मिल जाती है, इसी प्रकार धर्मकथा से हम को भी लाभ मिल जाता है ।

धर्मकथा श्रवण करके वडे वडे पापी भी महान् त्यागी वन जाते है और अपने आप को कृतार्थ कर लेते है । कोई अधिक त्याग न भी कर सके और यथाशक्ति थोडा-त्याग भी कर ले तो भी वह कल्याण का भागी होता है । चोदह नियमो को धारण करने को वात ही अलग रही , अगर एक भी नियम ईमानदारी से पाल लोगे तो भी कल्याण हो जायगा । नियम अगीकार करने मे तो कोई कठिनाई नही होती, मगर उस का पालन करने मे अवश्य कभी-कभी कठिनाई होती है, परन्तु सकल्प मे दृढता हो तो उस कठिनाई पर विजय अवश्य प्राप्त हो सकती है । कोई कठिनाई ऐसी नही जो वीर पुरुप के लिए अजेय हो ।

एक सेठ के दो लडके थे और घर मे अखूट सम्पत्ति थी । दोनो लडको का नाम क्रमग महेश और गणेग था । पिता का देहान्त हो जाने पर दोनो भाई कुछ दिनो तक शामिल रहे, किन्तु आप जानते है कि माया का कुचक्र वडा जवर्दस्त होता है किस घर पर उस का प्रभाव नही पडता ? यह माया भाई-भाई को पिता-पुत्र को, पति-पत्नी को,माता-पुत्र को और वहन भाई को भी अलग-अलग कर देती है । उनमे विरोध खडा कर देती है और एक को दूसरे का शत्रु वना कर छोडती है ।

तो वडे भाई महेश के दिमाग मे माया ने अपना कुचक्र चलाया और वह सोचने लगा—गणेश को किसी प्रकार घर से निकाल दूँ और सारी सम्पत्ति पर मैं अधिकार कर लूँ । उसने ऐसा ही

किया। विना कुछ दिये ही उसे अलग कर दिया और आप घर का सर्वेसर्वा वन गया।

वडे भाई का कर्तव्य तो यह था कि पिता की गैरमौजूदगी मे वह छोटे भाई का पिता वन कर रहता। वडा भाई छोटे भाई के लिए पितृस्वरूप है और इसी रूप मे उसे उस का पालन करना चाहिए। वडा भाई इस लिए नही वना है कि छोटे भाई का अधिकार हडप ले। मगर लोभ वडा ही नीच पिशाच है। वह वुद्धि को मलिन कर देता है। ठीक ही कहा है.

लल्ला लोभ न कीजिए, लोभ किया पत जाय।
करोड रूपै का मानवी, कौडी का हो जाय॥

जिस व्यक्ति की आज करोड़ो की इज्जत है, छोटी-सी भूल के कारण वह कौडी का रह जाता है। आपने पढा होगा कि घर मे सफाई करने के लिए आने वाली भगिन के साथ वलात्कार करने के अपराध मे एक करोडपति सेठ को छह साल की कठोर कारावास की सज़ा मिली। यह भी विपयलोभ रूप भूल का परिणाम है।

यह विकार मनुष्य को कहाँ से कहाँ पहुँचा रहे है। वे उच्च शिखर से गार मे फैंक देते हैं। उस करोडपति की कितनी शान रही होगी, परन्तु एक जघन्य भूल कर वैठा और समाज मे कलकित हुआ तथा कैद की सजा का पात्र वना। इससे उसे तो दुख हुआ ही होगा, उस की स्त्री, पुत्र, पिता आदि सम्वधियो को कितनी लज्जा न उठानी पडी होगी। मगर इन्द्रियो का विकार मनुष्य को पागल वना देता है।

चरित्रहीन की कोई कीमत नही है। चरित्रनिष्ठ सत्पुरुष उसका ससर्ग नही करते।

तो लोभ वड़ी वुरी चीज है। भगवान् का वचन है कि लोभ सव पापो का मूल है। लोभ के वशीभूत होकर मनुष्य विचारो से अधा हो जाता है।

तो महेश ने गणेश को पिता की सम्पत्ति मे से कोई चीज नही दी। गणेश उम्र मे छोटा था, किन्तु अक्ल मे वडा था। विवेकशील और गभीर था। वह भलीभाँति जानता था कि पिता की सम्पत्ति पर मेरा हक है और न्यायालय के द्वारा मैं अपना हक हासिल कर सकता हूँ, परन्तु उसने ऐसा करना उचित नही समझा। सोचा—दुनिया मुझ पर हँसेगी कि देखो वडे पर छोटे भाई ने दावा कर दिया। यदि मुझमे कमाने की शक्ति है तो अपनी हिकमत से ही कमा लूँगा। मेरा भाग्य मेरे साथ है। भाई साहव सम्पत्ति ले सकते है, किन्तु मेरे पुण्य को नष्ट करने वाला कोई नही। भाग्य मे होगा तो फिर मिल जायगा। भाग्य मे न हुआ तो मिल जाने पर भी नष्ट हो जायगा।

माता की कूख मे जीव आता है तो अपने साथ कुछ नहीं लाता। परन्तु जव जन्म लेता है तो भाग्यानुसार पहले ही माता के स्तनो मे दूध आ जाता है। उसे दिल, दिमाग, इन्द्रियाँ और शक्ति प्राप्त हो जाती है। परन्तु इतना धैर्य रहता कहाँ है? भाग्य पर विश्वास कहाँ है? सरासर देख रहे है, कि कीडी को कण और हाथी को मन आज भी मिल रहा है, फिर भी कोई विश्वास करने को तैयार नही होता।

एक ने विनोद मे कहा—जिसने पुण्य किया है, उसे उसका फल भी अवश्य मिलता है। भाग्य मे लिखे को कोई नही मिटा सकता। तव दूसरे ने भाग्य के लिखे को मिटाने के लिए एक कीड़ी को

डिविया मे वद कर दिया और भाग्यवादी से कहा—अव देखता हूँ कि इस कीडी को कहाँ से मिलता है ? भाग्यवादी ने कहा—अगर इसके भाग्य मे लिखा होगा तो अवश्य मिलेगा।

जव पुरुपार्थवादी कीड़ी को डिविया मे वद करने लगा तो उसके मस्तक पर लगे तिलक का एक चावल अकस्मात् उस डिविया मे गिर गया। उस ओर उसका ध्यान नही गया और डिविया उसने वद कर दी। दो-चार दिन वाद उसने सोचा कि वह कीडी अवश्य मर चुकी होगी। तव भाग्यवादी से कहा—लो, अव अपने भाग्यवाद की परीक्षा कर लो।

भाग्यवादी ने कहा—भाग्य मे होगा तो उसे अवश्य मिला होगा। भाग्य मे न होगा तो वह अवश्य मर गई होगी।

डिविया खोली गई तो कीड़ी उसमे घूम रही थी और चावल का एक कण कुछ खाया हुआ उसमे पड़ा था। उसने विस्मय से कहा—इसमे चावल का कण कहाँ से आ गया ? सोचने पर उसे याद आया—उस दिन मैंने तिलक लगा रक्खा था और उसी मे का चावल किसी प्रकार गिर गया होगा। उसी को खाकर यह जिंदा है।

भाग्यवादी ने कहा—देख लिया आपने भाग्य का खेल ? इसके भाग्य मे था तो मिलकर ही रहा।

तो उस गणेश भैया को भी अपने भाग्य पर भरोसा था। उसने सोचा—जव मैं मासूम वच्चा था और कुछ भी पुरुपार्थ नही कर सकता था, तव भी मेरा पालन-पोपण हो गया। आज मैं इतना वडा और काविल हो गया हूँ तो मिहनत-मजूरी करके भी काम चला सकता हूँ। फिर भाई के साथ झगडा करने से क्या लाभ !

भाइयो, आज तो छोटी-छोटी बातो के लिए भी भाई-भाई कचहरी चढ जाते है, हजारों रुपया बरबाद कर देते है और जब नगे हो जाते है तो हाथ मल-मल कर पछताते है।

दो भाइयो ने सारी सम्पत्ति का बँटवारा कर लिया, किन्तु एक अमृतबान का बँटवारा न कर सके। एक ने कहा—इसे मै लूँगा और दूसरे ने कहा—मैं बड़ा हूँ, यह मुझे मिलना चाहिए। बात बढ गई तो दोनो एक तुच्छ-सी चीज के लिए कचहरी पहुँचे। हाकिम ने दोनो की मूर्खता पर आश्चर्य प्रकट किया। उसने समझाया—चीज एक है और उसे लेने वाले तुम दो हो। दोनो को मिल नही सकती। तुममे से किसी को इतना सतोप नही कि उसे त्याग दे ? आखिर वे न माने तो उसने वह अमृतबान अदालत मे मँगवाया और हाथ मे लेकर ऊपर से छोड दिया। वह गिर गया और टुकडा-टुकडा हो गया। दोनो बोले— हजूर, यह क्या किया आपने ? हम तो फैसला कराने आये थे।

हाकिम ने कहा—फैसला हो गया। अमृतबान के फूटने से तुम दोनो के भाग्य फूटने से बच गये। न रहा बाँस न बजेगी बांसुरी। इन टुकडो को तराजू मे तोल कर आधे-आधे बाँट लो।

कहाँ राम और भरत जैसे भाई और कहाँ ऐसे तुच्छ विचार वाले भाई ! राम भरत को राजसिंहासन ग्रहण करने के लिए आग्रह करते है,परन्तु भरत उसे ठुकरा देते है। अतत राम भरत का जबर-दस्ती से राज-तिलक कर देते है,आप बनवास को चले जाते है, भरत जी उन की अनुपस्थिति मे उनके सेवक बन कर राज्यकाज करते है। राज्य जैसी बडी चीज़ दो समझदार भाइयो के बीच मे खेलने की गेद मात्र बन कर रह जाती है, जो इधर से उधर ठुकराई जाती है।

उसे कोई स्वीकार करने को तैयार नही था। मगर आजका मानव लोभ के वशीभूत हो कर कैसे अनर्थ कर डालता है

हाँ तो गणेश ने दूरदर्शिता से काम लिया और अपने भाग्य की परीक्षा करनी चाही। वह जंगल मे लकड़ियाँ काट कर लाने लगा और उन्हे वेच कर गुजारा चलाने लगा। उसने सोचा—इस प्रकार निर्वाह करने वाले और भी तो मेरे भाई बहुत है। मै भी एक उन्ही मे सही।

उधर महेश गुलछर्रे उड़ाने लगा। पर हराम का माल हजम होना वड़ा कठिन होता है। वह फूट-फूट कर शरीर मे से निकलता है। जहर भले ही कोई छिप कर खाले, परन्तु जब फूट कर निकलता है तो दुनिया जान ही लेती है।

एक दिन गणेश जगल मे घूम रहा था कि उसे एक तपोधन सन्त मिल गये। वे पुद्गलानन्दी नही थे, भजनानन्दी थे। महात्मा को देखते ही उस का रोम-रोम पुलकित हो उठा। उन की दीप्तिमान मुखमुद्रा को देख कर उस ने प्रणाम किया।

सज्जनो! साधु प्रत्यक्ष मे आनन्द देने वाले है। जो साधु को देख कर मुँह छिपा लेता है, समझना चाहिए कि उसके दिन खोटे आने वाले है। भाई, साधु के दर्शन यो ही नही हो जाते। 'साधूना दर्शन पुण्यम्' पुण्य से सन्त पुरुष के दर्शन होते है। कहा भी है :—

साधु आया जानके, आदर दिया न कोय।
ना कुछ विगड़ा साधु का, हानी उसकी होय।

सज्जनो, साधु तो रमते राम हैं। आज यहाँ तो कल अन्यत्र कही नजर आते है। हाँ वर्षा वास—चतुर्मास एक स्थान पर अवश्य

होता है। चौमासा समाप्त होते ही ये चिडिया की तरह फुर्र कर के उड़ जाने वाले हे। जव चले जाएँगे तो वहिने गाएँगी —

म्हारा सद्गुरु करत विहार, सूत्र अव कौन सुनावेगा ?''

जव मुनने का समय होता हे तव तो ये वहिने वीच मे से ही उठ कर चली जाती है और मुनती नही है पर जव चल देते हैं तो कहती है कि अव सूत्र कौन सुनाएगा ? अरे, साधु तुम्हारे लिए ठहरने वाले नही है। वे तो रमते ही भले है। पर जव महान् पुण्य का उदय होता हे तव कही साधु महात्मा का योग मिलता है। परन्तु हतभागी वे हे जो घर मे आई हुई गगा मे भी स्नान नही करते और पाप की कालिमा नही धोते, वरन् निन्दा-विकथा करके और अधिक पापो मे लिप्त होते है। तो इसमे उनका दोप भी क्या है ? वेचारे पापोदय से परवग है। जिसका भाग्य अनुकूल होता हे, उसके लिए तो जगल मे मगल हो जाता है।

वह गणेश जगल मे लकडियाँ लेने गया था, परन्तु वहाँ साधु के दर्शन हो गये। उसने उनका अभिवादन किया। वह केवल इतना ही जानता था कि ये महात्मा है। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नही जानता था। जव उसने श्रद्धापूर्वक मुनि को नमस्कार किया तो उन्होने भी गम्भीर दृष्टि से उसके चिह्न एव रगढग आदि को देखा। वे समझ गये कि लक्षणो से यह लकडहारा नही जान पडता, किसी अच्छे ऊँचे घराने का प्रतीत होता है। अत एव उससे पूछा—क्यो भाई, तुम यहाँ कैसे फिर रहे हो ?

गणेश ने नि सकोच भाव से सारा वृत्तान्त कह सुनाया और अन्त मे कहा—अव मैं लकडियाँ वेचता हूँ और इसी से अपना जीवन-निर्वाह कर रहा हूँ।

महात्मा ने कहा—देखो, पूर्वजन्म मे धर्म-करणी करने मे तुमने कसर रख दी, इसी कारण यह परिस्थिति उत्पन्न हुई है। अब मेरी छोटी-सी बात मान लो।

गणेश ने सोचा—साधु सब के हितैषी होते हैं। इन जैसा हितैषी दुनिया मे अन्य कौन है ?

उसने प्रकट मे कहा—गुरुदेव, आप बड़े दयालु है। आप के कथन से मेरा आधा दु ख दूर हो गया। अब फरमाइए, मैं आप की क्या आज्ञा शिरोधार्य कर सकता हूँ ?

महात्मा बोले—बस यही कि भविष्य मे हरी लकड़ी मत काटना।

गणेश ने प्रेम के साथ प्रत्याख्यान अर्थात् नेम कर लिया।

दूसरे दिन जगल मे जा कर उसने इधर-उधर सूखी लकड़ियाँ देखीं, पर उसकी प्रतिज्ञा के परीक्षण का समय सन्निकट आ गया था। अत. एक देव ने परीक्षा करने के लिए सूखी लकड़ियाँ गायब कर दी।

सज्जनो, देवता मे बड़ी शक्ति होती है, वह मनुष्य का मस्तक काट कर चूर्ण बना सकता है और उसे आकाश मे फेंक कर फिर उसमे मस्तक बना सकता है। वह भी इतनी जल्दी कि मनुष्य को पता ही न चले। देव स्थूल से स्थूल और सूक्ष्म से सूक्ष्म शरीर भी बना सकता है। वैक्रिय शक्ति द्वारा एक मे हजारों रूप भी बना सकता है। फिर भी एक बात में देव पराजित हो जाता है। मनुष्य सयम और तप की आराधना कर सकता है, देव यह नही कर सकता। मनुष्य मे ही मोक्ष-प्राप्ति का सामर्थ्य है, देव मे नही। मोक्ष जाने के लिए देव को भी मनुष्य होना पडता है।

तो उस देव ने जगल के समस्त सूखे वृक्षो को हरा कर दिया। गणेश परेशान हो गया। हताश होकर अपने भाग्य को कोसने लगा कि दिन भर भटकने पर भी कोई सूखी लकडी नही मिल रही है। मैं कितना अभागा हूँ। फिर भी अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहा। क्षण भर के लिए मन से भी विचलित न हुआ। उसका सकल्प पक्का था—कुछ भी हो, मैं हरी लकडी नही काटूँगा।

सज्जनो, गुरु-आज्ञा पर उसकी ऐसी श्रद्धा थी। वह प्रतिदिन व्याख्यान सुनने वालो मे नही था और न किसी गुरु का कठीवद चेला ही था। उसे यह निश्चय था कि महात्मा जो कहते है, हित के लिए ही कहते है।

वह घूमता-घूमता एक देवस्थान की तरफ जा पहुँचा। उसका अहाता सूखी लकडियाँ गाड कर वनाया गया था, ताकि कोई पशु मदिर मे प्रवेश न कर सके। वह सूखी लकडियाँ देखते ही उसे प्रसन्नता हुई। कुल्हाडा सँभाल कर वह लकडियाँ काटने ही वाला था कि उसी समय व्यतर जाति का देव पुजारी का रूप धारण करके प्रकट हुआ और वोला—अरे तू क्या कर रहा है ? देवस्थान की लकडियाँ काट रहा है ? इतना वडा अपराध ?

गणेश ने नम्रतापूर्वक कहा—जगल मे सूखी लकडियाँ खोजते-खोजते सारा दिन हो गया। थक कर चूर्ण हो गया हूँ, परन्तु सूखी लकड़ियाँ नही मिली। भाग्य से यह लकडियाँ मिली तो तुम इन्कार करते हो। मैंने गीली लकडियाँ न काटने को प्रतिज्ञा ली है और विवशता की स्थिति मे ही ऐसा करने को वाध्य हुआ हूँ। अव सूखी लकडी ही मेरी आजीविका वन गई है।

तव उस पुजारी ने कहा—मै कुछ नही जानता। अगर तू ने इन लकडियो को काटा तो मैं तेरा नाश कर दूँगा।

गणेश—मैं कोई चोर-डाकू नही हूँ। किसी का धन नही चुरा रहा हूँ, जो मैं डर जाऊँ। इतने पर भी तुम मेरे साथ अन्याय करोगे तो मैं उसका प्रतीकार करने को तैयार हूँ। मगर मैं अपनी आजीविका नही छोड सकता।

यह सुन कर देव ने सोचा—लडका है वडा साहसी और दृढ-प्रतिज्ञ। कायर और झूठा होता तो मैदान छोड कर भाग गया होता। सच्चे मे वल होता है। सत्य को भय नही होता।

गणेश ने वातो ही वातो मे लकडियो की भरी वाँध ली। वह ले जाने को उद्यत हुआ तो देवता ने कहा—क्यो मानेगा नही ? ले ही जायगा ?

गणेश—पुजारी जी, आप जानते है कि यह पेट वडा पापी है। फिर मुझे अपने पेट की परवाह नही, परवाह है उसकी जिसे उम्र भर रोटी देने की जिम्मेवारी ले रक्खी है। अगर मैं अपने कर्त्तव्य से च्युत होता हूँ तो उसे वहुत दुख और परेशानी होगी। इसके अतिरिक्त, मैं गीली लकड़ी काट नही सकता, क्योकि मैं प्रतिज्ञावद्ध हूँ। मर जाना स्वीकार है पर प्रतिज्ञा-भग करना स्वीकार नही। मैं इस नीति का समर्थक हूँ कि—

रघुकुल रीति सदा चल आई,
प्राण जाएँ पर वचन न जाई।

तीसरे, जव भाग्य से मुझे आजीविका मिल ही गई है तो कितने ही विघ्न क्यो न आवे, येन केन प्रकारेण उसे त्यागना नही चाहिए। उसे त्याग देना एक प्रकार की कायरता है।

देव समझ गया कि यह अपने प्रण पर अचल है। तव उसने कहा—वेटा, मैं तुम्हारी दृढता देख कर प्रसन्न हूँ। जाओ, खुशी से

लकडियाँ ले जाओ। आगे तुम्हे घर बैठे-बैठे रोटियाँ मिला करेगी। अव जगल मे भटकने की आवश्यकता नही है।

गणेश प्रसन्न होता हुआ, अपने भाग्य की सराहना करता हुआ और गुरुदेव के गुण गाता हुआ घर जा पहुँचा। काफी रात वीतने पर पहुँचने के कारण स्त्री ने खिसिया कर कहा—आज इतनी देरी से कैसे आये ?

गणेश ने समग्र वृत्तान्त सुना कर अन्त मे कहा—देवता ने प्रसन्न हो कर आशीर्वाद दे दिया है कि मुझे घर वैठे ही रोटियाँ मिला करेंगी। देख तो सही गुरुकृपा का चमत्कार कि अव हमे कोई कष्ट नही उठाना पडेगा।

पत्नी यह सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुई और अपने पति के गुणो की प्रशसा करने लगी। उसे भी धर्म पर श्रद्धा हो गई। दूसरी कोई जगदम्बा-भवानी होती या काली का अवतार होती तो फौरन कह देती—तुम तो इधर-उधर रखडते फिरते हो और कमाई के वक्त मौत आती है। मगर उस पतिव्रता ने अपने पति की वात पर पूर्ण विश्वास किया। उसने सोचा—अवश्य ही हमारे भाग्य का सितारा चमकने वाला है।

दूसरे दिन से उनकी दुनिया वदल गई। पत्नी ने ज्यो ही रोटियो की इच्छा की कि कटोरदान मे रोटियाँ तैयार हो जाती है।

देवता की माया का पार नही, वह अचिन्त्य है। देव-माया की यह वात उसकी जिठानी ने सुनी तो अपने पति से कहा—देखो, आजकल तुम्हरे भाई ने जगल मे जाना भी छोड दिया है। वे जिस चीज की इच्छा करते हैं, फौरन ही उन्हे वह मिल जाती है।

एक दिन वह देवरानी के पास भी आई और कहने लगी आजकल तो, मालूम होता है, देवर जी कुछ कमाई नही करते। तब देवरानी बोली—जी हाँ, आजकल हम बड़े आनन्द से जीवन व्यतीत कर रहे है। देवता की कृपा है। गीली-लकडी न काटने की प्रतिज्ञा पर अटल रहने से हमको अनायास घर बैठे ही भोजन मिल जाता है।

जिठानी यह सुन कर घर लौट आई। उसने अपने पति से भी यह बात कह दी। तब महेश ने कहा—यह कौन सी बड़ी बात है ? मैं भी सूखी लकडियाँ काट कर देवता को प्रसन्न कर लूँगा और यही वरदान प्राप्त कर लूँगा।

महेश जगल मे गया और उसी देवस्थान की लकडियाँ काटने लगा। ज्यो ही उसने काटना आरम्भ किया, देव प्रकट हो गया और उसने कुल्हाडा सहित दोनो हाथो को चिपका दिया। देव ने कहा तुझे यहाँ से लकडियाँ काटने का अधिकार ही क्या है ?

महेश घबरा कर बोला—मेरा भाई भी तो यहाँ लकड़ियाँ काटने आया था।

देव ने क्रुद्ध स्वर मे कहा—अरे अन्यायी, तुझ पर देवता कैसे प्रसन्न हो सकता है ? तूने अपने भाई का हक छीन लिया है, उस पर अत्याचार किया है। मैंने उस पर प्रसन्न होकर वरदान दिया है। तुझे तो जान से ही खत्म कर दूँगा।

सज्जनो, गया था वह छब्बे बनने, पर चौबे भी न रहा। वह भय का मारा काँपने लगा और गिडगिडा कर बोला—इस बार मुझ पर दया कर दो। फिर कभी इधर न आऊँगा।

देवता ने कहा—छोड तो सकता हूँ, पर एक शर्त पर।

महेश– वह क्या ?

देवता—बिना नागा एक घी की कटोरी गणेश के घर पहुँचा दिया करना।

महेश—मुझे मजूर है।

देवता—याद रखना, जिस दिन नागा होगा, उसी दिन तेरे हाथ पैर चिपक जाएँगे और फिर खभे की तरह खड़ा रह जायगा। महेश के स्वीकार कर लेने पर देवता ने उसे छोड दिया। वह 'जान बची और लाखो पाये' कहावत चरितार्थ करता हुआ घर आया उसकी स्त्री को जब यह वृत्तान्त विदित हुआ तो उसने भी ईर्ष्या के साथ सन्तोष की साँस ली और कहा—अच्छा हुआ जो इतने से ही पिण्ड छूट गया। अन्यथा कौन जाने तुम्हारा मुँह भी देख पाती कि नही। नियमित रूप से घी की कटोरी पहुँचा देना।

अब गणेश जब भोजन करने बैठता है तो एक कटोरी घी भाई के घर से आ जाता है। पति-पत्नी चूरमा बना कर खाते है और आनन्द-पूर्वक रहते है। भोजन करते समय वह यह श्लोक बोलता है—

आनन्दी आनन्द कर, गलगच करे गणेश।
रोटी देवे देवता, और घी देवे महेश॥

आनन्दी गणेश की पत्नी का नाम था। वह अपनी पत्नी से कहता है—हे आनन्दी, अब खूब आनन्द करो, क्योकि यह गणेश रोटी को घी मे खूब गडगच बना देता है

तो सज्जनो, इस दृष्टान्त का साराश यही है कि भाग्य को

कोई छीन नही सकता। जिसके भाग्य मे जो लिखा है, वह होकर ही रहता है और भाग्य का निर्माण होता है करणी से। गणेश अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहा। उसने भूखा रहना स्वीकार कर लिया पर प्रतिज्ञा को भग करना स्वीकार नही किया। जो की गई शुभ प्रतिज्ञा पर अटल रहते है, वे इहलोक मे और परलोक में भी सुखी रहते है।

धर्म-कथा यही शिक्षा देती है कि पूर्णरूप से प्रतिज्ञा का पालन करना चाहिए। प्रतिज्ञा पर दृढ रहने वाले ससार-समुद्र से पार हो जाते है।

ब्यावर

६-१०-५६

प्रभावना-आचार (६)

उपस्थित महानुभावो,

व्याख्यान मे जो विपय चल रहा है, वह आपके ध्यान मे होगा। सम्यक्त्व के विवेचन मे आठवे प्रभावना नामक दर्शनाचार का निरूपण किया जा रहा है। जिन क्रियाओ से धर्म का विस्तार हो, प्रभाव वढे, लोग सम्यक्त्व की ओर आकृष्ट हो, वह सव दर्शनाचार के प्रभावना अग मे सम्मिलत है।

आज पाप की ओर खिचने के साधन वहुत वढ रहे है। राग, द्वेष, काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ की परिणतियाँ ससार मे वढती जाती है और जहाँ वे वढ रही है, जन्म-मरण की वृद्धि हो रही है—जातिपथ वढ रहा है। जाति का अर्थ है जन्मना और मरना, तथा पथ का अर्थ है मार्ग। तो इस जातिपथ का अभिप्राय हुआ—जन्म-मरण का रास्ता वढ रहा है।

एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक पॉच जातियाँ है। असली जातियाँ यही है। वाकी ओसवाल, पोरवाड, अग्रवाल आदि जो अगणित जातियाँ है, वे मनुष्य द्वारा कल्पित है। परिस्थिति के अनुसार उत्पन्न हुई है और चल रही है। कर्मोदय जनित पॉच ही जातियॉ है। जिन जीवो ने एकेन्द्रिय जाति नामकर्म का वध किया है, उन्हे एकेन्द्रिय जाति प्राप्त हुई। इसी प्रकार पचेन्द्रियनामकर्म वॉधने वालो को पचेन्द्रियजाति मिली।

सम्पूर्ण जीवन मे जिसका परिवर्तन न हो सके, वही जाति कहलाती है। यह नही हो सकता कि मृत्यु का आलिगन किये विना

हो कोई जीव एकेन्द्रिय बन जाय। ऐसा न कभी हुआ, न हो सकता है। एक ही जन्म मे असली जाति बदल नही सकती। ऐसा हो तो कर्मसिद्धान्त ही न रहे।

तो जातिपथ का मतलब यह हुआ कि ससारी जीव एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक विभिन्न जातियो मे जन्म-मरण करता रहता है। कदाचित् यह जीव गिरता-गिरता निगोद पर्याय मे चला जाय तो वहाँ उसे अनन्त काल तक रहना पडता है। उस समय तक उसका एकेन्द्रियपन नष्ट नही होता। अनन्त काल तक वह जीव एक ही जाति मे पडा रहता है।

सज्जनो! तो ज्यो-ज्यो राग-द्वेष आदि विकारो की वृद्धि होती है, जातिपथ की भी वृद्धि होती है। इस जीव को भ्रमण करते-करते अनन्त काल हो गया, परन्तु जातिपथ से इसकी मुक्ति नही हुई। एक मनुष्य अपराध करता है और उसे कारावास का दण्ड मिलता है। यदि वह कारावास की अवधि को ईमानदारी से पूर्ण करता है तो कानून के अनुसार छुटकारा पा लेता है। इसके विपरीत यदि वहाँ भी वदमाशी करता है तो सजा और भी वढ जाती है।

यह जीव भूल पर भूल करता है। गलती पर गलती करता है। इसी कारण चतुर्गति रूप ससार के कारागार मे पड़ा सज़ा भोग रहा है। मगर सजा के समय मे भी शान्त न रह कर नयी-नयी वदमाशी करता है, नये कर्म वाँधता है, नवीन पापो का उपार्जन करता है, अत एव सज़ा की अवधि भी वढती जाती है। इस प्रकार कारागार से छुटकारा पाने का अवसर ही नही आ रहा है।

चाहिए तो यह कि ठोकर खाकर आगे के लिए सँभल जाय, देख कर चले और ऊँट की गर्दन लेकर न चले, जिससे फिर ठोकर

न लगे, परन्तु विकारो के वशीभूत होकर यह जीव सँभलता ही नही है और ठोकर पर ठोकर खा रहा है, अनन्त काल से ठोकरे खा रहा है। यह दूसरे दुखियो को देख रहा है कि वे कैसी-कैसी यातनाएँ भुगत रहे है, फिर भी इसे अक्ल नही आती।

तो पाप की वृद्धि के साधन पैदा करने की आवश्यकता ही नही है। इन काँटो को कही से लाकर विखेरना नही पड़ता। वे स्वय हवा से उड-उड कर दूर-दूर तक फैल जाते है। कठिनाई तो पुष्पो की सुगन्ध विखेरने मे है। हमे काँटो के वदले ससार मे पुष्पो की सुगन्ध ही विखेरना चाहिए, ताकि आस-पास वालो के दिल-दिमाग को ताजगी मिले और साथियो को आराम मिले।

किन्तु आज वे साथी क्या कर रहे है ? न मालूम किसने उनकी वुद्धि को हरण कर लिया है। वे वार-वार चेतावनी देने पर भी नही मान रहे है। इससे तो यही समझा जा सकता है कि अभी उन जीवो का भव-भ्रमण शेष है। जिसकी जैसी गति होने वाली हो, वैसी ही मति हो जाती है, मनुष्य की विचार-धारा उसी ओर प्रवाहित होने लगती है।

सज्जनो! मनुष्य जन्म पा लेना वच्चो का खेल नही है। भगवान् ने फर्माया है कि एक वार अन्तर पड जाय तो अनन्त काल तक का अन्तर पड़ जाता है और मनुष्य जीवन नही मिलता है। आज हमे सहज ही स्वर्णावसर प्राप्त है। यह अनमोल रत्न हाथ लग गया है, देव भी जिसकी कामना करते है। अत एव इसका दुरुपयोग न करके सदुपयोग ही करना चाहिए।

मनुष्य जीवन के इस कीमती शाल-दुशाले को धूलधूसरित नही करना चाहिए। इसमे मिट्टी, धूल और काँटे नही भरना चाहिए

वल्कि रत्न और पुष्प भरने चाहिएँ । मगर अज्ञानी जीव इसकी कीमत नही समझता । याद रखना, न तो गुरु ही काम आएँगे और न गच्छ एव टोले ही काम आ सकते है । यह सव व्यवहार की चीज़े है । निश्चय मे तो जीवन को वनाने और विगाडने वाली तेरी निज की ही आत्मा है । इस लिए मैं पुन चेतावनी देता हूँ कि केवल सुनने के आदी मत वनो, रूढिवादी मत वनो, वीतराग वाणी सुन कर तदनुसार अमल करो, यह न समझो कि हमारा काम सुनने का और महाराज का काम सुनाने का है। यह समझते हो तो वड़ी भारी गलती करते हो और अपने भविष्य को खतरे मे डालते हो । ऐसे खतरे मे जिसका मुकाविला करना कठिन हो जायगा ।

अरे लोगो, दूसरो के लिए कुछ नही कर सकते हो तो अपने लिए तो कुछ भला करो । अपने लिए करोगे तो भी पड़ोसियो को राहत मिल जायगी । इस प्रकार अपने सुख मे दूसरो का भी सुख शामिल हे । मगर जो अपने लिए ही कुछ नही कर सकता, वह दूसरो के लिए क्या कर सकेगा ?

विचार करो तो पता चलेगा कि मनुष्य की अपेक्षा पशु प्रकृति के नियमो का अधिक पालन करते है । वे घास खाते हे उतना ही, जितनी उन्हे भूख हो । फिर खाना छोड कर आराम से एक जगह वैठ जाते हैं और घटे दो घटे तक जुगाली करते है । उससे उनके शरीर मे रस वनता है, जिससे उन्हे वल मिलता है, नये रक्त का सचार होता है और यह सव क्रिया नियमानुसार होती है । पशु खाकर जुगाली नही करता तो समझदार मालिक समझ लेता है कि आज पशु वीमार है और उसे ठीक हालत मे लाने के लिए उपचार करता है ।

तो पशु भी इतना समझते है कि मुझे इतना खाना है और इतना मैं आसानी से हजम कर सकूँगा और उसका रस-कस बना सकूँगा यद्यपि उनमे विशिष्ट धर्म करने की शक्ति नही है, फिर भी अपने शरीर के सरक्षण का उनको भी ज्ञान है। मगर आज मनुष्य को लेने की—पेट मे डालने की—वुद्धि तो है,पर पचाने की चिन्ता नही है।

उचित तो यह है कि वह नित्य प्रति उतनी ही खुराक ग्रहण करे जितनी आसानी से पचा सके और रस-कस वना कर शरीर और मन को शक्ति पहुँचा सके। इसी प्रकार आप हमेशा सुनते आ रहे हैं, किन्तु उस सुने हुए पर मनन करने की कोशिश नही करते। चाहिए यह कि आप जो सुनते है, उस पर घटे भर तक मनन करे और सोचे कि उसे जीवन मे कैसे उतारना चाहिए ?

जो सुना है उस के अनुकूल जीवन वनाना ही उसे पचाना और उसका रस-कस वनाना है। अत एव श्रवण-मनन खाने और जुगाली करने के समान है। तत्पश्चात् उसे जीवन मे व्यवहृत करना पचाने के समान है। श्रवण किये का आचरण करने से जीवन निखरता है, मँजता है, जाति-पथ का अन्त आता है और मोक्षमार्ग मे प्रवृत्ति होती है। आचरण न किया जाय तो सुनने का सार ही क्या है ? ज्ञान तीनो श्रेणियो मे से निकलना चाहिए—श्रवण, मनन और निदिध्यासन।

भगवद्वाणी सुनते-सुनते वर्षों हो गए। महापुरुषो ने तुम को अलौकिक वाणी सुनाई, पर आपने उस पर मनन नही किया और जीवन-व्यवहार मे लाने का प्रयत्न नही किया। तो इस वाह्य नाटक से काम नही चलने का। जव तक सुन कर जीवन मे नही उतारोगे तव तक कोई सिद्धि प्राप्त होने वाली नही है। थोडा-सा

सुना हुआ भी अगर जीवन मे उतर जायगा तो वह लाभदायक होगा। अधिक खा लिया और पचाया नही, खूब सुन लिया मगर अमल किया नही तो वह वृथा चला जायगा और कुछ भी लाभप्रद न होगा।

ज्ञानी पुरुप चेतावनी दे रहे है कि आप को मनुष्य-जन्म, आर्यकुल और उत्तम धर्म प्राप्त हुआ है तो इस को सार्थक करो। भगवती सुनो, ठाणांग सुनो और अन्य धर्म-शास्त्र भी सुनो, किन्तु सुन-सुन कर दूसरे कान मे मत निकाल दो, बल्कि उस पर मनन करो, उसे जीवन मे व्यवहृत करो। फिर अवश्य ही तुम्हारा कल्याण होगा। यह मनुष्य जन्म बार-बार मिलने वाला नहीं है। एक बार पाकर इसे गँवा दिया तो संभव है अनन्त काल तक न मिले। किन्तु अफसोस है कि बडी मिहनत, मुशक्कत, पुरुपार्थ, तपस्या और धर्म-क्रिया करने के बाद तो यह हीरा हाथ लगा, फिर भी मूर्ख ककर समझ कर यो ही फैक रहा है। दुरुपयोग कर रहा है। शुभ कर्मो मे लगाने के बदले पाप कर्मो मे लगा रहा है।

सज्जनो! इस जीवन को पापो मे लगाने के लिए कोई मिहनत नही करनी पडती, किन्तु धर्म की ओर आकर्पित करने मे बड़ा परिश्रम करना पडता है।

शास्त्र मे कहा है—पापी जीव तो सोते ही भले और धर्मी जीव जागते ही भले। यह ठीक ही है, क्योकि पापी-कसाई जागेंगे तो खून से हाथ भरेंगे, निरपराधो की गर्दनो पर छुरियाँ चलाएँगे। धर्मी जागेंगे तो दुखियो को दुःख से मुक्त करेंगे, गिरे हुए लोगो को ऊपर उठाएँगे, रोतो के आँसू पोछेंगे और उन्हे छाती से लगाएँगे।

प्रात काल हम शौच जाते है तो कई वार कसाई मिलते हैं। मैं सोचता हूँ—इन को भी वड़ी कठिनाई से मनुष्य-जन्म मिला है, पर इनका जीवन पशुओ से भी गया-गुजरा है। पशु अपने शरीर से दूसरो का उपकार तो करते है, किन्तु जो मनुष्य हो कर भी पशुओ पर छुरियाँ चला रहे है, खून वहा कर भी हृदय मे ग्लानि अनुभव नही करते, वल्कि अपनी क्रूर करतूत पर अट्टहास करते है, जो इतने क्रूरहृदय वन गये है कि गाजर-मूली समझ कर प्राणियो को काट फेंकते हैं, इनका क्या होगा! प्रभो! इन्हे कौन-से नरक मे स्थान मिलेगा?

यह सर्वविदित है कि मनुष्य जैसी सोसाइटी मे, जैसे वायुमण्डल मे रहता है, उसका जीवन उसी साँचे मे ढल जाता है। डाक्टर का हृदय इतना सख्त हो जाता है कि वह मनुष्य के शरीर के किसी भी अग का ऑपरेशन कर डालता है। उसे हिचकिचाहट नही होती। दूसरा उस दृश्य को दूर से देखकर भी मूर्छित हो जाता है। ऐसा करे विना वह अपने कार्य मे सफल नही हो सकता, रोगी का दु ख दूर नही करता। कसाई, डाकू, जल्लाद या सैनिक ऐसे वातावरण मे पलते है कि उन्हे किसी मनुष्य अथवा पशु को मारते करुणा या घृणा नही उत्पन्न होती।

देश के वँटवारे के समय आपने देखा या सुना होगा कि भाई-भाई मे कितनी तीव्र प्रतिशोध की आग भडकी थी। नृशस क्रूर हत्यारो ने साक्षात् यमदूतो का रूप धारण करके, अपने-अपने क्षेत्र के अल्पसख्यक दुधमुँहे वच्चो को, असहाय स्त्रियो को और पुरुषो को काट-काट कर फैंक दिया। दिल खोल कर खून की होली खेली। यह सव वातावरण ही का तो प्रभाव था। उस समय का वातावरण

इतना दूपित हो गया था कि मानव मानवता को त्याग कर दानव वन गया था ।

आपसे कीडी मारने को कहा जाय तो आपके रोंगटे खडे हो जाएँगे, क्योंकि आप दया और करुणा के वातावरण मे पले है। उस वातावरण मे जहाँ मैत्रीभाव का निर्मल निर्झर प्रवाहित होता है और विश्व के प्राणीमात्र को आत्मा के समान समझा जाता है ।

अत एव ज्ञानी पुरुप कहते हैं कि महापुरुषो की सगति मे रहोगे तो तुम्हारा जीवन उन जैसा वन जाएगा और यदि पापियो के सम्पर्क मे रहोगे तो तुम्हारा भी उन जैसा आचार-विचार वन जाएगा ।

हाँ, पाप की ओर जीवन का मोड हो जाना आसान है, किन्तु धर्म की ओर झुकना कठिन हो जाता है ।

तो मैं कह रहा था कि पाप की प्रभावना मत करो, किन्तु धर्म की प्रभावना करो । किसी को खोटी सलाह देकर पाप मे प्रवृत्त मत करो, वरन् जो पाप मे प्रवृत्त हैं उन्हे धर्म का माहात्म्य समझा कर धर्मनिष्ठ वनाओ। इससे दोनो घर खुशहाल-आवाद-होगे । पाप की प्रभावना से दोनो की वर्वादी होगी ।

श्रावक के मन मे किसी को विगाड़ने की नीच भावना उत्पन्न नही होनी चाहिए । श्रावक सत्यव्रतधारी होता है । तुम अपने जीवन की जाँच करो कि तुम किस भूमिका पर खडे हो ? तुम कौन-सी श्रेणी के विद्यार्थी हो ? मगर तुम्हे सीखे हुए पाठ की स्मृति ही नही है । आँखे खोल कर ध्यान से पढोगे तो वे पक्तियाँ हमेशा याद रहेगी । अगर तोता रटन्त करना ही अपना ध्येय वना लिया तो कुछ भी विकास नही होगा ।

जिस श्रावक ने दूसरे व्रत मे स्थूल सत्य को अपनाया है और स्थूल असत्य का त्याग किया है, उसे त्याग करके ही नीद मे नही सो जाना है। दुकान मे माल सजा कर ही नही सो जाना है, किन्तु जागृत रहना है। किसी माली को पौधा लगा कर ही घर नही बैठ जाना होगा, उसकी सार सँभाल करनी होगी, समय पर पानी देना होगा और पशुओ से रक्षा करने के निमित्त पाल भी बाँधनी होगी। काँटे भी लगाने होगे।

कई लोग गुरु से जब किसी प्रकार का नियम लेते है तो उन्हे कहना तो चाहिए 'अप्पाण वोसिरामि,' मगर वे 'वोसिरे-वोसिरे' कह कर वही उसे वोसरा देते हैं। कई पडित जी, जो फेरे फिराते है, उनको भी ठीक रूप से पता नही होता कि फेरे कैसे फिराए जाते है। इसी प्रकार कितनेक साधु-साध्वियो को भी पता नही कि नियम कराने वाले को क्या पाठ बोलना चाहिए और नियम लेने वाले को क्या बोलना चाहिए। यदि सामायिक किसी को करानी है तो साधु को या कराने वाले को 'करेमि भते' का पाठ कैसे बोलना चाहिए और करने वाले को कैसे बोलना चाहिए ? अगर साधु करेमि, पच्चक्खामि, पज्जुवासामि, वोसिरामि बोलता है और करेह, पच्चक्खेह, पज्जुवासेह और वोसिरे नही बोलता तो बडा घोटाला हो जायगा। पता ही नही चलेगा कि फेरे बेटे के हुए हैं या बाप के ? साधु को 'करेमि' की जगह 'करेह' और 'वोसिरामि' के स्थान पर 'वोसिरे' बोलना चाहिए। तभी दूसरे को सामायिक कराना कहला सकता है। और स्वय सामायिक करने वाले को 'करेमि' तथा 'वोसिरामि' आदि बोलना चाहिए।

मगर आज जो उलटपलट मामला चल रहा है, वह सब लकीर के फकीर होने का ही परिणाम है। कई तो बतलाने वाले

को भी कह देते है कि हम ने तो गुरु जी से ऐसी ही धारणा की है। धन्य हैं ऐसे भक्त शिष्य जो अपने साथ गुरु जी को भी लपेटते है। इसका मुख्य कारण यही है कि आप पढ-सुन कर मनन नही करते।

श्रावक दूसरे अणुव्रत मे पाँच बातो का त्याग करता है, यथा—झूँठी गवाही नही दूँगा और खोटा उपदेश नही दूँगा, जिस से दूसरे की हानि हो, करने वाले की आत्मा का भी पतन हो और उपदेश देने वाला भी पाप का भागी हो। इस के अतिरिक्त विना सोचे-विचारे, विना किसी चीज का नतीजा निकाले किसी पर झूठा कलक नही लगाऊँगा।

किसी को झूठा कलक लगाना अठारह पापो मे से एक अभ्याख्यान पाप है। भगवती सूत्र मे उल्लेख है कि गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर से प्रश्न किया—भगवन् ! जो प्राणी अज्ञान से—मूर्खता से—दूसरे पर झूठा कलक लगाता है, वह किस प्रकार का फल भोगता है ? भगवान् ने उत्तर दिया—उसने जिस प्रकार के कलक लगाये है, उसे, जहाँ भी वह उत्पन्न होगा वहाँ, उसी प्रकार के कलको का भागी होना पडेगा, वहाँ वह अपमानित और तिरस्कृत होगा।

सज्जनो, आप ने सुना होगा कि सीता को झूठा कलक क्यो लगा ? वह पूर्वभव मे एक ब्राह्मण की लडकी थी। उस भव मे उसने एक महात्मा को झूठा कलक लगाया था। वह किसी पुण्य के योग से जनक की दुलारी और राज-रानी तो बन गई, फिर भी उसे ज़िदगी मे आराम नही मिला। पिता के घर से उसके भाई भामंडल को देवता उठा कर ले गया, अत एव भाई का वियोग सहना पड़ा। शादी का समय आया तो धनुष तोड़ने की विकट

समस्या खडी हो गई। भाग्य से रामचन्द्र जी जैसे पराक्रमी योद्धा ने धनुप तोड कर विजय प्राप्त की। सीता ने उनके गले मे वरमाला डाल कर सोचा—अव दिन सुखपूर्वक व्यतीत होगे। सुसराल मे कुछ समय आनन्द से वीता भी, पर महात्मा पर जो कलक चढाया था, उसने उन्हे अधिक समय तक चैन न लेने दी। मानो उस कर्म ने कहा—अरी, महात्मा पर कलक का आरोप करके भी महलो मे रह सकती है क्या? नही, तुझे जगल मे भटकना होगा और कलक सहना होगा।

जव राजा दशरथ ने वचन-वद्ध होकर राम को चौदह वर्प का वनवास दिया तो राम खुशी-खुशी लक्ष्मण के साथ रवाना होने लगे। सीता ने साथ जाने का आग्रह किया तो उसे भी साथ ले लिया। इस प्रकार महल छूट गया और वन मे भटकना पडा। सीता ने ज्ञानबल से पति के सहवास मे जगल मे ही आनन्द माना, मगर जगल का मगल भी कर्मो को मजूर नही था। एक दिन लकाधीश रावण आया और हरण करके लका मे ले गया। वहाँ उसने महल मे न रख कर अशोकवाटिका मे एकान्त मे रखा और इस वात की प्रतीक्षा करने लगा कि सीता उसे पति-रूप मे स्वीकार कर ले।

सज्जनो, देख लिया आपने झूठा कलक लगाने का परिणाम?

सीता पति के वियोग मे रुदन करती है, आँसुओ से मुँह धोती है और पश्चात्ताप कर रही है कि—हाय, मैंने ऐसे कौन-से खोटे कर्म किये थे कि सव सुख-साधन मिलने पर भी मुझे वन-वास के साथ ही पतिवियोग की भी दारुण व्यथा सहनी पडी?

भद्रपुरुपो, भगवतीसूत्र का कथन अन्यथा होने वाला नही है। महापुरुपो के वचन तीन काल मे भी मिथ्या नही हो सकते।

उन्होने जिन-जिन कर्मों का जो-जो फल वतलाया है, वह हो कर ही रहता है।

तो सीता को भी कर्मफल ने नही छोडा। उसका अपहरण हो गया तो खोज आरम्भ हुई। कुछ समय वाद हनुमान जी ने लङ्का पहुँच कर सीता का पता लगाया। राम और रावण का घोर युद्ध हुआ। सीता की चिन्ता का पार न रहा कि ऊँट न जाने किस करवट वैठे! किन्तु राम की विजय हुई। वे लका का राज्य विभीषण को सौप कर, वनवास की अवधि पूर्ण करके वापिस अयोध्या आये। शान के साथ प्रजा ने स्वागत किया। सिहासन पर आसीन हो कर रामचन्द्र जी राम-राज्य का प्रसार करने मे व्यस्त हो गये। लगातार कई वर्षों तक यातनाएँ भोगने के वाद सीता ने सोचा—चलो, अव दुख के दिन वीत गये और सुख का समय आ गया। अव मैं पतिदेव की सेवा करती हुई सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करूँगी। किन्तु कर्म को कहाँ मजूर था? वह सीता को एकदम झटके से नही मारना चाहता था, वरन् रह-रह कर हलाल करके, तडफा-तड़फा कर मारना चाहता था। मारेगा क्यो नही, उसने भी तो झूठा कलक लगा कर महात्मा को तड-फाया था!

तो कुछ दिन रुक कर कर्मों ने पुन अपना चक्र चलाना आ-रम्भ किया। सीता पटरानी थी और राम की स्नेहपात्री थी। पर यह वात उनकी सौतो को तीर की तरह चुभ रही थी। अवसर पाकर एक दिन उन्होंने राम से कहा—जिस सीता पर आप इतना अनुराग रखते है, जिस के मोह मे इतने विह्वल हो रहे हैं, जिस की खातिर आपने हम से मुख मोड रक्खा है, जाँच तो कर देखिए, वह किस की है? भले वह ऊपर से मीठी-मीठी वाते करे और आप

को प्राणाधार कहे, परन्तु अन्दर से तो वह जिस को है, उसी की है। उस के रोम-रोम मे रावण वसा है। इधर हम मन, वचन, तन से आप की सेवा करती हैं, फिर भी हमे भुलाये रहते है।

यद्यपि रामचन्द्र को सीता के पतिव्रत-धर्म पर सन्देह नही था। फिर भी उन रानियो ने ऐसा पलीता छोडा कि एक वार तो राम भी विचार मे पड गये। उन्होने पूछा—आखिर इस धारणा का क्या आधार है ?

रानियो ने कहा—आप ज्ञानी होकर हमी से पूछते है। आप को पता नही कि सीता किसके ध्यान मे रहती है ? वह तो हमेशा रावण के चरणो की पूजा करती है और तत्पश्चात् ही मुँह मे पानी डालती है।

राम के आश्चर्य और खेद का पार न रहा। वे उदासीन रहने लगे। उधर रानियो ने एक षड्यन्त्र रचा। वे सीता के पास जाकर वोली—वहिन जी, आप भाग्यशालिनी है। आप जैसी पतिव्रता विरली ही रमणी होगी जो रावण जैसे के फदे मे पड कर भी अपने धर्म पर अविचल रहे। आप हमारी पूज्य देवी हो। मगर हमे यह जानने की वडी उत्कठा है कि रावण का डीलडौल कैसा था ? वह सुन्दर था या कुरूप था ?

सीता गभीर भाव से वोली—मै ने उस पापी का मुँह तक नही देखा।

सौतो ने कहा—कभी अचानक दृष्टि पड गई होगी।

सीता—नही, मैंने उसका सिर्फ अँगूठा ही देखा था।

सौते—तो वही वतलाइए, कैसा था ?

सज्जनो, इस ससार मे खल-जन वडे विचित्र दाव खेलते है। किसी ने ठीक ही कहा है—

कौन जाने पराये मन की,
मन की तन की लगन की रे,
कौन जाने पराये मन की ॥

भोली सीता उनके चक्कर मे फँस गई। वह न समझ सकी कि विल्ली ऊपर से 'म्याऊँ' करती है और चूहा आया तो 'खाऊँ' करती है। विल्ली वड़ी धूर्तता से चूहे को या पक्षी को पकडती है।

एक जगह वहुत-से चूहे थे और खूव आनन्द से खेलते-कूदते थे। एक विल्ली वहाँ जाती और होशियारी से चूहे को पकड कर खा जाती थी। इस प्रकार करते-करते वहुत समय गुजर गया। एक दिन उन्होने सभा की, और देखा कि प्रतिदिन उनकी सख्या का ह्रास हो रहा है। इसका कारण क्या है? किस कारण इतनी कमी हो रही है?

तव एक जानकार चूहे ने कहा—विल्ली आती है और वह चट कर जाती है। यह सुनकर चूहो ने प्रस्ताव किया—आयदा सव सावधान रहे और सख्या मे कमी न होने दे।

उधर विल्ली घर-घर घूमती फिरती थी। एक घर मे उसे दूध की मटकी मिल गई। मटकी का मुँह सँकड़ा ही था, फिर भी लोभवश उसने उसमे मुँह फँसा ही दिया। दूध पीना शुरु करते ही घर का मालिक आ गया। उसने पत्थर फेंक कर मारा। पत्थर विल्ली को न लग कर हडी के पेदे मे लगा जिससे हडी फूट गई और उसका घेरा उसके गले मे रह गया। वहुत कोशिश करने पर भी जव घेरा न निकला तो उसने सोचा—अव मैं शिकार मे भक्तन वन जाऊँगी और धर्म की ओट मे शिकार करूँगी।

विल्ली अव चूहो के पास गई तो वे सावधान ही थे। उसे देख कर विलो मे छिप गये। यह देख कर उसने कहा—अव तुम्हे मुझसे भय खाने की आवश्यकता नही, क्योकि परमात्मा से कोई पाप छिपा नही रहता। मैने पहले के पापो का प्रायश्चित्त कर लिया है और मैं प्रतिज्ञा करती हूँ कि आज से तुम्हे नही मारूँगी।

चूहो ने विल्ली की यह भागवत सुनी तो वे विलो मे से निकल-निकल कर वाहर आ गये। विल्ली वोली—आज से तुम मेरे भाई हो और मेरे साथ खुले दिल से खेला करो। तव चूहो ने पूछा—वहिनजी, तुम्हारे गले मे यह क्या है? आर्द्र स्वर मे विल्ली ने कहा—मैंने तुम्हारे भाइयो को मारा और खाया, किन्तु उस महान् पाप की शुद्धि करने हरिद्वार गई थी। वहाँ गगास्नान किया, धर्मोपदेश सुना। वहाँ से केदारनाथ गई और तीर्थयात्रा की। वहाँ मेरे गले मे केदारककण डाला गया और मैं ने प्रतिज्ञा की कि अव आखिरी अवस्था मे किसी को नही मारूँगी। अत एव तुम्हे डरने की कोई आवश्यकता नही है। मुझे तो पिछले पाप ही वहुत खटक रहे है। अव नया पाप पल्ले कैसे वाँधूँगी?

यह सुन कर चूहे वहुत खुश हुए, किन्तु वे वुद्धू यह नही समझ सके कि कौवा भी कभी हस हुआ है? कभी कोयला भी सफेद हुआ है? वे यही समझे कि चलो, अच्छा हुआ। अव हमको घूमने-फिरने की स्वतन्त्रता हो गई। यह समझकर चूहे वेधडक इधर-उधर घूमने लगे। वे विल्ली से निर्भय हो गये। पर 'स्वभावो दुरतिक्रम' वाली कहावत चरितार्थ हुई। यह मौका देखकर वडी सरलता से एक-एक चूहे को गटकने लगी।

इसी प्रकार कुछ दिन व्यतीत हो गये । चूहो ने फिर देखा कि हमारी सख्या का ह्रास रुका नही है। तब उन्होने एक दिन 'जनरल मीटिंग' बुलाई और कहा—मामी कहती है कि मै बिलकुल पवित्र हो गई हूँ, लेकिन हमारी सख्या बराबर कम होती जा रही है। कोई न कोई प्रभावशाली कदम उठाना चाहिए । आखिर उन्होने निश्चय कर लिया कि हमे मामी का भी विश्वास नही करना चाहिए। ढोग करती है, पर वास्तव मे गद्दार है, धोखेबाज है और हमारा सर्वनाश कर रही है।

फिर प्रश्न उठा—मगर सबूत क्या है कि उसी की बदौलत हमारी सख्या कम हो रही है ? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए बाडी पूंछ वाला एक चूहा सामने आया। उसने कहा—आज से मैं तुम सब के पीछे रहूँगा, तुम्हारे सरक्षक के रूप मे, यदि मैं इस ससार मे न रहूँ तो समझ लेना कि बिल्ली ही हमारी बिरादरी की भक्षक है।

कटी पूंछ वाला चूहा सब के पीछे रहने लगा । बिल्ली को तो चस्का लगा हुआ ही था। एक दिन उस केदार-ककण वाली दुष्टा ने मौका देख कर उस बुड्ढे को धर दबाया। तब उसने कहा—मुझे बडी खुशी है कि मैं अपने भाइयो की रक्षा के लिए कुर्बान हो रहा हूँ। मुझे इससे अच्छी मौत दूसरी नही मिल सकती। प्रसन्नत की बात है कि तुझ पिशाचिन से मैंने अपनी बिरादरी की रक्षा कर ली। मै मर कर भी अमर हो जाऊँगा। जाति की रक्षा के लिए मरने वाला अमर हो जाता है। मैं मर कर जिंदो मे नाम लिखाऊँगा। इस के विपरीत जो जिन्दा रह कर बिरादरी को हानि पहुँचाते है, धर्म और देश को रसातल मे पहुँचाने वाले काम करते है वे मृतक से भी बुरे हैं। मुझे पुरजोर शब्दो मे घोषणा करनी

होगी कि—ऐ मेरे जाति-भाइयो ! आयदा इस नीच गद्दार पापिन का विश्वास मत करना और अपने आपको इससे सावधान रखना। यह केदार ककण पहन कर भी हम को आज तक धोखा देती रही है। हे भाइयो ! मै मर रहा हूँ, इसकी मुझे तनिक भी चिन्ता नही, मगर तुम सब सतर्क रहना और इसकी मीठी-मीठी बातो मे मत आना।

यह जाति पर मरने वाले की उद्घोषणा थी, चेतावनी थी। उसने अपने प्राणो की बलि देकर भी जाति-बन्धुओ के प्राणो की रक्षा की। सज्जनो ! कहाँ तो उस छोटे से प्राणी की उदारता और कहाँ मनुष्य का चोला धारण किये हुए आप लोग। आप जाति को नेस्तनाबूद करते भी नही हिचकते।

आप को इस उदाहरण से शिक्षा लेनी चाहिए और ऐसी केदार-ककण वाली बिल्लियो से सावधान रहना चाहिए। यदि उन चूहो मे बाडी पूछ वाला सेनापति न होता तो न मालूम कितनो का नबर आ गया होता ? उसके बलिदान से सब चूहे सावधान हो गये और उन पिशाचिनी से चोकन्ने रहने लगे। उसके पाप का भाँडा फूट चुका था, अत एव किसी ने उसका विश्वास नही किया। सच है, जो दूसरो की हानि करना चाहते है, अन्त मे उनकी ऐसी ही दशा होती है।

सज्जनो, इसी प्रकार दुनिया मे नीच पुरुष येन केन प्रकारेण भोले लोगो को बरगलाते है। वे ऊपर-ऊपर से बडे ही मिष्टभाषी, नम्र और कोमल दिखलाई देते है, मगर उनके दिल मे दावानल जलता रहता है।

सज्जनो ! जो दिल के काले, हृदय के मलीन और दुर्भावना वाले होते है, उनकी अन्दर की दुनिया कुछ और होती है और वे

वाहर मे और ही रूप मे दिखावा करते है। उनका मुख कमल-सा खिला हुआ दृष्टिगोचर होता है, वाणी मे इतनी मधुरता और शीलता कि मानो चन्दन की ही शीतलता व्याप रही हो, मगर हृदय उनका कैची की तरह होता है जो थान को भी टुकडा-टुकडा कर देती है। यह दुष्ट पुरुष के लक्षण होते है।

हाँ, तो सज्जनो ! सीता भद्र थी और उसके हृदय मे पाप नही था। वह अपनी सौतो को अपने ही समान निश्छल समझती थी। अत एव जव सौतो ने आग्रह किया कि आप की स्मृति मे हो तो उसके अगूठे का ही चित्र वना कर दिखला दो, तो भोली चित्र-कला मे निपुण सीता ने कागज पर रावण के अगूठे का चित्र वना दिया।

वस, सौतो की मुराद पूरी हो गई। वे सीता की प्रशसा करती हुई अपने-अपने महल मे चली गई। फिर जव राम आये तो उन्होने वह चित्र उनके सामने रख दिया और कहा—देख लो, यह है रावण के चरण के अगूठे का चित्र, पटरानी जी जिसकी प्रतिदिन पूजा करती है। अव इससे अधिक कहने की कोई आवश्यकता है क्या ? हमे आप को जतलाना था सो जतला दिया, इससे आगे आप की मर्जी।

सच है, जव पापकर्मो का उदय आता है तो तन के कपडे भी दुश्मन वन जाते है। किसी ने कहा है —

दिल के फफोले जल उठे, सीने के दाग से ।
इस घर को आग लग गई, घर के चिराग से ॥

यद्यपि राम चन्द्र वडे कुशल राजनीतिज्ञ थे और किसी की कुटिलनीति के फेर मे पडने वाले नही थे, किन्तु वह चित्र देख कर

उनकी अकल पर भी पर्दा पड़ गया । वे असमजस मे पड गये, किकर्त्तव्यमूढ हो गये और माथे पर हाथ रख कर विचारसागर मे गोते लगाने लगे । परन्तु उन्हे पता नही था कि यह सब कर्मों का नाटक है ।

सीता को अपने किये कर्म का फल भोगना है, अत एव ऐ राम, तू उसका किसी प्रकार भी प्रतिरोध नही कर सकता ! विरोध नही कर सकता । गोली का वार खाली जा सकता है । एटमबम का परीक्षण भी निष्फल हो सकता है, परन्तु किये कर्मो का फल तो भोगना ही पडेगा । यह वार खाली जाने वाला नही है । इस के प्रभाव से राम का दिमाग वदल गया । उन्होने सीता से दो वात करना भी आवश्यक न समझा और उस चित्र को ही पुष्ट प्रमाण समझ कर सोचा—जिस सीता को प्राप्त करने के लिए रावण से युद्ध किया, खून की नदियाँ वहाई, हजारो नौनिहाल माँ के पूत और अवलाओ के प्राणाधार मौत के घाट उतर गये, आज वही सीता मेरे लिए अभिशाप वन गई ।

सज्जनो ! वास्तव मे तो सीता जैसी थी वैसी ही थी, सिर्फ उसके जो पूर्वकृत पाप अन्दर छिपे थे, वे प्रकट हुए, उनकी मूर्त्ति वाहर दिखाई देने लगी । अत जिस सीता पर राम का असाधारण अनुराग था, जो साक्षात् देवी प्रतीत हो रही थी, वही आज ज़हरीली नागिन नजर आने लगी । उन्होने अपने सारथि को वुलाकर आदेश दे दिया—सीता को पीहर ले जाने के वहाने जगल मे छोड आओ ।

सारथि सीता माता के पास गया और वहाना करके उन्हे रथ मे विठला कर जगल की ओर चल पडा । वियावान जगल

आया तो उसने रथ रोक दिया और नीचे उतर कर कहा—माता जी अन्नदाता की आप के लिए यही उतर जाने की आज्ञा है।

सीता ने यह सुना तो वज्रहत-सी हो गई। थोडी देर मे अपने को सँभाल कर कहा—भाई, मुझे इस भयानक जगल मे लाकर छोड रहे हो, पर यहाँ तो शेर गर्जना कर रहे हैं और जगली जानवरो का भी पूरा-पूरा खतरा है।

सारथि की आँखो मे आँसू आ गये। उसने अवरुद्ध कण्ठ से कहा—माता जी, यह पापी पेट ही आज यह दर्दनाक दिन मुझे दिखा रहा है। मै राजाज्ञा से बँधा हुआ हूँ, क्या कर सकता हूँ ?

सीता बोली—तुम दुखी न होओ भाई, यह सब कर्मों की लीला है, मेरे बाँधे अशुभ कर्म मुझ को ही भोगने होगे। दुख यही है कि पहले तनिक-सा सकेत मिल गया होता तो उनसे दो बाते कर लेती और पूछ लेती कि मेरा क्या गुनाह है कि यह भयकर यातनाएँ सहन करने के लिए मजबूर किया जा रहा है ? किन्तु 'बीती ताहि बिसारिये, आगे की सुधि लेय'। अब तुम खुशी से लौट सकते हो। तुम महाराज के चरणो मे मेरी इतनी-सी प्रार्थना निवेदन कर देना कि 'प्राणनाथ, आप को इस अर्धांगिनी पर सर्वाधिकार प्राप्त है। इसे महल मे रक्खो या जगल मे, आप की आज्ञा शिरोधार्य है। किन्तु जैसे लोगो के कहने से परीक्षा किये बिना मुझे बिना ही अपराध त्याग दिया, उसी प्रकार लोगो के कहने सुनने से कही धर्म का परित्याग मत कर देना, इतनी बात मेरी जरूर ध्यान मे रखना

सारथि इन मार्मिक शब्दो को सुन कर और हृदयविदारक दृश्य को देख कर फूट-फूट कर रोने लगा और रोता हुआ, सीता

माता से अलविदा लेता हुआ रवाना हुआ। कवि ने उस रुदणा दृश्य का चित्रण करते हुए कहा है कि वह दृश्य इतना करुणाजनक था कि देख कर जगल के पशु-पक्षी भी रुदन करने लगे।

सीता माता अव जगल की रानी वन गई और अपने कर्मो का फल भोगने लगी। जगल के फल-फूल खाकर और झरने का पानी पीकर जीवन यापन करने लगी। जगल के पशु-पक्षी ही उनके मन वहलाने वाले साथी वन गये।

उधर सारथि ने रोते हुए अयोध्या के राजमहल मे प्रवेश किया तो राम ने पूछा—महारानी को वन मे छोड आया ? सारथि वोला—हाँ स्वामिन्, मेरे लिए और गति ही क्या थी ?

राम की भी आँखो मे आँसू आ गये। रुद्ध कठ से उन्होने पूछा—सीता ने आते समय कुछ कहा था ?

सारथि—महाराज, माता ने कहने को तो वहुत कुछ कहा, थोडे-से शब्दो मे सभी कुछ कह दिया। गागर मे सागर भर दिया। उन्होंने कहा—पहले पता चल जाता तो प्राणेश्वर से दो वाते कर लेती'। उन्होने एक वाक्य और कहा—'जैसे आपने मुझसे वात किये विना, परीक्षा किये विना मुझे घर से निकाल दिया, वैसे ही लोगो के कहने से धर्म को मत त्याग देना।'

इन मर्मवेधी वचनो ने राम के हृदय मे उथलपुथल मचा दी। ओफ्, सीता इतनी विदुषी है। उसने मेरी मूर्खता और अनीति की भर्त्सना नहीं की, निन्दा नही की, किन्तु मुझे धर्म पर स्थिर रहने का सदेश भेजा है। कितनी पतिव्रता सती-साध्वी है वह जो जगल मे छुडवा देने के दु ख पर अफसोस नही करती है, परन्तु मेरे धर्म को त्याग देने पर उसे अफसोस होगा। इस घोर सकट की अवस्था मे

भी उसने मुझे महान् धर्मशिक्षा दी है। हाय, मैं ने सीता के साथ भयानक अन्याय कर डाला।

सीता के वियोग मे राम अशान्तचित्त हो कर दिन काटने लगे।

तो मैं कह रहा था कि सुख और दुःख के भी दिन आते है। दोनो के समय निकल जाते है। मगर समय को निकालने मे अन्तर होता है। एक समभाव के साथ, धैर्य रख कर, अपने ही कृत कर्मो का फल समझ कर दुःख को सहन करता है और दूसरा अधीर होकर हाय-हाय करता हुआ उसी दुःख को भोगता है। यह दो विभिन्न भावनाएँ दोनो के भविष्य मे महान् अन्तर डाल देती है। यही नही, दोनो के वर्त्तमान मे भी वृहत् अन्तर पड़ जाता है।

एक वह सीता थी जिसने इस प्रकार की सकटकालीन स्थिति उपस्थित होने पर भी अपने धैर्य और धर्म का परित्याग नही किया और यही समझ कर दुःख की वेला को पूर्ण किया कि मै ने पूर्वजन्म मे अवश्य ही खोटे कर्म किये है जो इस समय उदय मे आ रहे है। मैंने जैसे हँस-हँस कर उन्हे बाँधा है, वैसे ही हँस-हँस कर भोगना चाहिए। मेरा आयुष्य प्रवल होगा तो जगल भी मेरे लिये मगल बन जाएगा।

कुछ भी हो, सीता ने कष्ट सहन किया। समय पूर्ण होने पर उनकी अग्निपरीक्षा हुई। परीक्षा मे उत्तीर्णता प्राप्त हुई और कर्मो का जोर कम हो जाने पर वह जगत् मे सती सीता के रूप मे विख्यात हुई। आज भी कोटि-कोटि मस्तक श्रद्धा के साथ उनके नाम पर झुक जाते हैं।

किन्तु यह सब कहने का आशय यह है कि हम सोचे कि सीता

जैसी पतिव्रता सती को वार-वार इतने कष्टो की परीक्षा मे से क्यो गुजरना पडा ? इस कारण कि उसने पहले एक निर्दोष महात्मा पर झूठा कलक लगाया था। न वह महात्मा पर झूठा दोपारोपण करती और न इन अग्निपरीक्षाओ मे से गुजरना पडता। इसीलिए सहसा-भ्याख्यान अर्थात् विना सोचे-समझे ऐसी कोई वात कह देना, जिसका पता ही न हो, सत्यव्रत का दोप माना गया है।

रहस्याभ्याख्यान भी सत्यव्रत का अतिचार है। मनुष्य से भूल हो जाती है, क्योकि भूल होना मानवस्वभाव है। छद्मस्थावस्था मे कोई भूल मे वच नही सकता। अत एव जव किसी से भूल हो और आपको पता चले तो प्रेमपूर्वक उससे कहना चाहिए—आप हमारे है और हम आपके है। आपको ख्याल रखना चाहिए और आगे ऐसी भूल नही करनी चाहिए। इस प्रकार सद्भावनापूर्ण चेतावनी से यदि वह मनुष्य हे तो अवश्य सँभल जायगा और आपका कृतज्ञ होगा। हाँ निरा पशु होगा तो उसे ठुकरा देगा और आपका सामना करेगा।

कभी आपको हमारी भूल दिखाई दे तो आप हमे भी शिक्षा दे सकते है, क्योकि साधु और श्रावक का परस्पर धर्म के नाते घनिष्ठ सम्वन्ध है। हम आपकी आत्मा के उत्थान का मार्ग प्रदर्शित करते है और आप हमारे सयमनिर्वाह मे हर तरह सहायक वनते है। अत आपको हमारी भूल को सुधारने का पूरा-पूरा अधिकार है। मगर यह सव होना चाहिए विवेक के साथ। अविवेक हितकारी वचन को भी जहर वना देता है।

तो आपको उचित है किसी की कोई गुप्त वात हो और उसका सिर्फ उसी से सम्वन्ध हो और दूसरे के कहन से उसकी

इज्जत पर प्रभाव पडता हो, फिर भी उसे सब पर प्रकट कर देना रहस्याभ्याख्यान कहलाता है। इस प्रकार का रहस्योद्घाटन श्रावक के लिए वर्जनीय है। किसी को निर्दोष जानते हुए भी छिपे तौर पर कलक लगा देना अतीव निन्दनीय है।

तो जिस श्रावक ने स्थूल असत्य का त्याग किया है उसे खास तौर से इन पापो से बचते रहना चाहिए। झूठा लेख, दस्तावेज़ वही-खाता आदि लिखना भी इस व्रत का अतिचार है। इन कार्यों से सत्यव्रत का भग होता है।

यदि तुम श्रावक के बारह व्रतो को अगीकार कर लो तो अच्छा ही है। किन्तु इतना न कर सको और एक व्रत को भी जीवन मे पूरी तरह उतार लो, शुद्ध रूप से उसका पालन करो तो भी तुम्हारी आत्मा का कल्याण होगा।

एक व्रत ने भी बड़े-बड़े पापियो का कल्याण कर दिया है। कभी-कभी बारह व्रतो के धारक धरे रहते है और एक व्रत कमाल कर दिखलाता है। इसका कारण यही है कि बारह-व्रतधारी ने अपने व्रतो को जीवन मे पूरी तरह नही उतारा ऐसी स्थिति मे एक व्रत को भी धारण करके उसका शुद्ध रीति से पालन करने वाले का पलडा ऊँचा रहता है।

सज्जनो! दर्शनाचार यही सिखलाता है कि तुम्हारे पास जो भी विशिष्ट शक्ति है, उसे शासन की प्रभावना मे लगाओ। धर्म की उन्नति के उपाय करो। जो धर्म की उन्नति करता है, धर्म का प्रचार करता है और आगे से आगे प्रसार करता है, उससे बढ कर कोई भाग्यवान् नही। इसके विरुद्ध, जो धर्म की हानि करता है, धर्म को क्षति पहुँचाता है और अपने आचार या वचन से धर्म को

वदनाम करता है, उसके समान कोई नीच नही है । ऐसे लोगो के दुष्कृत्यो को देख कर लोगो की धर्म-श्रद्धा शिथिल होने लगती है ।

जो गरूर मे आकर आदमी को आदमी नही समझता और धर्म की परवाह नही करता, उसे नीचे गिरते देर नही लगती ।

सज्जनो, एक करोड़पति सेठ छापा-तिलक लगाये अकड के साथ अपनी दुकान पर वैठा था। उसके मुनीम गुमाश्ते काम कर रहे थे। सेठ धन के मद मे छका था । इतने मे एक फक्कँड महात्मा उधर जा पहुँचा। महात्मा ने सेठ को वडा ईश्वरभक्त समझ कर कहा—सेठ जी, राम राम ।

महात्मा ने सोचा - मैं 'राम राम' कहूँगा तो इसके मुँह से भी राम-नाम निकलेगा, परन्तु सेठ की जवान न खुली। उसने महात्मा के अभिवादन का उत्तर न दिया ।

विरले ही लक्ष्मीपुत्र ऐसे होते है जो लक्ष्मी के नशे मे भी अपने आप को सँभाले रख सकते है। अधिकाश तो वुद्धि और विवेक को तिलाजलि ही दे वैठते है।

महात्मा ने सेठ के व्यवहार को देख कर समझ लिया कि यह वडा घमडी है। इसने जिसके नाम का छापा-तिलक लगा रक्खा है और जिसकी वदौलत इस रुतवे पर पहुँचा है, आज अभिमान मे वेभान होकर उसी राम का नाम नही ले सकता । नमस्कार आदि शिष्टाचार तो दूर, राम का नाम लेने मे भी इसकी ज़वान वन्द हो रही है।

वावा जी थे वडे तुर्रफुर्र। उन्होने सोचा—इसका अभिमान का नशा उतार देना चाहिए। तुरन्त उन्हे युक्ति भी सूझ गई। वावा जी को तपस्या के प्रभाव से कुछ ऋद्धि प्राप्त थी। उससे उन्होने सेठ का

रूप धारण कर लिया और उसी प्रकार की पोशाक भी बना ली। फिर वे सेठ की हवेली पर जा पहुँचे।

सेठ जी को देख कर लडको ने कहा—आज आप जल्दी ही भोजन के लिए आ गए ?

सेठ रूपधारी बाबा बोले—हाँ बेटा, बात यह हुई कि आज ठीक मेरी ही जैसी शक्ल-सूरत और परिधान वाला एक नकली सेठ दुकान पर आया। मुझे भय हुआ कि कही यह हवेली न पहुँच जाय इसी से मैं जल्दी आ गया। तुम लोग सावधान रहना, उसका विश्वास न कर लेना। घर मे पैर न रखने देना। जबर्दस्ती करे तो चमडी उधेड देना, पर पाँव भीतर न रखने देना। उस बहुरूपिया से सँभल कर रहना। वह बड़ा मक्कार और शैतान है। उसने ऐसी नकल बनाई है कि एक बार तो तुम लोग भी चक्कर मे पड जाओगे और समझोगे कि यह हमारे पिता जी ही है।

लडके बोले—हम हर्गिज उसके बहकावे मे नही आएँगे। इतने बुद्धू नही है कि अपने पिता को ही न पहचान सके। उसे आने तो दीजिए, डडो से पूजा करेंगे।

नकली सेठ भोजन करके ऊपर के कमरे मे चला गया। इतने मे असली सेठ दुकान से आया तो पहले से ही तैयार लडके लाठियाँ लेकर दरवाजे पर आ धमके। बोले—खबरदार जो अन्दर पैर रक्खा, हड्डियाँ चूर चूर कर देंगे। भाग जा यहाँ से।

सेठ के आश्चर्य का पार न रहा। उसने कहा—बात क्या है ? सब का दिमाग फिर गया है क्या ?

लडके— दिमाग हमारा नही तेरा फिरा है जो आँखों मे धूल झौंकना चाहता है। कपट करके दूसरो के घर मे प्रवेश करना इतना आसान नही।

सेठ– बच्चो मै दुकान से आ रहा हूँ। तुम मुझे भूल कैसे गये ? मैं तुम्हारा पिता हूँ। भोजन करने आया हूँ।

लडके– भोजन करना हो तो सारा गाँव पडा है। झूठमूठ ही हमारा पिता वन कर हमे ठगना चाहता है। हट जा दूर, अन्यथा क्रियाकर्म हो जाएगा।

सेठ– घर मेरा है। तुम अन्दर आने से रोक नही सकते।

लडके– जा जा, वडा आया घर वाला। तेरे जैसे ३५६ आते है। सेठ ने भीतर जाने का प्रयास किया तो लडको ने एक दो लाठियाँ जमा दी। शोरगुल सुन कर मुहल्ले वाले जमा हो गये। सेठ ने उनसे कहा—तुम लोग मुझे अच्छी तरह पहचानते हो। मगर न जाने कैसे आज ये लडके पागल हो गये है। भोजन करने के लिए भी भीतर नही जाने देते।

लोगो ने सेठ का समर्थन करते हुए कहा–अरे लडको ! पिता को भी अन्दर नही घुसने देते ? यह तो वहुत वडी उद्दण्डता है।

लडके– यह हमारा पिता नही है, वहुरूपिया है, ठग है। पिता जी को हूवहू नकल करके आया है। महाधूर्त है। पिता जी तो कभी के आ चुके है। उन्होने चेताया न होता तो हमे यह लूट कर ले जाता।

सेठ समझा कि कोई षड्यन्त्र रचा गया है। इसी समय नकली सेठ भी ऊपर से उतर कर आ गया। उसने कहा–भाइयो, यह नकली सेठ घर पर कब्जा जमाने आया है। क्या आप मुझे पहचानते नही ?

'सभी सहायक सवल के' इस कहावत को चरितार्थ करते हुए सव ने नकलो सेठ का पक्ष ले लिया और असली सेठ को नकली समझ कर घर से निकाल दिया।

निराश होकर असली सेठ राज दरबार मे पहुँचा। राजा से कहा—हजूर, एक दुष्ट हूबहू मेरी शकल बना कर आया है। उसने लडको को भी बहका लिया हे और मुझे घर मे निकाल दिया है। कृपया इसका शीघ्र निर्णय कीजिए, अन्यथा घोर अनर्थ हो जाने की सभावना है। उसे इसी समय दरबार मे बुला लीजिए।

राजा ने आदमी भेज कर उसे बुलाया। दोनों की एक सी सूरत देख कर राजा को भी बडा विस्मय हुआ। वह समझ न सका कि किसे असली और किसे नकली करार दिया जाय?

राजा ने अर्थसूचक दृष्टि से मन्त्री की ओर दृष्टि घुमाई। मन्त्री अत्यन्त बुद्धिमान् था, कुशाग्रबुद्धि था। उसने कहा—महाराज, इन दोनो से पूछा जाय कि तुम्हारे लडके की शादी हुई थी तो उस मे हुए खर्च की विगत अभी मौखिक बताओ? जो हिसाब सही बताएगा, उसी को असली सेठ माना जायगा।

सज्जनो, यदि वजीर योग्य और बुद्धिमान् होता है तो राजा को बडी-बड़ी समस्याओ मे से सहज ही पार कर देता है और दिग्-दिगन्त मे उस का नाम रोशन कर देता है। कदाचित् नालायक, दुर्व्यसनी और मूर्ख हुआ तो राजा को भी बदनाम करके छोडता है।

जब वजीर ने यह प्रश्न उपस्थित किया तो असली सेठ के होश-हवास गायब हो गये। क्या इतने वर्षो का विवाह का खर्च किसी को जबानी याद रह सकता है? असली सेठ हिसाब न बतला सका। मगर नकली सेठ ने आना-पाई सहित पूरा-पूरा हिसाब विद्या के बल से बतला दिया। वजीर की युक्ति फेल हो गई और असली सेठ नकली घोषित कर दिया गया। नकली सेठ मन ही मन मुस्कराता हुआ घर आ गया।

असली सेठ पर मानो वज्रपात हो गया। वह रोता-रोता कर्मों को कोसता हुआ, भूखा-प्यासा, गिरता-पडता, शहर के वाहर एक मन्दिर मे जाकर वैठ गया। सोचने लगा—वडी विचित्र वात है कि मैं असली से नकली वन गया। स्त्री-वच्चो से और धन-दौलत सभी से वचित हो गया। हाय री विडम्वना!

सेठ इस प्रकार चिन्ता कर ही रहा था कि नकली सेठ वावा जी की शक्ल वना कर—हाथ मे माला लेकर राम-राम करता हुआ वही आ गया। उसने कहा—सेठ जी! राम राम।

सेठ ने राम-राम शब्द सुन कर दुःखभरी आवाज मे कहा—राम-राम, वावा जी महाराज, राम-राम। आइए, विराजिए।

यह सुन कर वावा जी वोले—आज तो सेठ जी, तुमने राम-राम कर लिया। कल तो अकड कर अमचूर हो रहे थे। राम का नाम लेना भी कठिन हो रहा था।

सेठ ने सोचा—यह सव कैसे हो गया? प्रकट मे कहा—महाराज, भूल हो गई।

तव मुस्करा कर वावा जी वोले—भाई सेठ, यह सव मेरा ही करामात है। कल तक तू धन के अभिमान मे पागल हो रहा था। मैं ने राम-राम की तो तू ने उत्तर तक न दिया और गोवर के लौदे की तरह चुपचाप वैठा रहा। तू ने धन को परमेश्वर से भी वडा समझा। अव समझ मे आ गया होगा कि धन कितना मददगार हो सकता है।

सेठ वावा जी के चरणो मे गिर पडा। उसने कहा—क्षमा कीजिए महाराज, मैं भूल मे था। अधकार मे भटक रहा था। आप ने प्रकाश दे कर मेरा अनन्त उपकार किया है। अव मैं प्रतिदिन

राम का नाम लूंगा। बाबा-जोगियो की सेवा करूँगा। भविष्य मे कभी ऐसी भूल न होगी।

बाबा जी बोले—तेरी करोडो की सम्पत्ति मेरे सामने धूल के बराबर है। मुझे उसका क्या करना है! जा, अपने घर चला जा।

अभिप्राय यह है कि धन के नशे मे उन्मत्त मनुष्य दूसरो को कीड़ा-मकोडा समझता है। किन्तु अरे धनी! तुझ से भी बहुत बडे-बडे चक्रवर्ती जैसे समृद्धिशाली भी इस नश्वर ससार मे कूच कर गये। उनका गर्व भी खर्व हो गया। अत एव धन के नशे मे मनुष्यता का दिवाला मत निकाल। जीवन बिगाडने के तो अनेक जन्म है, पर सुधारने के लिए यही एक मनुष्य जन्म है। इसे पाकर विचार करो, धर्म का पथ ग्रहण करो और धर्म की प्रभावना करो। जो पापमय जीवन से हट कर धर्म के पावन पथ पर अग्रसर होगा, वह ससार-सागर से पार हो जायगा।

ब्यावर]
७-१०-५१]

———

वादी-प्रभावना

[सत्य का समर्थन]

उपस्थित महानुभावो,

व्याख्यान का विषय दर्शनाचार चल रहा है। आठवे दर्शनाचार प्रभावना के भी आठ भेद बतलाये गये है। उन मे तीसरा भेद वादी प्रभावना है। वादी प्रभावना का अर्थ है—धर्म को अधिक से अधिक प्रकाशित करने, दिपाने के लिए, सम्यक्त्व का मडन और मिथ्यात्व का खडन करने के लिए वाद करके जिन-शासन का उद्योत करना।

जहाँ मिथ्यात्व का अधिक जोर हो, दभी, ढोगी और मिथ्यात्वी लोग बढ रहे हो और वे अपने कुतर्कों से जिन वचनो पर चलने वाले, सत्य मार्ग का अवलम्बन करने वाले लोगो को पतित करने का प्रयत्न कर रहे हो, धर्म से विमुख करना चाहते हो, जहाँ पाखड का प्रचुर प्रचार बढता जा रहा हो, धर्मी पुरुषो का उन पाखडियो के बीच रहना कठिन हो रहा हो, यहाँ तक कि वे साधुजनो की निन्दा करते हो, सामान्य साधुजनो का वहाँ रहना और विचरना भी मुश्किल हो गया हो, तब सच्चे धर्मनिष्ठ का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह उनका उठ कर मुकाबिला करे। धर्म की हानि और धर्मात्माओ का अपमान देख कर जो पुरुष शक्ति होते हुए चुप नही बैठता, वही सच्चा धर्मात्मा, सच्चा श्रावक और सच्चा भक्त कहलाता है।

सरकार सनिक को खर्च देती है, अतएव सैनिक का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह जिस उद्देश्य से सेना मे भर्ती हुआ है उसे पूरा करे। खाया हुआ नमक अदा करे। उस देश के लोगो की जान-माल की रक्षा करके अपना कर्त्तव्य अदा करे। अपने सुखो को ठुकरा कर विरोधी का सामना करे। यदि वह सैनिक सोचता है कि वे अधिक हैं और मैं अकेला क्या कर सकूंगा, तो वह गलती करता है। कुछ समय पूर्व आपने समाचार पत्रो मे पढा होगा कि भारत के एक-एक सैनिक ने अपनी हिम्मत और चतुराई से दुश्मनो के टोले के टोले साफ कर दिये। उन मे से कई देश-रक्षा के लिए मर मिटे। जो जीवित रहे उन्हे सरकार ने अशोक-चक्र आदि वीर-पदक दिये और जो शहीद हो गये उन के घर वालो को पैंशन आदि वृत्ति दी गई, क्योकि देश की रक्षा के लिए उन्होने अपने आप को बलिवेदी पर होम दिया।

दुनिया के लोगो! जब ५०—६० रुपया मासिक पाने वाला सैनिक भी अवसर आने पर अपने कर्त्तव्य का पालन करने के लिए प्राणो का उत्सर्ग कर देता है और मुँह से उफ् भी नही करता तो हम जिस वीर प्रभु के अनुयायी है, सैनिक है और जिन का हमारे ऊपर महान् ऋण है, उनके प्रति हमारा क्या कर्त्तव्य होना चाहिए ?

भगवान् का उपकार किसी विशेष जाति, वर्ग या व्यक्ति के लिए नही था। उन्होने जगत् के प्रत्येक प्राणी के कल्याण के लिए उपदेश दिया। भगवान् सम्पूर्ण विश्व के सरक्षक थे, पिता थे, अतएव सब पर उनका समान ऋण है।

तो जिस प्रकार सैनिक अपने देश के लिए प्राण भी निछावर कर देता है, उसी प्रकार धार्मिक क्षेत्र मे जो महापुरुषो के अनुयायी श्रद्धालु सैनिक होते है, जो उन के मार्ग पर चलते है, जिन्हो ने

उन से अध्यात्मज्ञान का आलोक प्राप्त किया है, खुराक ली है, वे भी उन के नमक को कलकित नही करते। जब पाखड का दौर चल रहा होता है, मिथ्यात्व के पोपक विरोधी तत्त्व फैलते जाते है, उस समय वे सैनिक अहिंसा और सत्य के शस्त्र धारण करके पाखडियो-विरोधियो को चुनौती देते है और मैदान मे मुकाबिले पर आ जाते है। वे उठ कर मुकाबिला करते हुए, मिथ्यात्व एव पाखड को कुचलते हुए, सत्य-धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राण भी निछावर कर देते है। वे सैनिक पाखडी को आह्वान करते है और कहते है—अगर तुम्हारे अन्दर सचाई है तो सामने आओ और या तो समझ लो या समझा दो।

मगर आज के नामधारी, हरामखोर, महावीर के नाम को लजाने वाले नकली सैनिको मे इतनी शक्ति नही रही कि वे मिथ्यात्वियो का मुकाबिला कर सके। यही कारण है कि वे पाखडी शुद्ध सनातन जैन पर हर तरह का लाछन लगाते जा रहे है। सैनिको मे इतनी भी ताकत नही कि वे उन के मुँह मे थोडी-सी शक्कर तो डाल दे ताकि उन का मुँह मीठा हो जाय!

यहाँ के एक भाई ने मुझे कहा—'किसी ने मुझ से पूछा कि आज कल महाराज क्या सुनाते है? मैने कहा—समकित का विपय चल रहा है। यह सुन कर उस ढीठ ने कहा—महाराज के पास भी समकित है या नही?'

सज्जनो! वह इतनी वात कह जाय और उसके मुँह मे युक्तियुक्त उत्तर की शक्कर न डाली जाय तो क्या वात बनी? अगर सुनने वाला सच्चा सैनिक था तो उसके मुँह मे थोडी-सी शक्कर तो डाल देता। इस पूछने वाले को इतना भी पता नही कि

वाजार मे रुपयो का भुगतान कौन किया करता है ? जिसकी तिजोरी रुपयो से भरी होती है, वही भुगतान देता है। कभी दिवालिया भी भुगतान कर सकता है ? ऐसा प्रश्न करने वाले का जन्म न मालूम किस अधमुहूर्त्त मे हुआ होगा । अन्यथा उसे ऐसा प्रश्न करने का साहस ही न हुआ होता। जो साहूकार रुपयो का भुगतान दे रहा है उसके विषय मे यह पूछना कि इसके पास रुपया है या नही, मूर्खता है या अक्लमन्दी ? अरे, भुगताने वाले के पास जिस सिक्के के रुपये चाहिएँ, मौजूद है और तभी तो वह भुगतान कर रहा है।

किन्तु जिनके रवड की टॉगे चढी हो, वे आगे कैसे चल सकते है ? चलने के लिये स्वय की टागो मे शक्ति होनी चाहिये। तुम इतना सुनते हो फिर भी उत्तर नही दे सकते हो । मुँह तोड जवाव नही दे सकते। उसे वडे शिष्टाचार के साथ ऐसी चोट लगानी चाहिए कि चोट हड्डी मे लगे, डाक्टर भी जिसकी परीक्षा न कर सके कि कहाँ चोट लगी है ? ऐसे प्रसगो पर वडा हाज़िर जवाव होने की आवश्यकता होती है।

तो तीसरी धर्म-प्रभावना का सूत्र है वादीप्रभावना । जहाँ मिथ्यात्व का प्रसार हो रहा हो, वहाँ जाना और मिथ्यात्वी को ललकारना कि आ जाओ मैदान मे और सत्य को समझ लो या समझा दो। अन्यथा यो तो लोग पीछे से परमात्मा को भी कोसते है। इससे क्या होने वाला है ? सच्चाई है तो सामने आओ। साँच को आँच कहाँ ?

तो जिन-वचनो का अनुरागी श्रद्धालु सैनिक पाखडियो के साथ शास्त्रार्थ करे और अपनी वादशक्ति से प्रतिवादियो को पराजित करे तथा धर्म और धर्मी पुरुषो की रक्षा करे ।

आर्य समाज ने पादरियो और काजियो को खुला चैलेज दिया कि हिदूसस्कृति किसी से कम नही है। उन्होने लाखो हिन्दुओ को गोभक्षक होने से वचा लिया । यो लोग कहते है कि आर्य समाजी चचल प्रकृति के होते है, पर आर्य-सस्कृति की रक्षा का प्रश्न उपस्थित होने पर वे भी काम आते है।

तो जो लोग स्वय कुपथगामी होकर दूसरो को भी वरगलाते है, उन्हे वतलाना चाहिए कि तुम गलत राह पर हो, और अपनी राह नही छोडोगे तो न इधर के और न उधर के ही रहोगे । इस प्रकार सत्य का मडन और असत्य खण्डन करना भी धर्म-प्रभावना है।

घर मे ही गरजने वाले, कूदफॉद करने वाले तो वहुत मिल जाएँगे, किन्तु मौके पर मैदान मे आने वाले वहुत कम मिलेगे । पर जो सघ के अधिपति हो, समाज मे अग्रगण्य हो, उनके जीवन मे कुछ उत्क्रान्ति भी होनी चाहिए। अवसर आने पर सघ और धर्म की रक्षा के लिए प्राणो की आहुति भी देनी पडे तो वह भी देनी चाहिए परन्तु कदम पीछे नही हटाना चाहिए। समय पर जनरल ही मैदान से भाग जाय तो वेचारी फौज क्या करेगी ? जो सेनापति समय पर घवरा जाता है, वह सेनापति कहलाने योग्य नही है। हॉ, शास्त्रार्थ के समय एक वात ध्यान मे अवश्य रखनी चाहिए और वह यह कि दूसरो को अपमानित करने की—नीचा दिखलाने की—भावना नही हो। सत्य-युक्तियो के वल पर प्रतिवादी को असत्य मार्ग से हटाने का प्रयत्न करना चाहिए। कई वार मुझे भी सघर्ष मे आने का अवसर आया और अन्तत जिन-मार्ग की जय-विजय ही हुई।

हाँ, तो सच्चा सैनिक वही होता है जो मैदान मे भले ही कट मरे, मगर पैर पीछे न रक्खे। अत एव जहाँ धर्म का लोप होता हो वहाँ विद्वान् और अनुभवी साधु शास्त्रार्थ करे और अपनी कुशलता से दभियो के छक्के छुडा दे। अगर प्रतिवादी झूठा होगा तो शास्त्रार्थ करने की हिम्मत ही नही करेगा। जब चोर चोरी करने जाता है तो घर के मरणासन्न बुड्ढे की खाँसी भी उसे भयभीत कर देती है और उसके पैर पीछे खिसकने लगते है।

दुनिया के लोगो ! जो सत्य का पुजारी है, सत्य के ही मार्ग पर चलने वाला है और सत्य का ही उपासक है, उसे किसी से दबने की आवश्यकता नही है, क्योकि सत्य की सदैव विजय होती है। कदाचित् सत्य पर अटल रहते हुए पराजय का भी सामना करना पड़े तो भी वह पराजय नही है। उसे भी विजय ही समझना चाहिए। अन्याय और असत्य से प्राप्त की गई विजय पराजय से भी बुरी है, क्योकि ऐसे विजयी ने सत्य का परित्याग कर दिया है और वह आत्मभाव से अनात्मभाव मे चला गया है।

अवसर आने पर भी अगर पाखण्डियो का मुकाबिला न किया गया तो वे दभ और मिथ्यात्व को अधिक प्रोत्साहन देगे और पाखड का बोलबाला हो जाएगा। अतन्त धर्म और धर्मी पुरुष खतरे मे पड जाएँगे।

पजाब प्रान्त के स्वामी उदयचद जी गणी अजमेर-साधु-सम्मेलन मे शान्तिरक्षक बनाये गये थे और फिर पुष्कर मे उनका चौमासा हुआ था। वे स्व० पूज्य मोहनलाल जी म० के पौत्रशिष्य थे। बड़े चर्चावादी थे और साहसी थे। उनके मस्तिष्क मे अकाट्य तर्को का उद्भव होता था। आप जानते है कि कानून की सारी बाते

पोइट्स्—तर्क-वितर्क—कितावो मे लिखी नही रहती। वकील मूल वात कानून की किताव मे देखता है, फिर उसके आधार से अपने दिमाग की सूझबूझ से ही काम लेता है। और ऐसा करके विपक्षी वकील की वोलती वन्द करके मुद्दई के पक्ष मे फैसला लिखवा लेता है।

एक वार पजाव मे मुखयत्ती का प्रश्न छिडा। एक जैन सम्प्रदाय कहता था कि मुखयत्ती वॉधने का शास्त्र मे विधान नही है और अपना सिद्धान्त वॉधने का है। शास्त्र मे जगह-जगह 'मुहयत्ति पडिलेहेइ, पडिलेहिना' इस प्रकार का पाठ आया है। शास्त्रानुसार साधु को प्रतिदिन दो वार मुँहयत्ती का प्रतिलेखन करना चाहिए और सर्वप्रथम मुहयत्ती का प्रतिलेखन करना चाहिए, ऐसा विधान है। इस प्रकार स्पष्ट विधान होने पर भी दु साहसी लोग कहते है कि मुहयत्ती का शास्त्र मे विधान ही नही हे।

जव आप शीशे मे मुँह देखेगे तो आप को अपना फोटो जरूर नजर आ जाएगा यदि आप की आँखे ही नही हे तव तो शीशा भी क्या कर सकता है।

तो पाठ दिखलाने पर वे कहने लगे - मुँहयत्ती का तो विधान है, पर डोरे का विधान नही है। मगर इसका अर्थ तो यह हुआ कि घाघरा तो चला है पर नाडा नही चला है। पायजामा जो चला है पर उसे वाँधने का नाडा नही चला है। किन्तु ऐसा कभी संभव है? आप पायजामा सिलवा ले पर नाडा न वनवावे तव तो उसे हाथ मे पकडे-पकड़े ही फिरना पडेगा। और किसी दूसरे काम के लिए हाथ वढा दिया तो आपका नक्शा ही कुछ और हो जायगा। स्त्री-पुरुप आप की मूर्खता पर हँसेगे या शर्मिन्दा हो कर भाग जाएँगे। आप को पागल करार देंगे। साधारण से साधारण मनुष्य भी

समझता है कि नाडे के विना पायजामा नही रह सकता और उसका होना अत्यावश्यक है। मगर हठाग्रही अपनी अनुचित बात पर भी अटल ही रहते हैं।

आखिर जब मुँहपत्ती का विवाद बढ गया और शास्त्रार्थ की नौबत आ गई तो गणी उदयचन्द जी म० ने विपक्षियो को चैलेंज दिया कि आइए मैदान मे और शास्त्रार्थ द्वारा निर्णय कर लीजिए।

भगवान् का वहीखाता खुला पड़ा है। जोड बाकी मे कुछ फर्क है तो देख ले, ताकि शका के लिये कोई गुँजाइश न रहे।

सज्जनो! बेईमान व्यापारी वहीखाते मे भी उलटपुलट कर देता है और इन्कमटैक्स के अफसर की आँखो मे भी धूल झोंक देता है। यह दुनिया बड़ी जबर्दस्त है।

आखिर नाभा (पंजाब) मे शास्त्रार्थ होना तय हो गया। दोनो पक्षो की सेना ने वहाँ छावनी डाल दी। एक तरफ श्रीवल्लभ-विजय जी थे और दूसरी तरफ वादीमानमर्दक श्री उदयचन्द जी म० थे। मध्यस्थ निश्चित हुए नाभानरेश और वहाँ के राजपण्डित। दोनो मे खुली चर्चा हुई। आखिरकार गणी जी ने न केवल जैन-शास्त्रो से अपितु अजैन ग्रन्थों के उद्धरणो से भी सिद्ध कर दिया कि डोरा-सहित मुँहपत्ती बाँधना चाहिए।

तो कहने का अभिप्राय यह है कि वादी यदि तर्कशील हो, औत्पत्तिकी बुद्धि वाला हो, अनुभवी और बहुश्रुत हो तो वह सफलता प्राप्त करता है।

नाभा-शास्त्रार्थ के समय वे आचार्य जी पहले आ जाते थे। जब राजा साहब आते तो उन्हे खड़ा होना पड़ता था। राजा को मान देने के लिए नही, बल्कि इस लालसा से कि राजा साहब हमारे पक्ष

मे फैसला दे दें। उदयचन्द जी ठीक चर्चा प्रारभ होने के समय, सब के वाद मे आते थे तो उन्हे किसी के लिए खडा नही होना पडता था।

एक दिन राजा दो कीमती दुशाले लाया और उन दोनो को देने लगा। आचार्य जी ने तो खुशी-खुशी ग्रहण कर लिया पर गणी जी ने कहा—राजन्! आपकी भावना अच्छी है, दान-वुद्धि अच्छी है, किन्तु हम तो फकीर हैं। हमे यह दुशाला शोभा नही देता।

यह सुन कर राजा के हृदय मे आश्चर्य और श्रद्धा की भावना उत्पन्न हुई, मगर प्रतिवादी का मान तो वही भग हो गया। राजा के मन पर इसका गहरा असर पडा। असर क्यो न पडता, आखिर त्याग का निशाना अचूक होता है।

एक दिन आचार्य जी अन्धेरे मे राजा के पास सिफारिश ले कर पहुँचे कि वे विजेता माने जाएँ। दूसरे दिन दोपहर मे पुन शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। चर्चा के समय अवसर देखकर गणी जी म० ने कहा—राजन् अव हम जा रहे है, क्योकि हमारा समय हो चुका है। सूर्यास्त के पश्चात् हम कही आ-जा नही सकते। आचार्य जी ने भी देखादेखी कहा—राजन्! अव मै भी चलूंगा। राजा ने कहा—क्यो महाराज, आप इतनी जल्दी क्यो कर रहे हैं? यह तो रात को कही आते-जाते नही है, पर आपके लिए तो कोई प्रतिवन्ध नही है। आप तो रात्रि मे सिफारिश ले कर मेरे पास आये ही थे, तो फिर इतनी जल्दी क्या है?

सज्जनो! जव राजा के दिल पर इस प्रकार का प्रभाव पड चुका हो तो शास्त्रार्थ मे प्रतिवादी के विजयी होने की क्या आशा की जा सकती है?

तो ज्ञान के साथ चरित्र का बल भी चाहिए, एक ही बाजू से काम नही चल सकता है। दोनो बाजू सही-सलामत होने चाहिएँ। क्या पता दुश्मन किधर से वार कर दे ? दोनो पक्ष सबल होंगे तो अच्छी तरह मुकाबिला किया जा सकेगा।

साधु भले ही कितना ज्ञानी हो, किन्तु यदि वह भ्रष्टाचारी है तो वाणी से भले दूसरे उसे ज्ञानी समझ लें, पर भ्रष्टाचार के कारण उसे अपमानित होना पडता है। अत एव ज्ञानबल के साथ चरित्रबल भी होना चाहिए।

कहने का भाव यह है कि जब धर्म-संस्कृति की रक्षा करने का प्रश्न सामने आ जाय और जनरल उस समय प्रतिवादी का मुकाबिला न करके यदि मैदान छोड कर भाग जाय तो फिर सेना भी भाग जाती है। यदि जनरल डटा रहता है तो सेना भागने का साहस नही करती। अत एव सत्यवादी को मैदान मे डट जाना चाहिए और विश्वास रखना चाहिए कि सत्य की सदा जय होती है।

किसी मे ज्ञानशक्ति, धनशक्ति, शरीरशक्ति अथवा शासन-शक्ति है, परन्तु अवसर आने पर वह उसका उपयोग नही करता तो उसकी वह शक्ति किस मतलब की है ? किस मर्ज की दवा है ? वह धन किस काम का है जो वक्त पर दीन-दुखियो का दुख मिटाने के काम नही आता ? उस धन से धनी होने की अपेक्षा तो निर्धन होना ही अच्छा है। जिस धन का सदुपयोग नही होता वह मुर्दा धन है। मुर्दा काम मे नही आता, ज़िन्दा काम आता है।

तो मैं कह रहा था कि आत्मा मे उत्क्रान्ति होनी चाहिए। बहुत-से पढे-लिखे होते हैं, विद्वान् भी होते हैं, किन्तु समय पर चर्चा के लिए खडे नही हो सकते। ऐसे विद्वानो को चाहिये कि वे दूसरो

को पढाएँ, विद्वान् वनाएँ, क्योकि शासनसेवा के अनेक रास्ते है। फौज मे सभी योद्धा नही होते। कोई रसोईदार, कोई सेवा करने वाला और कोई लिखा-पढी करने वाले क्लर्क आदि भी होते हैं। योद्धा लडते है और दूसरे उनके सहयोगी वनकर अपना-अपना काम करते है। दूसरे काम करने वाले न हो तो भूखे-प्यासे सैनिक कैसे लड़ सकते है? इस प्रकार सभी प्रकार के कार्यकर्त्ताओ की आवश्यकता होती है।

धार्मिक क्षेत्र मे भी कुशाग्रबुद्धि तार्किक शास्त्रार्थ मे उतरते है, मगर दूसरे उनके लिए तरह-तरह से साधन जुटाते है, ताकि वे अच्छी तरह शास्त्रार्थ मे सफल हो सके। क्योकि शास्त्रार्थ करने वाले मे योग्यता होनी चाहिए। शत्रु वडी वुरी तरह पछाडता है। योग्यता न हो तो लेने के देने पड़ जाते है। हाँ, लडना चाहिए सचाई के साथ। झूठे तर्को से जीत जाना भी हार है। सत्य का आश्रय लेकर प्राप्त की गई विजय ही सच्ची विजय है।

एक वार गुप्ताचार्य के शिष्य रोहगुप्त ने किसी प्रतिवादी के साथ शास्त्रार्थ किया। प्रतिवादी वडा चालाक था। उसने रोहगुप्त की मान्यता को ही अपनी मान्यता वना कर पूर्व-पक्ष प्रस्तुत किया। अव रोहगुप्त उसका खडन करे तो अपनी ही मान्यता का खडन हो जाय। खडन न करे तो प्रतिवादी अपनी विजय का ढोल पीटने लगे। प्रतिवादी ने कहा था—दुनिया मे दो ही राशियाँ है—जीव-राशि और अजीवराशि। यही रोहगुप्त भी मानते थे परन्तु उसे पराजित करने के लिए उन्होने कह दिया—तीसरी नोजीवराशि और है। रोहगुप्त ने अपने तर्कवल से और विद्यावल से प्रतिवादी को पराजित कर दिया, परन्तु इस प्रकार असत्य का आश्रय लेकर विजय प्राप्त करना उचित नही है।

विजयी हो कर रोहगुप्त अपने गुरु के पास पहुँचा और बोला गुरुजी, आज मैं विजयी होकर आया हूँ।

गुरु– हे शिष्य! तूने प्रतिवादी को कैसे जीता?

शिष्य– वह बड़ा धूर्त था। उसने मेरे ही पक्ष को अपना पक्ष बना लिया ताकि मैं खडन न कर सकूं। परन्तु मैं उसकी चालाकी समझ गया। मैंने दो राशियों के बदले तीन राशियां सिद्ध कर दी। उसे चुप कर दिया।

गुरु— हे शिष्य! तूने तो गजब कर दिया। सिद्धान्त-विरुद्ध प्ररूपणा कर दी।

शिष्य— कुछ भी हो, मैंने प्रतिवादी को पराजित कर दिया।

गुरु— तेरी यह जीत हार है। तू राजसभा मे जाकर घोषणा कर दे कि प्रतिवादी को पराजित करने के लिए ही मैंने तीन राशियो की प्ररूपणा की थी। वस्तुत राशियाँ दो ही है।

शिष्य— महाराज, अभी-अभी जीत कर आया हूँ और मेरा 'जय जयकार' हो रहा है। इसी स्थिति मे कैसे कह दूं कि मैंने मिथ्या प्ररूपणा की थी।

गुरु के बहुत समझाने पर भी वह न माना। बल्कि तीन राशियो को उसने अपनी मान्यता बना लिया। विवश हो कर गुरु ने उसे आज्ञाबाह्य कर दिया। पृथक् होकर उसने त्रैराशिक मत खडा कर लिया, मगर मिथ्या के सहारे वह कब तक खड़ा रह सकता था? बालू के सहारे खडा किया गया भवन कितनी देर ठहर सकता है?

ससार मे अगणित मतमतान्तर खड़े हुए और होते है परन्तु

जिनकी वुनियाद झूठ पर होती है, वे नष्ट हो जाते है । सत्य के समर्थ आधार पर खड़ा हुआ सम्प्रदाय ही पनपता और स्थायी रूप पाता है ।

ढालसागर मे एक वर्णन आया है । वसुदेव जी श्री कृष्ण के पिता थे । वे वड़े रूपवान् थे और उनका कण्ठ भी वहुत सुरीला था । उनकी मधुर तान सुन कर राहगीर भी मुग्ध और स्तब्ध रह जाते थे । नरमाई, रूप और कण्ठ की मधुरता यह तीनो वशीकरण मत्र है । रूप मे भी असाधारण आकर्षण होता है । यहाँ तक कि आकर्षक रूप को देख कर काम करने वाले काम करना भूल जाते है और रूप की मदिरा का आस्वादन करते-करते वेभान हो जाते है । आप को पता होगा कि वलभद्र मुनि मे उत्कट रूप-सौन्दर्य था । एक वार वे तुगिया नगरी मे आहार-पानी ग्रहण करके वापिस जगल मे आ रहे थे । उनके शरीर की अनुपम दीप्त कान्ति थी, व्रह्मचर्य के प्रताप से एव तप सयम की अराधना के कारण उनके अग-अग मे से रूप का झरना फूटा पड रहा था । मानो विधाता ने विश्व का समस्त रूप उन्ही को न दे दिया हो ।

तो वलभद्र मुनि नीची निगाह किये चले जा रहे थे और स्त्री, पुरुप, वच्चे उनकी सुन्दराकृति को टकटकी लगा कर निहार रहे थे । मुनिराज पनघट के निकट से गुजरे तो स्त्रियाँ, जो कुएँ मे से पानी खीच रही थी, उनकी ओर देखने लगी और देख कर ऐसी मोहित हो गई कि उन्हे भान ही न रहा । एक स्त्री ने उस वेभान अवस्था मे रस्सी का फदा घडे के गले मे डालने के वदले पास मे वैठे हुए अपने वच्चे के गले मे डाल दिया । उस के नेत्र और मन मुनि के रूपलावण्य के पान मे मतवाले हो रहे थे ।

स्त्री उस वालक को कुएँ मे डालने ही वाली थी कि अकस्मात् मुनिराज की दृष्टि उधर चली गई और उन्होने यह अनर्थ होते देख लिया। वह सोचने लगे– महान् अनर्थ हो गया। गजब हो गया! मेरी दृष्टि इस ओर न चली गई होती तो आज एक वालक की हत्या हो जाती। यद्यपि साधु को स्त्रियो की तरफ दृष्टि नही डालनी चाहिए किन्तु सहसा उनकी दृष्टि उधर चली गई और पचेन्द्रिय की घात होते-होते रह गई। परन्तु उसी दिन मे उन्होने प्रतिज्ञा कर ली कि मेरे शरीर के रूप के कारण इतना अनर्थ हो सकता है तो आज से मुझे वस्ती मे ही नही आना है। जगल मे ही आहार मिलेगा तो ले लूंगा, अन्यथा नही। तत्पश्चात् वे जगल मे ही रहने लगे और तपस्या करके आत्मदमन करने लगे।

सज्जनो! रूप तो जहाँ जाता है, अपना जादू दिखलाता है। जगल मे भी हिरण-खरगोश आदि उनके लावण्य को देख कर मुग्ध हो गये और टोलियो के रूप मे उनके पास पडे रहने लगे।

मुनिराज की अन्तरात्मा मे उत्कट वैराग्य था, तपस्या थी, सन्तोष था और अनासक्ति थी, इसी कारण वे यह प्रतिज्ञा कर सके कि जगल मे ही आहार मिल जाये तो ग्रहण करना और शहर मे भिक्षा के लिए नही जाना। मगर यह प्रतिज्ञा तो एक प्रकार से मृत्यु को आमत्रण देना था, क्योकि जगल मे आहार कहाँ से मिलने वाला था।

संयोग की वात है कि एक वढई उसी जगल मे वृक्ष काटने को गया। दोपहर हुई तो उसकी पत्नी भोजन लेकर वहाँ पहुँची। एक हिरण ने उसे देख लिया कि यह भोजन ले कर आई है और वढई अव भोजन करेगा। हिरण ने सोचा– महात्मा यहाँ वैठे हैं और

खाते-पीते नही है। ऐसा सोचते-सोचते उसे जाति-स्मरण हो गया। वह पूर्वजन्म मे साधु था परन्तु तपस्या से भ्रष्ट हो जाने के कारण पशुयोनि मे उत्पन्न हुआ था।

जाति-स्मरण होते ही उसने महात्मा को मुँह लगा कर सकेत किया अपने साथ चलने के लिए। क्योकि कई पशु-पक्षियो मे भी निरक्षर भट्टाचार्य मनुष्यो की अपेक्षा ज्यादा अक्ल होती है। पिछली लडाई के समय कबूतरो ने डाकियो का काम किया था। अभी-अभी चार दिन पहले समाचार सुना था कि कुत्ते ने चोर को पकडा दिया। आखिर पशुओ मे भी उपयोग है, मन है, बुद्धि है और दिमाग है।

हाँ, तो वलभद्र मुनि ने देखा कि हिरण मुझे साथ चलने का सकेत करता है तो कही न कही आहार का योग होगा। यह सोच वे उसके साथ हो लिए। हिरण उन्हे वढई के पास ले गया। वह दाता भी वडा पुण्यवान् था। उसने मुनि का स्वागत किया और प्रसन्नता के साथ सोचा कि आज तो जगल मे मगल हो गया। घर वैठे गगा आ गई। उसके शरीर के साढे तीन करोड रोम पुलकित हो उठे। भक्ति-पूर्वक उसने आहार ग्रहण करने की प्रार्थना की। वढई आहार दे रहा है, मुनि ले रहे है और हिरण खड़ा खडा दान का अनुमोदन कर रहा है —

मैं भी देता हाथ से जो होता माणस रूप जी।

अर्थात्— यदि मै मनुष्य होता तो मै भी मुनिराज को आहार पानी वहराता। धन्य है यह खाती! धन्य है यह तपोनिधि महात्मा!

सज्जनो शास्त्र का पाठ है —

दुल्लहाओ मुहादाई, मुहाजीवी वि दुल्लहा।
मुहादाई मुहाजीवी, दो वि गच्छन्ति सोग्गइ॥

दगवैकालिक अ० ५, उ० २, गा १००

दुर्लभ है ऐसा दाता जो नि स्वार्थ भाव से आहार—पानी देता है। नही तो लोग सोचते हैं—महाराज को अच्छा अच्छा भोजन दूँ, जिससे वे मुझ पर प्रसन्न हो जाएँगे और मुझे झाडा-झपाटा, डोरा-तावीज़ या सट्टा वता देगे। स्वार्थ-रहित भाव से दान देने वाले विरले ही होते है। और सच्चे महात्मा भी सिर्फ शरीर को भाडा देने के लिए ही आहार-पानी लेते है। गाडी को तेल देते हैं तो वह सुगमता-पूर्वक चलती रहती है और वैलो को भी अधिक ज़ोर नही पडता। तेल न मिले तो चर्र-चूँ करने लगती है और हल्की नही चलती। इसी प्रकार साधु भी शरीर को भाडा देने के लिए ही आहार लेते हैं। परन्तु ऐसे निष्काम-जीवी भी विरले ही होते है। परन्तु नि स्वार्थ वुद्धि से देने वाला और नि स्वार्थ भाव से लेने वाला, दोनो ही सद्गति के पात्र वनते है।

लेने वाला अगर स्वार्थ-वुद्धि से लेता है और फिर मस्ती करता है, जिस चूल्हे पर खाता है उसी को तोडता है तो वह स्वयं ही टूट जाता है।

सज्जनो! गृहस्थ का माल खाना लोहे के चने चवाना है। अगर इन चनो को तप—सयम द्वारा चवा लेता है तो आत्मा का कल्याग कर लेता है। अगर माल खाकर तप, जप या उपकार नही करता तो वह माल आतडियो मे से पोछा निकलता है।

मगर वहाँ हिरण न दे रहा था, न ले रहा था, निकट मे खडा-खडा केवल शुभ भावना भा रहा था कि कदाचित् मैं मनुष्य होता तो मुझे भी ऐसा दुर्लभ लाभ मिलता! यह लीला हो रही थी कि अचानक ज़ोर की आँधी आई और ऐसा भयानक तूफान आया कि जिस वृक्ष के नीचे वह सव खडे थे, वह जड़ से उखड

गया और तीनो की जीवन-लीला समाप्त हो गई। इस प्रकार नाटक का एक सीन समाप्त हो गया।

तीनो काल करके पचम देवलोक मे उत्पन्न हुए। तपस्या करने वाला, लकडी काटने वाला और पशु-जीवन मे विचरण करने वाला, तीनो, एक ही श्रेणी मे देवलोक मे जा पहुँचे।

सज्जनो ! एक व्यापार ऐसा होता है कि सीधा पासा पड जाय तो पहले का भी टोटा पूरा हो जाय और सात पीढी का भी दिवाला साहूकारी मे परिणत हो जाय और एक व्यापार ऐसा भी होता है कि घर-बार भी नीलाम हो जाय और माथे पर नया कर्ज चढ जाय। तो यह भावो की विचित्रता है। जैसे भाव होते है वैसा ही नफा-नुकसान हो जाता है। कहा है—

भावना भवनाशिनी

पशु हो कर भी एक प्राणी ने मुनि के आहार की जोगवाई लगवाई और शुभ भावना भाई तो सुगति पाई।

सज्जनो ! दान से दरिद्रता का नाश होता है। अगर उत्तम पात्र का योग मिल जाय और उत्तम भावना के साथ दान दिया जाय तब तो बेडा ही पार हो जाता है।

तो मै कह रहा था कि वसुदेव जी अपने कठमाधुर्य के कारण इतने जन-प्रिय हो गये थे कि जिस मार्ग से सगीत गाते हुए निकल जाते, वहाँ चहल-पहल मच जाती थी। स्त्री-पुरुप, बालिका-बालक सभी अपना-अपना काम छोड कर उनके पीछे हो जाते और जब तक वे दूर न निकल जाते, मत्रमुग्ध से उनकी मीठी सुरीली आवाज को सुनते ही रहते। उन के जीवन का यह दैनिक कार्य हो गया था।

सज्जनो ! संगीत भी एक वशीकरण मत्र है । वसुदेव जी के गान से लोगो के काम-काज मे व्याघात होने लगा । लोग परेशान हो गये कि स्त्री-बच्चे मानते नही और चुवक के पास जैसे लोहा खिचा चला जाता है, वैसे ही यह भी पास खिच जाते है । शिकायत करे भी तो किस से करे ? जब शासक ही इस रोग का शिकार हो तो इलाज किस से करावे ?

फिर भी उन्होने निश्चय किया—इस बीमारी का प्रतीकार कराना ही होगा और आज ही कराना ठीक होगा ।

सब बुजुर्ग मिल कर वसुदेव जी के बडे भाई समुद्रविजय जी के पास पहुँचे और बोले—सरकार यह हमारे घर की चाबियाँ सँभालिये । हम सब इस नगर को छोड कर जा रहे है ।

समुद्रविजय जी आश्चर्य मे पड गये कि आज यह नवीन बात कैसे सुनाई दे रही है ? फिर उन्होने पूछा—प्रजा-जनो ! आप पर ऐसी क्या मुसीबत आ पडी है कि नगर छोडने का इरादा कर रहे हो ?

नागरिक बोले—हम आप की प्रजा है और राजा को प्रजा की रक्षा का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए । मगर जब रक्षक ही भक्षक बन जाय तो किस के आगे पुकार करे ?

समुद्रविजय जी—मगर यह तो कहो कि परेशानी क्या है !

नागरिक—कुमार वसुदेव जी गलियो मे गाते फिरते है और हमारी बहू-बेटियाँ मर्यादाहीन हो कर उन के पीछे-पीछे फिरती है । अब हम किस मुँह से कहे कि आप के छोटे भाई ही जुल्म कर रहे है ?

ससुद्रविजय जी—अच्छा, आप लोग जा सकते है। मैं इस के लिए समुचित व्यवस्था कर दूंगा।

प्रजाजन अपनी फरियाद सुना कर चले गये। इतने मे ही वसुदेवजी आये। उन्होने वडे भाई को प्रणाम किया। समुद्रविजय जी ने वडे दुलार से उन्हे पास विठलाया और कहा—भैया, आज तुम पसीने से तरवतर हो रहे हो। दिल धडक रहा है और गुलाव सा मुखडा कुम्हला गया है। तुम्हे इतनी दूर घूमने की आवश्यकता नही। अपना दर्जा ऊँचा है। अपने वगीचे मे ही घूम लेना चाहिए। इधर-उधर भटकने मे अपनी शोभा नही है।

समुद्रविजय जी ने वडे कौशल से परिस्थिति को सँभाला। अव वसुदेवजी अपने महल और उद्यान मे ही नजर-कैद से हो कर रहने लगे। उन्हे विश्वास था कि मेरे वडे भाई मेरे हितैषी हैं, मुझ पर कृपालु है और उन्हे मेरी वडी चिन्ता रहती है।

कदाचित् समुद्रविजय जी चतुराई से न समझाते तो सभव है, मामला विगड जाता। आखिर वे भी वरावरी के भाई थे।

हाँ, तो वसुदेव जी महल मे ही रहने लगे और वागीचे मे ही सैर करने लगे। एक वार वे महल की खिडकी मे से नगर का दृश्य देख रहे थे कि सामने के राजमार्ग से एक दासी रानी के लिए चन्दन घिस कर एक कटोरी मे ले जा रही थी। उस दासी को देख कर वसुदेव जी को एक शरारत सूझी। उन्होने चन्दन की कटोरी को निशान वना कर एक ककर फैका और ककर निशाने पर लगा। कटोरी नीचे गिर पडी और चन्दन ढुल गया। अकस्मात् यह घटना देख दासी को वहुत चिन्ता हुई कि मैं ने वडे परिश्रम से तो चन्दन घिस कर तैयार किया और किसी ने ककर मार कर इसे नीचे गिरा

दिया। अव किस मुँह से मैं रानी के सामने जाऊँगी और उन्हे क्या सफाई दूँगी ? वे भी क्या सोचेगी ?

दासी ने ज्यो ही महल की ओर देखा तो वसुदेव जी खिल-खिला कर हँस पडे ।

सज्जनो, इस जवानी को सँभाल कर रखना वहुत कठिन है। जवानी मे अंधा हो कर मनुष्य क्या नही कर वैठता ? इस मे वह गये सो वह गये और रह गये सो रह गये। विंध गये सो मोती और रह गये सो पत्थर ।

हाँ, उस दासी से भी न रहा गया। उस ने खिसिया कर अपने वचनो की पोट खोल ही दी। ऐसी करतूतो के धनी है, इसी से तो नजर-कैद मे पड़े है।

इतना सुनते ही वसुदेव जी की आँखे खुल गई। वाणी का तीर उनके हृदय मे चुभ गया। शूर को ही वचन लगते है, कायर को नही। उन्होने सोचा—अहा, भाई साहव ने मीठे वचनो से फुसला कर मुझे नजर-कैद कर रक्खा है ? वे उसी समय महल से वाहर निकले और नगर से वाहर जा पहुँचे। वहाँ उन्होने एक चिता वनाई और लिख दिया 'वसुदेव इस चिता मे भस्म हो गया है। उसे खोजने का प्रयत्न निष्फल होगा'।

तात्पर्य यह है कि समुद्रविजय जी ने दावादूवी तो वहुत की और चाहा कि वात पोशीदा रहे और वसुदेव जी को मालूम न हो कि मैं नजर-कैद हूँ किन्तु अन्तत. वात फूट ही गई। तो सत्य सत्य ही रहता है और झूठ अन्त तक छिपा नही रहता। अत एव मानव जीवन के भवन का निर्माण करना है सो सत्य की नीव पर करो। मिथ्या के आधार पर स्थायी भवन नही खडा हो सकता।

तो रोहगुप्त झूठे तर्क के आधार पर जीत कर आया, परन्तु उस की विजय भी पराजय ही वन गई। अत एव वाद-विवाद हो तो सचाई के आधार पर होना चाहिए। सत्य के द्वारा ही सत्य का मण्डन और पाखण्ड का खडन करो। ऐसा करने से अवश्य ही विजय प्राप्त होगी।

इस प्रकार जो सत्य का मडन कर के धर्म की वृद्धि करते हैं, वे ससार-समुद्र से पार हो जाते है।

ब्यावर
८-१०-५६

तप:प्रभावना

उपस्थित सज्जनो !

कल वाद के द्वारा की जाने वाली प्रभावना का वर्णन किया गया था और वतलाया गया था कि जहाँ मिथ्यात्व का वोलवाला हो, उसका प्रभाव वढ रहा हो और धर्म तथा धर्मी पुरुपो का प्रभाव घट रहा हो, वहाँ वाद करके सत्य का मण्डन और असत्य का खडन करना चाहिए ।

आप जानते है कि जिस के पास शस्त्र-वल होता है, वही अपनी और दूसरो की रक्षा कर सकता है। निहत्था न अपनी और न दूसरो की ही रक्षा कर सकता है। शस्त्रधारी सौ आदमियो का भी एक साथ मुकाविला कर सकता है और शस्त्र-विहीन अनायास ही दूसरो के चगुल मे फँस जाता है । इसी प्रकार इस जगत् मे दभियो और पाखण्डियो ने कुहेतुओ के शस्त्र धारण कर रक्खे हैं और अपना जाल फैला रक्खा है। उनका सामना करने के लिए शास्त्र का तीक्ष्ण शस्त्र ही उपयोगी हो सकता है। हाँ, किसी निर-पराध पर उनका प्रयोग नही करना है। ज्ञानवल यो तो आत्मसाधना के लिए है, किन्तु आवश्यकता होने पर धर्म और धर्मी पुरुपो की रक्षा के लिए भी उसका उपयोग करना चाहिए।

चौथे प्रकार की प्रभावना तप से होती है। तप प्रभावना भी धर्म-वृद्धि का कारण है। जहाँ लोगो मे धर्म के प्रति, आत्म-शुद्धि रूप तप के प्रति अरुचि—उदासीनता—उत्पन्न हो गई हो, वहाँ तप का माहात्म्य वतला कर उनके हृदय मे तपश्चर्या करने की भावना उत्पन्न करना तप प्रभावना है।

आजकल लोग अपने शरीर को खूब मोटा ताजा रखने मे ही जीवन का आनन्द मान बैठे है वे शरीर और इन्द्रियो के गुलाम कहते है—भूखे मरने मे क्या रक्खा है ? 'आत्मा सो परमात्मा है' अत एव तप के द्वारा आत्मा को दु ख देना परमात्मा को कष्ट देना है। ऐसे शरीर-भक्तो से मेरा यही कहना है कि आप बड़े दयालु है। आप परमात्मा के अनूठे भक्त और शुभ-चिन्तक है। आप को परमात्मा की बडी फिक्र रहती है। मगर भोले भाइयो ! आप को यह भी पता होगा कि परमात्मा निराकार है। जो निराकार है उसके शरीर और इन्द्रियाँ नही होती। उसे भूख नही लगती, शरीर के अभाव मे भोजन कैसे हो सकता है ? परन्तु दुनिया ईश्वर के साथ भी ४२० करती है। गुलछर्रे तो स्वय उडाना चाहती है और नाम परमात्मा का लेती है। वह परमात्मा के नाम पर अपना उल्लू सीधा करना चाहती है। लोग इन्द्रियो के पोषण के लिए परमात्मा का नाम लेते है। शास्त्र मे दु ख देना पाप और सुख देना धर्म वताया है, यह शास्त्रीय सिद्धान्त तो अक्षरश सत्य है, मगर थोड़ा दिमाग भी लगाना चाहिए कि किस को दु ख देना पाप है और किस को सुख देना धर्म है ? किसी प्राणी को दुर्बुद्धि से दु ख देना पाप है न कि शरीर से तपस्या करके शरीर को कष्ट देना पाप।

आत्म-शुद्धि के लिए चार प्रकार के धर्मों मे तप भी एक धर्म माना गया है। दान, शील, तप और भावना मे तप तीसरा धर्म है। मगर शरीर-पोषको ने यह सूत्र घड लिया है कि 'देह रक्ख धर्म' अर्थात् शरीर की रक्षा करना ही धर्म है।

भाइयो ! यदि 'रख' शब्द मे काना लगा दिया जाय तो वह 'राख' वन जाता है, धर्म की रक्षा वही कर सकता है जिसने शरीर

को राख के समान समझ लिया हो। दशवैकालिक सूत्र में कहा है

देहदुक्ख महाफलं ।

अर्थात्—जितना भी तुम ज्ञान-पूर्वक मन को, इन्द्रियो को और शरीर को दमन करने के लिए कष्ट सहन करोगे, उतना ही आत्म-शुद्धि रूप महान् फल प्राप्त करोगे ।

इन्द्रियो और मन की चचलता को दूर करके उन्हे नियत्रित करना तप है। ऐसा करते इन्द्रियो को मन को, और शरीर को कष्ट तो होगा, परन्तु आत्म-शुद्धि के लिए यह कष्ट सहन करना अनिवार्य है। अग्नि मे तपाये विना सोना शुद्ध नही होता। कोयले की कालिमा धोने से नही मिटती, आग मे जलाने से मिटती है। जब वह राख बन जायगा तो कालिमा नही रहेगी। राख मे कोयले की अपेक्षा अधिक गुण होते है। वह जूठे वर्तनो को शुद्ध कर देती है, शरीर मे आये हुए भूतो को भगाने के लिए उसकी आवश्यकता होती है, अनाज को राख मे रख दिया जाता है तो उसमे जीवो की उत्पत्ति नही होती। कोई पापी और अपराधी है तो कहा जाता है—इसके मुँह मे राख डालो। बाबा-जोगी स्नान करके शरीर मे राख लपेट लेते है और अपने आपको शुद्ध मानते है। इस प्रकार उस कठोर और काले कोयले की अपेक्षा कोमल राख मे गुण ज्यादा है। परन्तु कोयले मे यह गुण आये कब ? जब उसे आग मे जला कर राख बना दिया गया और उसकी कालिमा दूर कर दी गई।

इसी प्रकार अगर हम भी शरीर को राख बनाकर अर्थात् तपस्या से शरीर को राख के समान शुद्ध-पवित्र बना कर धार्मिक जीवन व्यतीत करते हैं तो यह भी श्रेष्ठ है। धर्म के लिए शरीर को कष्ट देना नष्ट करना नही, उसे सफल बनाना है। ज्ञानी पुरुष

वतलाते है और हमारे अनुभव से उसका समर्थन होता है कि विना कष्ट के इष्ट वस्तु की प्राप्ति नही होती। जमीदार जमीन को जितनी-जितनी जोतता है और ढेलो को फोड़ता है, उतना ही अधिक उसे लाभ मिलता है।

शरीर भी एक प्रकार की जमीन है, खेत है और आत्मा किसान है। विविध प्रकार की तपश्चर्या करना जमीन को जोतना-कष्ट देना है। उसे जितना अधिक जोतोगे, उतना ही अधिक आत्म-कल्याण रूपी पाक होगा। इससे आत्मा मे सहनशक्ति भी वढेगी। आजकल ट्रैक्टर चलाये जाते हैं तो वे वहुत गहरी जुताई करते है, जिससे ज़मीन की उपजाऊ शक्ति वढती है। इसी प्रकार अधिक तपश्चरण रूपी ट्रैक्टर चला कर शरीर-क्षेत्र को जितना गहरा जोतोगे, उतना ही अधिक आध्यात्मिक गुणो का विकास होगा। काम, क्रोध आदि घास की गहरी पैठी हुई जडे उखड़ जाएँगी, जिससे आत्मगुणरूपी पाक अधिक होना स्वाभाविक ही है।

तप करने का एक लाभ यह है कि जव कभी भूख-प्यास सहन करने का अवसर आ जायगा तो उस समय उसे सरलता से सहन किया जा सकेगा। वह दुस्सह प्रतीत न होगा। सकट का वह समय शान्तिपूर्वक पार किया जा सकेगा। मनुप्य के लिए उचित है वह अपने-आपको प्रत्येक परिस्थिति के लिए समर्थ वना ले। यह नही कि सुख आया तो हँसने लगे और जरा से दु ख का वादल आया तो रोने लगे। यह कायरता है।

गाँठ वाँध लो कि सव दिन समान नही व्यतीत होते। जिन्दगी एक उलझनभरी पहेली है। अगर तुमने शुभ कर्म किये है तो सुख ही मिलेगा और अशुभ कर्म किये है तो फलस्वरूप दु ख ही

मिलेगा। अपने कर्मों का फल आप ही भोगना पड़ेगा यदि आप दुःख के दिन रो-रो कर व्यतीत करेंगे तो भी दुःख से छुटकारा होने वाला नहीं, वरन् तुम्हारा अधैर्य और चाचल्य उसे चौगुना बना देगा। तो वह अवधि तो पूरी करनी ही होगी। ऐसा सोचकर दुःख के समय धैर्य रखना चाहिए। जब सामने दुश्मन उपस्थित हो तो उसका डट कर मुकाबिला किये बिना कैसे छुटकारा हो सकता है? अगर शत्रु को समक्ष आया देख मैदान छोड़ कर भाग जाओगे तो वह तुम्हारे घरबार पर कब्जा कर लेगा। हाँ, अगर होश और जोश के साथ आगे बढोगे और चमचमाती हुई तलवार के दो हाथ दिखलाओगे तो दुश्मन के हौसले ढीले पड़ जाएँगे और वह हार कर उलटे पैरों पीछे भाग जायगा।

मित्र का स्वागत करना होता है और शत्रु का मुकाबिला करना पड़ता है। दुःख अगर शत्रु है तो उनका डट कर मुकाबिला करो।

शास्त्र का विधान है कि दुःख आने पर 'हाय-हाय' नही करना चाहिए। जो दुःख के समय भी सहनशील होते हैं, उनकी आत्मा का कल्याण होता है। आत्म-कल्याण के जो बारह बोल बतलाये गये है, उनमे दुःख के समय सहनशक्ति रखना भी है। इससे भी आत्मा का कल्याण होता है।

याद रक्खो, 'हाय-हाय' करने से दुःख मिटता नही, बढ़ता है। अधिक सताता है।

तपश्चरण सहनशक्ति के विकास का अमोघ उपाय है, परन्तु उसके साथ आडम्बर नही होना चाहिए, लौकिक कामना का विष मिश्रित नही होना चाहिए, केवल आत्मशुद्धि और धर्मवृद्धि के लिए ही तपस्या करनी चाहिए।

जब अवसर आया तो गाँधी जी ने तप का अवलबन लिया । जब हिन्दू-मुस्लिम झगडा हुआ तो उन्होने दिल्ली मे २१ दिन का अनशन किया और उसके प्रभाव से राजसिहासन भी डोल गया ।

तो तप से आत्मा निखरती है, सहनशक्ति बढती है और भूख सहन करने से भूखो की तकलीफ का खयाल आता है। क्योकि कहावत है –

जाके पैर न फटी विवाई,
सो का जानै पीर पराई।

भूख लगने पर तपस्वी सोचता है कि मैने स्वेच्छा-पूर्वक उपवास किया है, भोजन प्राप्त होने पर भी उसका त्याग किया है, फिर भी मुझे भूख सता रही है , किन्तु जो खाने के लिए लालायित हैं पर भोजन नही पा रहे हैं, उनके कष्ट का तो कहना ही क्या है ?

जो लोग दूध-मलाई खाकर गुलछर्रे उडा रहे है और अपने भोग-विलास मे गलतान हो रहे हैं, वे कैसे समझ सकते है कि भूखा रहने वालो पर क्या बीतती है ? उनकी एक-एक रात्रि भी ब्रह्मा की रात्रि के समान गुजरती होगी । इस लिए ज्ञानी पुरुषो का कथन है कि तप भूखो की पहचान करा कर उनके कष्टो को निवारण करने का भी एक साधन है । इसके अतिरिक्त कर्मनिर्जरा का तो अपूर्व उपाय है, क्योकि पूर्व जन्मकृत कर्म तपस्या से इसी प्रकार नष्ट हो जाते है जैसे पुराने चूने की और मिट्टी की शक्ति दीर्घ काल तक काल प्रहार पडने से नष्ट हो जाती है । तप धर्म-प्रभावना का एक महान साधन है ।

सज्जनो, बडी-बडी तपस्या भले ही करो, मगर अपनी शारीरिक और मानसिक शक्ति को अवश्य तोल लो । ऐसा न हो कि

कही लेने के देने न पड जाएँ । उतना ही वजन उठाओ जितना निश्चित स्थान तक सही-सलामत पहुँचाया जा सके । शक्ति से अधिक उठा लिया तो असह्य हो जायगा और बीच ही मे पटक देना पडेगा ।

तप ऐसा धर्म है जिस की जैन-परम्परा मे तो प्रधानता है ही, मगर अन्यान्य मतो मे भी जिसे स्वीकार किया गया है । भले ही जैन परम्परा के समान दूसरे लोग तप का आचरण न करते हो और उतना महत्त्व भी न समझते हो, परन्तु वे भी इसे धर्म का एक अनिवार्य अग मानते हैं, अन्य मतो के ऋषियो, मुनियो, पैगम्बरो और पादरियो ने भी तप का माहात्म्य बतलाया है । वैष्णव कथाओ के अनुसार कई ऋषियो ने कई हजार वर्ष तक खडे रह कर तप किया है । इस्लाम धर्म मे भी प्रतिवर्ष रोजा रखने का विधान है । मुसलमान इस विधान का पालन भी करते है । जेठ-आषाढ की गर्मी मे वे दिन भर पानी तक नही पीते, किन्तु रात मे चारा चरते हैं और मुर्ग भी खाते है । फिर भी उन्होने तप को आत्मशुद्धि का कारण माना है । इसी प्रकार ईसाई धर्म मे भी तप को स्वीकार किया गया है ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के, जो आर्यसमाज के जन्म-दाता और प्रचारक थे, जीवन-चरित्र मे लिखा है कि वे ब्रह्मचारी थे । किसी समय एक कुलवधू ने पूज्य-बुद्धि से, भावुकता के कारण उनके चरणो का स्पर्श कर लिया । तब उन्होने सोचा ब्रह्मचारी को स्त्री-का स्पर्श निषिद्ध है । यह सोचकर उन्होने प्रायश्चित्त-स्वरूप तीन दिन का निर्जल उपवास किया ।

जैन शास्त्रो मे तो यहाँ तक बतलाया है कि जिस स्थान पर

स्त्री वैठी हो उस स्थान पर उसके उठ जाने के पश्चात् भी दो घडी तक वहाँ ब्रह्मचारी को नही बैठना चाहिए । यदि ब्रह्मचारी साधु वहाँ वैठ जायगा तो भूमिगत उस स्त्री के शरीर के व्याप्त उष्ण परमाणु उसके दिमाग पर असर करेगे और दृष्टि विकारमयी वन जायगी । जैन साधु को दुधमुँही वच्ची का स्पर्श भी हो जाता है तो उसे एक दिन के उपवास का दण्ड लेना पडता है । यो वात कुछ नही, फिर भी वडी भारी वात है। छोटी वात भी कालान्तर मे वडा रूप धारण कर लेती है । पानी को थोड़ी–सी जगह मिल जाय तो वह गाँव के गाँव वहा देता है । इस लिए पहले ही पाल वाँध देना चाहिए और उसमे दरार नही पड़ने देना चाहिए ।

ससार मे काँटे ही काँटे विछे हुए है । अगर असावधानी से पैर रक्खोगे तो काँटे चुभ जाएँगे । अत एव जागरूक रहो ।

मानसिक विकार ही मुख्य रूप से मनुष्य को दु खप्रद होते है। साधु-अवस्था उन विकारो को दूर करने के लिए अगीकार की है। अगर इस अवस्था मे भी वही विकारो का दौर चलता रहा तो मैं कहूँगा कि ऐसे लोग गृहस्थो से भी गये-वीते है । पाप का सेवन करने वाले साधु नहीं, डाकू है, चोर है और धर्म को लजाने वाले है । एक साधु गलती करता है तो उसका दुष्परिणाम समग्र साधु-समाज को भोगना पडता है । सभी साधुओ की वदनामी होती है । यह ठीक है कि दण्ड उसी चोर को भोगना पडता है, किन्तु जो उसके ससर्ग मे मे रहते हैं, उन पर भी 'व्लेम' आ ही जाता है । उन्हे भी शक मे गिरफ्तार कर लिया जाता है ।

तो अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है । एक वार और दो वार भूल हो जाय, फिर तो सावधान हो जाना चाहिए । जो समझ-दार जाति-कुलवान् होते है,इशारे मात्र से अपनी भूल सुधार लेते है ।

एक वार जोधपुर-महाराज सज्जनसिंह जी स्वामी दयानन्द से मिले। उनका किसी वाजारू स्त्री-वेश्या से सम्वन्ध था। स्वामी जी को इस वात का पता था। उन्होने गर्म लोहे पर चोट की और कहा—महाराज आप सिह होकर सियालनी से सम्वन्ध रखते है। सिह के लिए वड़ी शर्म की वात है यह।

निशाना ठीक वैठा। राजा ने उसी दिन से वेश्या का त्याग कर दिया। वेश्या ने इस घटना से चिढ कर स्वामी जी को विप दे दिया। स्वामी जी मर गये तो क्या हुआ? अमरता का पट्टा लेकर कौन आया है? मगर सत्य कहने से वह नही चूके।

इस प्रकार तपस्या को सभी धर्मशास्त्र महत्त्व देते है। सव उसे आत्म-शुद्धि का कारण समझते हैं। आज भी कई जैन साधु-साध्वी लम्वी-लम्वी तपस्याएँ करते है। कई वेले-वेले और पचोले-पचोले पारणा करते है।

तपस्या मान-प्रतिष्ठा के लिए नही की जाती, तथापि उसका प्रभाव दूसरो पर पडे विना नही रहता। दूसरे समझते है—जैन समाज मे ऐसे-ऐसे तपस्वी महापुरुष भी है। इससे धर्म की प्रभावना होती है, शासन का उद्योत होता है।

जैनतपस्या मे निराहार रहना पडता है, पर वैष्णव-तपस्या का ढग कुछ निराला है। वहाँ मावे की मिठाई, रवडी, दूध, फल और सिघाडे आदि-आदि खाये जाते है, फिर भी वे उसे तपस्या-उपवास कहते हैं। किन्तु एकादशी का वास्तविक उपवास तो तव होता है जव ग्यारह चीजो का त्याग किया जाय। मगर यहाँ तो ऐसा ढग वना रक्खा है कि एकादशी के उपवास मे ग्यारह वढिया-वढिया चीजे खाई जाएँ।

वस्तुत तपस्या करना बच्चो का खेल नही है। तपस्या को देख कर तपस्वी और तपस्या के प्रति श्रद्धा का भाव जागृत होना चाहिए। आज आप स्वतन्त्र देश के नागरिक की हैसियत से अपना सिर स्वाभिमान के साथ ऊँचा किये हुए है और विदेशो मे भी भारत का सन्मान वढ रहा है और विश्व की समस्याओ को सुलझाने मे भारत की सलाह ली जा रही है, यह सव उस लगोटी वाले—हड्डियो के पिजर गाँधी की तपस्या का ही प्रभाव है। उसके तप ने भूचाल की तरह ब्रिटिशसाम्राज्य की नीव हिला दी। यद्यपि विद्वान् तो उनसे भी वढ कर अनेक थे, परन्तु गाँधी जी मे सत्य, अहिसा और तप की जैसी साकारता थी, दूसरो मे नही थी। यद्यपि कई वार वह तपस्या मे सतरे का रस लेते थे, तथापि उनके तप ने भारत को पराधीनता के अभिशाप से मुक्त करा दिया।

जैन-तपस्या मे अधिक से अधिक कोई चीज ली जा सकती है तो पानी ही लिया जा सकता है। पानी के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु को लेने पर वह तप उपवास नही कहला सकता, उसे रसपरित्याग कह सकते है। रसपरित्याग भी तप का ही अग है। जितने-जितने रसो का त्याग किया जाता है, उसका फल अवश्य मिलता है। जितना मीठा डाला जायगा, उतनी ही मिठास आएगी।

तप दो प्रकार का होता है—सम्यक् तप और असम्यक् तप। सम्यक् तप से आत्मा मोक्ष की अधिकारिणी वनती है। असम्यक् तप भी काम तो करता है, पर पूर्णफलप्रदायी नही होता। यह तप देवगति का कारण हो सकता है, परन्तु मोक्ष-लाभ नही करा सकता। असम्यक् तप से देवगति प्राप्त हो सकती है किन्तु मोक्ष का सुख तो भावतप से ही मिलेगा। पूर्वाचार्यो ने अधर्मियो को इसी तप के

प्रभाव से धर्मी वनाया था। जैन पूर्वाचार्यो मे से स्वामी रतनचन्द्र जी आचार्य कई भापाओ के जानकार थे और अनेक साधु दूर-देशान्तरो से उनके पास पढने आया करते थे। दिल्ली से परली तरफ जमना पार प्रान्त कहलाता है। वहाँ उन्होने आटा घोल-घोल कर पी कर भी धर्म का प्रचार किया।

वीकानेर मे पहले यतियो का जोर था। वे राजसम्मानित भी थे। वे यह भी समझते थे कि यहाँ त्यागी साधु आ जाएँगे तो हमारी कलई खुल जायगी। वे वहाँ डेरे वाँध कर चैन की वसी वजा रहे थे। गुरु मे पूज्य जयमल जी महाराज थली प्रान्त मे पधारे तो उन्हे गाँव के वाहर श्मशान की छतरियो मे ठहरना पड़ा, क्योकि वीकानेर नगर मे साधुओ को प्रवेश करने की आज्ञा नही थी। कई दिन छतरियो मे ठहरे हुए हो गये और निराहार गुजर गये। तत्पश्चात् उन्हे किसी ने देख लिया और जाकर दीवान से कहा। दीवान ने राजा से कहा--'अन्नदाता, मेरे गुरु यहाँ आये है, भूखे रह रहे हैं।' यतियो ने ताम्रपत्र लिखा रक्खा था कि कोई साधु शहर में नही आ सकता। मगर राजा की विशेष आज्ञा प्राप्त करके दीवान गुरु के पास छतरियो मे पहुँचे। प्रार्थना की--महाराज नगर मे पधारे। तव पूज्य जयमल महाराज ने शहर मे प्रवेश किया और वीकानेर मे खूब सत्य धर्म का प्रकाश किया।

तो महापुरुषो ने वडी-वडी कुर्वानियाँ करके धर्म को प्रभावना की थी। उन्होने हमारे लिए जागीर कायम कर दी है। मगर हम तो सपूत तभी कहलाएँगे जव उसे वढाएँ, कम से कम घटाएँ तो नही। हमारा कर्त्तव्य उसे वढाने का है। योग्यपुत्र वही है जो पिता की पूँजी को वढाता है और नालायक लडका उसे वर्वाद कर देता है।

भद्रपुरुषो, शास्त्रकार वतलाते है कि तपस्या से भी धर्म-प्रभावना होती है। महापुरुष लाखो कुपथगामियो को सन्मार्ग पर ला सके, यह उनके तप का ही प्रभाव था। दूसरों पर तप का प्रभाव पडे विना नही रहता।

गुरु का जीवन त्यागमय होना चाहिए। जिसमे अपना उल्लू सीधा करने की भावना होती है, वह दूसरो का कल्याण नही कर सकता। परमार्थ की वुद्धि वाले ही अपना और दूसरो का कल्याण कर सकते है। मगर आज स्वार्थी गुरुओ ने ऐसी धाक जमा रक्खी है कि क्या मजाल कि उनके चेले इधर के उधर हो जाएँ।

किसी कुभार के पास गधो का टोला था। वह उनसे भाडा कमा कर गुजर करता था। शाम को सव को इकट्ठा करके एक ही खूँटे पर उनकी टाँगो मे एक ही रस्सी वाँध कर उन्हे वाँध दिया करता था। फिर सव के कान मरोड कर मुँह पर एक-एक थप्पड लगा दिया करता था। गधे सोचते थे कि हमे वाँध दिया है, हम चुपचाप खडे रहते है और आज्ञा का उल्लघन नही करते, फिर भी कुभार कान मरोडता और थप्पड मारता है? अगर हमने जरा भी हलन-चलन कर दी तव तो यह डडो के मारे हाडो का चूरा ही कर देगा। यह सोच कर वे निस्तब्ध खडे रहते थे। इस प्रकार कुभार ने उन पर अपना रोव जमा रक्खा था।

कुभार लम्वी तान कर सो जाता और वेचारे गधे भूखे-प्यासे ही खडे रहते। कुछ दिन वाद, जव कुभार को विश्वास हो गया कि गधे शान्ति से खडे रहने के अभ्यासी हो गये है और इन पर मेरा मन्त्र पूरी तरह असर कर गया है, तव उसने उन्हे एक ही रस्से से वाँधना वद कर दिया, मगर एक कतार मे खडा करके कान

मरोडना और थप्पड मारना वदस्तूर कायम रक्खा। गधे वन्धन मे वँधे न होकर भी समझते थे कि हम वन्धन मे वँधे है। वे अपनी शक्ति को विल्कुल भुला चुके थे।

इसी प्रकार कितने ही गुरु उस कुभार के साथी है और कितने ही मूर्खानन्द भक्त उन गधो के साथी है, जो अपनी अक्ल का दिवाला निकाले वैठे हैं कितने ही ढोगी एव दभी गुरु अपने चेलो के कान में मन्त्र फूँक देते हैं—देखो वच्चा, मेरे सिवाय किसी को गुरु मत समझना, हाथ नही जोडना। कुभार गधो के मुँह पर थप्पड मारता था किन्तु गुरु भक्तो की पीठ ठोक देते है—वाह, तेरे जैसा पक्का चेला, तेरे जैसा भक्त दूसरा नही है।

सज्जनो! ऐसे-ऐसे गुरु हो जाएँ तो दुनिया मे जल्दी ही प्रलय हो जाय। मगर समाज मे ऐसे समाजद्रोही भी है जो अपना उल्लू सीधा करने के लिए भक्तों की पीठ थपथपा देते हैं और भक्त लोग गुरुमन्त्र सुन लेने पर टस से मस नही होते। किन्तु अरे निर्विवेक! तुझे दिल-दिमाग मिला है, शरीरवल मिला है, फिर भी तू यही भूखा-प्यासा खडा है? जव यही खडा रहने का वन्धन नही है और तुझे आगे क्षेत्र मिला है तो जहाँ भी तुझे अच्छा 'चारा' मिलता हो, गुरु-मन्त्र के वन्धन को तोड कर फौरन वहाँ चले जाना चाहिए। मगर यह अवश्य देख ले कि वास्तव मे चारा अच्छा है या नही? जिस गुरु ने विश्वप्रेम के पवित्र सूत्र को तोड कर तुझे समकित के नाम पर छोटे-से सूत्र मे वाँव दिया है, वह गुरु न अपना ही कल्याण कर सकता है और न अपने भक्तो का ही। अरे, तुझे समझने की शक्ति मिली है, हजारो-लाखो का व्यापार करता है, वड़ी-वड़ी योजनाएँ घडता है, परन्तु इस जगह तेरी वुद्धि काम क्यो नही करती? मुझे उन गधो के लिए अफसोस नही है, क्योकि

वे पशु है और दुनिया ने उन्हे वदनाम कर ही रक्खा है, परन्तु अफसोस है उन भक्तो के लिए जिन्हे जन्म तो मनुष्य का मिला, फिर भी गधे के समान हो रहे है।

वे भक्त कहते है—हमारे गुरु ने ऐसा ही फर्माया है । मगर जो सच्चे गुरु होगे वे तो अच्छी शिक्षा देगे । वे तो प्रेम का ही पाठ पढाएँगे । गुरु वही है जिसने मानव को सच्चे देव-गुरु-धर्म के स्वरूप को वतला दिया हो । उस्ताद लडको को कारोवार का सही ज्ञान करा देता है । वह यह नही कहता कि अमुक दुकान से ही माल लेना और दूसरों की दुकान से मत लेना । धर्म के क्षेत्र मे गुरु का काम भी सच्चे-गुरु-धर्म का वोध करा देना है । उस का काम भक्तो के गले मे सम्प्रदायवाद की कठो वाँधना या कान मे मन्त्र फूँकना नही है ।

जो कचन-कामिनी का पूर्ण रूपेण त्यागी है वही गुरु है । वीतराग द्वारा प्ररूपित धर्म ही सच्चा धर्म है । दया-दान मे धर्म है । अरिहन्त भगवान् देव है । यही तत्त्व है और इसी पर श्रद्धा करना सम्यक्त्व है । मगर आज लाग वाडेवदी के शिकार हो रहे हैं । उन्होने अपनी उदार भावना को सकीर्ण रूप मे परिणत कर दिया है ।

कुशल व्यापारी वही है जो जाँच-पडताल करके माल खरीदता है । वह स्वय वाज़ार मे जायगा और दस जगह माल की जाँच करेगा और जहाँ अच्छा और सस्ता मिलेगा, वही से ले आएगा । यह उस से नही होगा कि अमुक दुकान से ही सड़ागला माल ले ले । जो व्यापारी ऐसा करता है, वह व्यापार मे कभी सफल नही हो सकता ।

तो मैं कहने जा रहा था कि आज तुम्हारे अन्दर भी ऐसी ही सकीणता काम कर रही है। सब अपनी-अपनी लाइन पर ही जाते हैं। मैं कहता हूँ, सब लाइनो पर गाड़ियाँ जाती है और तुम्हे सभी से गुज़रना होगा। हाँ, यह देख लेना चाहिए कि कोई कट तो नही गई है और एजिन मे कोई खराबी तो नही आ गई है। अगर कोई कहता है कि साहब! लाइन कट गई है तो मै ठहर कर जाऊँगा किन्तु दूसरी लाइन पर नहीं जाऊँगा, तो ऐसा करना उस की मूर्खता का द्योतक है। अगर वह दूसरी लाइन से चला जायगा तो जल्दी पहुँच जायगा अपने लक्ष्य पर।

आज जमाने का तकाजा है कि इस सकीर्णता को तिलाजलि दी जाय और विश्वप्रेम की शिक्षा ली जाय। भगवान् महावीर स्वामी का यही सिद्धान्त है और उन्होने विश्व को विश्वमैत्री का ही पाठ पढाया था कि जगत के समस्त प्राणियो के साथ मित्रता और मुहब्बत होनी चाहिए। तो जहाँ से तुम्हे वोध मिले वही से ले लेना चाहिए। मगर मैं देख रहा हूँ कि आप के हृदय से सम्प्रदाय की वू अभी तक नही निकली है। इस से हमारा विकास नही होगा और हम जहाँ तक पहुँचना चाहते है, नहीं पहुँच सकेंगे।

भाई! हम तो अच्छे माल के खरीदार है। वह जहाँ से भी मिले, हमे खरीदने मे सकोच नही करना चाहिए। किन्तु आश्चर्य तो इस वात का है कि जहाँ दृष्टिदोष हो जाता है, वहाँ अच्छा माल भी खराव और खराव भी अच्छा प्रतीत होने लगता है। अतएव दृष्टिदोष को निकाल दो और अपने क्षेत्र को विशाल वनाओ जिस से अधिक से अधिक उन्नति कर सको और धर्म की प्रभावना कर सको।

मैं कहूँगा कि गुरुओ मे विशेष उदारता होनी चाहिए और भक्तो को भी सही दिमाग से काम लेना चाहिए। भक्तो को अपने गुरुओ से कान ऐठवाने और थप्पड़ खाने की आवश्यकता नही है। भूखे-प्यासे पड़े रहने की भी आवश्यकता नही है।

यह जीव ससार की हेराफेरी की झूठी कला को तो जल्दी सीख लेता है किन्तु धर्मकला सीखने मे बुद्धि नही लगाता। ससार-व्यवहार मे तो दक्ष है पर धर्म को फैलाने मे चतुराई नही दिखलाता, नदी मे किश्ती चलती है और बैठने वाले उस मे बैठ जाते है और नाविक उन लोगो को मिहनत करके पार भी पहुँचा देता है। कुछ लोग एक नाव मे बैठ गये। उन मे एक जैटिलमैन भी बैठ गया। वह नयी रोशनी का था, बडा डिग्रीयाफ्ता था। नाव रवाना होने पर उसने अपनी आदत से लाचार हो कर नाविक से पूछा--क्या खगोल विद्या जानते हो?

नाविक ने कहा—मैं आकाश से सम्बन्ध रखने वाली बातो को नही जानता।

जैटिल०—अच्छा, भूगोल तो जानते होगे?

नाविक—नही, मैं वह भी नही सीखा।

जैटिल०—तो साइस का तो ज्ञान प्राप्त किया होगा?

नाविक—नही साहब,मैंने विज्ञान की बाते भी नही जानता।

जैटिल०—अच्छा, हिसाब जानते हो?

नाविक—नही, मैं यह भी नही पढा।

इस प्रकार जब नाविक ने सब प्रश्नो का उत्तर नकारात्मक ही दिया तो बाबू साहब बोले—माझी! तेरी पौन उमर तो यो ही

चली गई। अगर यह तीन विषय, जो खास थे, तूने नहीं सीखे तो तेरी जिंदगी के तीन हिस्से व्यर्थ ही चले गये।

नाविक—बाबू जी, मैं एक गरीब घराने मे जन्मा हूँ और प्रारम्भ से ही मेरे यहाँ लोगो को पार पहुँचाने का काम रहा है। अत एव मै नाव चलाना और पानी मे तैरना जानता हूँ।

यह सुन कर वह जेंटिलमैन बोले—तू ने कुछ भी नही किया। देख, मै कई विद्याओ मे पारगत हूँ और बडे प्रोफेसर की पोस्ट पर जा रहा हूँ। हजारो रुपये मुझे वेतन मिलेगे। तू तो कोरा खिवैया का खिवैया ही रह गया।

माझी ने कहा—आप कुछ भी समझे साहब, मैं तो दो ही बाते जानता हूँ—लोगो को पार लगा देता हूँ और डूबते हुए को बचा लेता हूँ।

इस प्रकार वह बातूनी साहब अपनी प्रशसा के पुल बाँधे जा रहा था और दूसरो की भर्त्सना कर रहा था कि अकस्मात् दुर्भाग्य से नाव एक चट्टान से टकरा गई। टक्कर इतनी तेज लगी कि नाव के तख्ते टूट गये और वह पानी मे डूबने लगी। जो तैरना जानते थे, वे जैसे-तैसे पार हो गये और जो नही जानते थे वे डूबने लगे। वह जेंटिलमैन साहब भी तैरना नही जानते थे। वे डुबकियाँ खाने लगे तो माझी को पहले की कसर निकालने की सूझी। उस ने कहा—बाबू साहब, मेरी तो पौन ही गई, पर आप की तो सारी ही गई। मेरे पिता ने मुझे तैरना सिखला दिया था तो मेरी सारी बच जायगी, पर आपने सब कुछ सीख कर भी पूरी गँवा दी।

तो भद्र पुरुषो! यह ससार समुद्र के सदृश है। बाबू जी ने सब कुछ सीख लिया, विलायत भी हो आये, सभी विज्ञानो मे

उत्तीर्ण हो गये, किन्तु ससार सागर से पार होने की कला नही सीखी है तो उन का सव कुछ सीखना-सिखाना पानी मे डूब गया। ससार के काम तो सव सीखते है, किन्तु जिस ने तैरना सीख लिया, उस को सव कुछ न सीखने पर भी सारी रह गई। जिस ने धर्म को उन्नत बनाने की कला सीख ली है, घर को उठाना सीख लिया है, उस ने सभी कुछ सीख लिया है। और यह नही सीखा तो कुछ भी नही सीखा।

तो शास्त्र मे वतलाया है कि चौथी प्रभावना तपप्रभावना है,यानी शुद्ध तप कर के अपनी आत्मा का कल्याण करना और दूसरो को धर्म की ओर लगाना भी प्रभावना का कारण है। जिन के जीवन मे त्याग नही ऐसे भाषण देने वालो की कमी नही है। मगर उनके भाषण प्रभावहीन होते है। एक त्यागी मुनि तप करके भी दूसरो के जीवन पर छाप डाल देता है। अत एव अपने सामर्थ्य के अनुसार विशिष्ट तप करके धर्म का उद्योत करना चाहिए। जो भव्य प्राणी तपस्या के द्वारा आत्मकल्याण और धर्म-प्रभावना करते है, वे ससार समुद्र से पार हो जाते है।

ब्यावर
९-१०-५६

प्रवचनप्रभावना

उपस्थित सज्जनो !

सम्यक्त्व के विषय मे प्रवचन चल रहे है । आप जानते है कि धर्म के जितने भी साधन है, सम्यक्त्व उनमें प्रथम है । सम्यक्त्व के आठ आचार है जिन्हे दर्शनाचार कहते है उनमे आठवाँ प्रभावना आचार है और इस आचार के भी आठ भेद है । प्रभावना का पाँचवाॅ भेद व्रतप्रभावना है । व्रत का अर्थ है— उपवास आदि किसी भी प्रकार का नियम या प्रत्याख्यान । व्रत शब्द सभी प्रकार के प्रत्याख्यानो के लिए लागू होता है । सभी प्रकार के नियम और प्रत्याख्यान व्रत के विभिन्न रूप हैं । सक्षेप मे किसी चीज़ का त्याग करना व्रत कहलाता है ।

शास्त्रकारो का कथन है कि नाना प्रकार के व्रतो को धारण करना, प्रत्याख्यान करना, त्याग करना, इन्द्रियो का दमन करना, मनोवृत्ति को नियन्त्रित करना और ऐसा करके जिन-शासन का उद्योत करना व्रतप्रभावना है ।

उपवास करना, नीवी करना, आयबिल करना भी व्रत है । रस का परित्याग करना भी व्रत है, जैसे किसी दिन नमक न खाना, दूध, घी,तेल,शक्कर,दही नही खाना । दूध आदि विगय कहलाते है । घी, दूध, दही, मक्खन और तेल, यह पाॅच विगय (विकृतियाॅ) है और मद्य तथा मास महाविगय है । अभिप्राय यह है कि जो चीजे इन्द्रियो मे विकार उत्पन्न करने वाली है, उनका त्याग करना उचित है ।

पूर्वोक्त सात विगयो में से मद्य और मास अखाद्य हैं । यह दोनो आर्य-जनो के ग्रहण करने योग्य नही है। जो वास्तविक अर्थ मे आर्य है,फिर चाहे वे जैन हो,सनातनी हो या किसी अन्य सम्प्रदाय के अनुयायी हो वे इन अभक्ष्य पदार्थो का सेवन नही करेगे। केवल नाम के आर्य लोगो की बात निराली है ।

मास यो ही प्राप्त नही हो जाता । जव तक क्रूरतापूर्वक किसी प्राणी की हत्या न की जाय, तव तक मास प्राप्त नही हो सकता । मगर कोई भी प्राणी मरना नही चाहता, क्योकि प्राण सभी को प्रिय है । मास के लिए निर्दोप मूक प्राणियो के प्राणो पर डाका डाला जाता है और वह घोर हिसा है और यह हिसा महान् पातक है । शास्त्र मे कहा है —

सव्वे पाणा पियाउया ।

अर्थात् सभी प्राणियो को अपना आयुष्य प्राण प्रिय है ।

कोई भी जीव नही चाहता कि उसे शस्त्र से काट कर मार दिया जाय । फिर भी वलात् प्राणियो के प्राण लूटे जाते है, उन्हे मौत के घाट उतारा जाता है । इसका कारण यही है कि जिहवा-लोलुप लोग अपनो जोभ की तृप्ति के लिए वेचारे असहाय गरीव प्राणियो की गर्दन पर छुरी चलाते है । वे अपने पेट को कविस्तान वना कर अपने शरीर को वलवान् वनाना चाहते है । उनकी आत्मा मे इतनी उद्दडता आ गई है, वे इतने स्वार्थ के वशीभूत हो गये है कि अपने सुख के लिए दूसरे के दु ख की परवाह नही करते । कितनी विचारहीनता है कि ऐसे लोग घी, दूध, शाक एव अनाज आदि शुद्ध पदार्थो के होते हुए भी उन्हे छोड कर मास खाते है और हाड चूसते हैं ।

कपडे पर खून का दाग लग जाय तो नीच से नीच जाति का गिना जाने वाला आदमी भी उसे धो डालता है और विना धोये चैन नही पाता , मगर अफसोस है कि यह जानते हुए भी कि मास खून की बूँदो से ही बना है, मनुष्य बडे शौक से उसे पका कर खा जाता है। शरीर मे सात धातुओ के निर्माण का जो क्रम वतलाया गया है, उसमे रक्त से ही मास वनना कहा है। यथा—

रसाद् रक्त ततो मास, मासान्मेद. प्रजायते ।
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा, मज्जया शुक्रसम्भव. ॥

शरीर मे खून न होता तो मास न वनता। जब शरीर में खून की कमी होती है तो मास भी सूखने लगता है।

मास लौकिक और लोकोत्तर—दोनो दृष्टियो से भक्षण करने योग्य नही है , क्योकि पवित्रता की दृष्टि से भी यह अत्यन्त मलिन और गन्दी वस्तु है। शास्त्र मे लोहू, मास और हड्डी को इतना अपवित्र माना गया है कि सौ-सौ हाथ की दूरी पर ये चीजे पडी हो तो शास्त्र का सज्झाय (स्वाध्याय) करना निषिद्ध है। ऐसी स्थिति मे जिसने उन्हे पेट मे ही डाल लिया हो और फिर भी गीता, कुरान या बाइविल का पाठ करे तो कितनी विचारणीय वात हो जाती है।

आज कल सिख जाति मे मासाहरी वहुत बढते जा रहे है। उनके यहाँ एक 'सुखमणि साहव' नामक ग्रन्थ है जो प्राय उन लोगो को कण्ठस्थ रहता है। तो ग्रन्थ का नाम तो वडा सुन्दर है—सुखो की मणि! पर उसे पढते भी जाते हैं और मास भी खाते जाते हैं। परन्तु इससे क्या फल ? किसी ने सिर पर पगडी बाँध ली और शेप भाग नगा है तो क्या उसे लज्जित नही होना पड़ेगा ? मास खाना भी आत्मा की नग्नता दिखलाना है।

जैन भाइयो, आप अपना बड़ा सौभाग्य समझिए कि आप को ऐसे धर्म की प्राप्ति हुई कि अनायास ही इस घोर पाप से बचाव हो गया, अन्यथा अन्यान्य धर्मो के अनुयायियो मे मास-भक्षण की प्रवृत्ति बढती जा रही है। आपके बचे रहने का एक प्रधान कारण यह है कि आपको त्यागी गुरु मिले है।

सज्जनो! पजाब प्रान्त मे अनुमानत लाखो की सख्या मे जैनी हैं और वे धर्म मे बडे मजबूत है। इस राजस्थान के आप लोगो को वे पजाब के जैन भाई पहनावे मे भले ही मुसलमान से दीखते हो परन्तु धर्म और धर्म-श्रद्धा मे वे लोग आप लोगो से भी ज्यादा दृढ है। वे आठो पहर पहले मुसलमानो एव सिक्खो के ससर्ग मे रहते थे और आज भी मासाहारी सिक्खो के सम्पर्क मे रहते है, फिर भी मासाहर के पाप से बचे हुए है। यह सब गुरुओ का ही प्रभाव है। यदि गुरु किनारा कर जाएँ तो उनके पथभ्रष्ट होने मे भी क्या देर लगे ?

विहार के अवसर पर हमे कई बार पजाब मे गुरुद्वारे मे ठहरना पडता है। सिक्खो का एक मान्य ग्रन्थ है—ग्रन्थ साहब। वे उसका पाठ किया करते है। एक बार हम गुरुद्वारा मे ठहरे। वहाँ पाठ करने वाला एक नौजवान सिक्ख था। उसे रावलपिंडी-श्रीसघ की ओर से एक छपी पुस्तक भेट की गई, जिस का नाम था 'गोहरे बेबहा' अर्थात् अनमोल मोती। उस मे मास के निषेध मे जैनशास्त्रो के, सनातन धर्म की स्मृतियो के, पुराण, वेद, कुरान, इजील और ग्रन्थ साहब आदि अनेक धार्मिक ग्रन्थो के प्रमाण दिये गये थे और बतलाया गया था कि मास खाना किसी भी सम्प्रदाय के अनुसार उचित नही है। उस मे हिंसा का निषेध और अहिंसा का

समर्थन किया गया था। जो ग्रन्थ अहिंसा का प्रचार करने वाले है, उन का मूल्य नही कूता जा सकता। वे वास्तव मे अनमोल मोती ही है। हाँ, तो उस ग्रन्थ साहिब का पाठ करने वाले सिक्ख को 'गोहरे वे वहा' नाम की पुस्तक दे कर कहा कि तुम इस का प्रचार करना। उस ने उत्तर दिया कि 'मास तो हमारे गुरु भी खाते थे।' भला जिन लोगो के दिल मे ऐसी गलत धारणा बन गई है वे इस महापाप से कैसे बच सकते है।

हाँ, ये बात ठीक है कि प्रचार बडी चीज है। किन्तु प्रचार के भी मुख्य रूप से दो तरीके हैं—तहरीरी और तकरीरी, अर्थात् लिखित रूप से और मौखिक रूप से। उपयोगी चीजो को लिख लेना बडा लाभदायक है, क्योकि वे सारी चीजे फिर स्वय वक्ता के दिमाग मे भी नही रहती। बहुत-सी बाते समय पर ही याद आती हैं। कितनी बाते ऐसी समय पर याद आ जाती हैं जिन्हे जिंदगी मे कभी सुनाने का काम नहीं पडा। वे आती है और चली जाती है तो तुम्हारे काबू मे कब रहने वाली है, जब कि मेरे दिमाग मे भी नही रहती। अगर उन्हे लिपिबद्ध करके छपवा लिया जाय तो उन से दूसरे लोग भी जब चाहें तभी लाभ उठा सकते है। आज प्रकाशन का बडा महत्त्व है। पहले लोग दूसरे सम्प्रदाय का साहित्य कम पढते थे, मगर आज वैसी सकीर्णता दृष्टिगोचर नही होती।

मगर लोग विवाह-शादी मे तो दस-बीस हजार खर्च कर देते है किन्तु जहाँ साहित्य-निर्माण का प्रश्न आ जाता है, वहाँ बगले झाँकने लगते है। किन्तु याद रखना चाहिए कि वक्ता के मुख से, चिरकालीन अनुभव और अभ्यास के सार रूप जो वचन निकले हैं, वे अनमोल मोती है और बार-बार मिलने वाले नही है। एक-एक

मोती सँभाल कर रखने योग्य है। आज वीतराग वाणी के प्रचार के लिए अनुकूल अवसर है। लोग अनुभव करने लगे है कि अहिसा के विना काम नही चल सकता। भगवान् महावीर ने वतलाया था कि अहिसा जहाँ आध्यात्मिक है वही व्यावहारिक भी है। अहिसा के सहारे ही जगत् चल रहा है। व्यवहार मे अहिंसा के विना काम चल ही नही सकता। गाँधी जी ने व्यावहारिक अहिसा का स्वरूप ससार के समक्ष उपस्थित किया। आप की यह धारणा मिथ्या है कि कारोवार हिसा के विना नही चलता। जो व्यापारी अहिसा के आधार पर अपना व्यापार करता है, वह विश्वस्त हो जाता है, ग्राहक उसे प्रामाणिक मानते हैं और इस कारण उसका व्यापार चमक उठता है। इसी प्रकार चाहे कोई नौकरी करे या नेतागीरी करे, अहिंसा के विना उसे यथेष्ट सफलता प्राप्त नही हो सकती।

आज लोगो ने अहिसा सिद्धान्त को भुला दिया है तो प्रत्येक कार्य मे और लक्ष्य की प्राप्ति मे बाधाएँ आ रही है। जव ऐंजिन ही कट जाय तो डिब्बे कैसे चल सकते है? अहिंसा इस जीवन को अग्रसर करने वाला ऐंजिन है।

अगर आप के व्यवहार मे अहिसा है तो आप का जीवन व्यापार ठीक तरह चल सकता है। अहिंसा का उपासक प्रत्येक कार्य सोच-समझ कर ही करता है। वह कदापि झूठा लेख नही लिखेगा, क्योंकि सौ रुपये दे कर अगर दो सौ रुपया लिखता है तो हिसा होना अनिवार्य है।

किसी को काट देना या छुरा भोंक देना ही हिसा नही है, किन्तु किसी के हृदय को चोट पहुँचाना भी हिसा है। मन से किसी के अनिष्ट का विचार करना भी मानसिक हिसा है। अपशब्द कहना

वाचिक हिंसा है। किसी का छेदन-भेदन आदि करना कायिक हिंसा है।

तो आज अहिंसा की अतीव आवश्यकता है और वह न केवल धर्म-स्थान मे, वरन् जीवन के प्रत्येक क्षण और प्रत्येक व्यवहार मे होनी चाहिए। जिस का प्रत्येक कार्य अहिंसा की दृष्टि मे होता है, वही वास्तव मे अहिंसक है। वही व्यापारी पूरा तोलेगा जिस मे अहिंसा की भावना होगी। जो तोलने मे वेईमानी करता है वह हिंसा करता है। ग्राहक घर ले जा कर उस चीज को तोलता है और वह कम उतरती है तो उस के दिल को आघात पहुँचता है। वह गालियाँ भी देता है और दुराशीष भी दे सकता है।

इसी प्रकार जिस हाकिम के दिल मे दया होगी, वह मुकदमो का फैसला न्याय-सगत और जल्दी करेगा। शासक के हृदय मे अहिंसा भगवती का वास होगा तो वह प्रजा के दु ख को अपना दु ख समझ कर उसके अमनचैन के लिए सभी साधन जुटायेगा।

आज व्यापक रूप मे अहिंसा के प्रचार की आवश्यकता है। अहिंसा का प्रचार ही एक प्रकार से जिन-शासन का प्रचार है। मैंने कहा था कि वह प्रचार दो प्रकार से हो सकता है—या तो वचनो द्वारा या लेखो द्वारा। आप बैठे हुए सुन रहे हैं और मैं सुना रहा हूँ, यह वचनो द्वारा प्रचार है। दूसरा तरीका प्रकाशन का है। जब यही वचन लिपिवद्ध होकर प्रकाशित हो जाते है तो यहाँ अनुपस्थित हज़ारो आदमियो को लाभदायक हो जाते है। आप लोग भी जब चाहे तभी बाद मे भी लाभ ले सकते हैं। कई लोग साहित्य पढ कर हिंसा छोड़ देते है। असत् साहित्य पढने वालो की वृत्ति भी असत् हो जाती है, परन्तु अच्छे साहित्य को पढ कर कइयो ने हिंसा और शराब आदि पापो का त्याग कर दिया है।

प्रभावना का वर्णन वहुत दिनो से चल रहा है । प्रभावना से धर्म की उन्नति होती हे । प्रवचन करने से सीमित प्रभावना होती है, क्योंकि मैंने सुनाया और आप ने सुन लिया और वे शब्द सदा के लिए शून्य मे विलीन हो गये । पर साहित्य स्थायी लाभ का कारण है । आप देखेगे कि कुरान, वाइविल और गीता आदि का उनके उपासको ने कितना प्रवल प्रचार किया हे । प्रत्येक भापा मे अनुवाद कराके वे प्रचार करते है, ताकि उनके सिद्धान्तो को दुनिया के लोग अच्छी तरह समझ सके और उनके धर्म की ओर आकर्षित हो.।

गुजरावाला मे तीन चार मुसलमान मेरे पास आये । उनमे एक मौलवी भी था । उनके साथ पुनर्जन्म के वारे मे काफी चर्चा हुई । वह मुझे हिन्दी, उर्दू और गुरुमुखी भापा मे अनुवादित तीन प्रतियाँ कुरान की दे गये । सज्जनो ! वे समझते थे कि यह प्रचारक साधु है और समाज इनके साथ है । अगर एक भी वात हमारे ग्रन्थ की समाज को वतला देगे तो कुरान की कीमत वसूल हो जायगी । आप को तो अपरिग्रहवाद का पाठ पढाया जाता है, उन्हे ऐसा पाठ पढाने वाला कोई नही है । मगर आप को ज्यो-ज्यो अपरिग्रह का उपदेश दिया जाता है, त्यो-त्यो आपकी परिग्रह-सम्वन्धी ममता वढती जाती है । कोई विरले माई के लाल होते है जो धर्म को प्रभावना करते हैं । आप ईट-पत्थर चूना के मकान वनाने मे वडी दिलचस्पी लेते है और हजारो लाखो रुपया खर्च कर देते है । शादी मे हजारो पानी की तरह वहा देते है, मगर धर्म-प्रचार के लिए खर्च करने का प्रसग आ जाय तो किनारा काटने लगते हैं ।

भाइयो ! मुझे आप के पैसे की आवश्यकता नही है । मेरे पास जो था, उसका भी मैंने त्याग किया है । अव जो है, आप को

बाँट रहा हूँ। यह आपका काम है कि आप उसे आगे-आगे फैलाने का प्रयास करे। भगवान् फर्मा गये है कि जिन-शासन इक्कीस हजार वर्षो तक चलेगा। किन्तु आप लोग ऐसी ही खुमारी मे रहे तो कैसे काम चलेगा ? मुझे अभी मालूम हुआ है कि मारवाड मे अनूप-मडल नामक एक सस्था स्थापित हुई है । अभी उसका कार्य-क्षेत्र गोडवाल प्रान्त तक सीमित है । उसका प्रधान नारा है — जैनो को मिटा दो, लूट लो , ये लका से आये है । इन्हे वापिस लका भेज दो।' तुम्हारे साहित्य का घर-घर मे प्रचार नही होने के कारण ही ऐसी बेहूदी सस्थाएँ खडी हो जाती है और वे तुम पर हावी होना चाहती है। अगर अब भी तुम्हारा साहित्य दूसरो की नजरो तक नही पहुँचेगा तो तुम्हारी सन्तान को भी सँभालना कठिन हो जायगा।

सज्जनो ! कमाना पडता ही है और दुनियादारी के सब कृत्य भी करने पड़ते हैं। स्त्री-बच्चो के लिए करते हो तो धर्म के लिए भी कुछ करना चाहिए। एक बाजू किस किस काम का है ? जिनके मन मे धर्म के प्रति उदासीनता है, जो धर्मप्रचार मे कोई रुचि नही रखते, मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि वे अर्धांग है । शरीर का आधा अग बेकार हो जाता है—लकवे से ग्रस्त हो जाता है तो दूसरा भी कार्यक्षम नही रहता। धीरे-धीरे उस आधे अग की भी चेष्टा खतम होने लगती है ।

सज्जनो ! कहाँ तो आनन्द कामदेव आदि श्रावको का आदर्श-मय जीवन और कहाँ आज आप लोगो का जीवन। उन श्रावको के साथ तुलना करोगे तो पता चल जायगा कि हमारे अगो मे कितनी शिथिलता आ गई है। इसीलिए कह रहा हूँ कि आज प्रचार की

वडी आवश्यकता है। अपने व्यापारिक प्रचार के लिए आदमियो को वाहर भेजते हो और दुकान के माल की विक्री के लिए प्रेपोगेण्डा करते हो तो धर्म जैसी वस्तु पुरज़ोर प्रचार के विना कैसे फैल सकती है ?

आपको भलीभाँति समझ लेना चाहिए कि यह नाशवान् धन किसी के साथ जाने वाला नही है। यह तो यही रह जाने वाला है। हाँ, इसे प्राप्त करके जो तुम अपने हाथो से धर्मप्रचार के कार्य मे लगाओगे तो वह अवश्य तुम्हारे साथ जायगा। विवाह मे दस-वीस हजार खर्च करने वाला क्या साहित्य-प्रचार के लिए एक हजार नही खर्च कर सकता ? इस नाक को रखने के लिए हजारो खर्च कर देते हो जिसमे से सेडा निकलता है। कदाचित् हीरा मोती निकलते तो न जाने क्या करते।

भाइयो! यह भगवान् महावीर की दुकान है। साधु-जन इसका प्रचार करने के लिए वडे भाई है तो आप लोग छोटे भाई है। आपका भी कर्त्तव्य है कि आप तन, मन और धन लगा कर इस दुकान की उन्नति मे सहयोग दे। मगर आप तो समझ वैठे है कि धर्मप्रचार करना महाराज श्री का ही काम है। याद रखिए, यह कोई साधारण-सी दुकान नही है। इसका सफलतापूर्वक सचालन करने के लिए दोनो भाइयो को अपने-अपने हिस्से का काम करना होगा। साधु जहाँ तक और जिस मर्यादा मे काम कर सकते हैं, करते ही हैं, मगर आप छोटे भाइयो का भी कर्त्तव्य है कि साहित्य का प्रचार करके और धर्म का विज्ञापन करके इस दुकान का माल अधिक से अधिक फरोख्त करने का प्रयत्न करे। अगर त्रिशलानन्दन भगवान् महावीर की दुकान के उत्तराधिकारी कहलाने का गर्व करते

हो तो कम से कम इसका माल दुनिया के सामने तो रक्खो। यदि तुम इस दुकान का माल दूसरो के समक्ष नमूने के रूप मे दिखला दोगे तो पारखी इसे अवश्य ग्रहण करेगे। यह कोई सड़ा-गला माल नही है। यह हमेशा ताजा रहने वाला माल है। महामहिम महावीर ने इस माल का सचय करने के लिए वडी कीमत अदा की है। जीवन उत्सर्ग किया है और साढे वारह वर्ष पर्यन्त घोर साधनाएँ करके, तपस्या करके और घूम-घूम कर अत्यन्त सावधानी से माल इकट्ठा किया है।

वारह वर्ष प्रभु वन मे डोले,
सभी आचार-विचार मे तोले।
जनता मे फिर खोले, तुमको लाखो प्रणाम।
महावीर जग-स्वामी तुमको लाखो प्रणाम।

सज्जनो! भगवान् महावीर ने हमारे लिए जो इतना जखीरा इकट्ठा किया और दुकान मे माल जमा किया, वह उन्हे यो ही नही मिल गया। साढे वारह वर्ष तक वे इधर-उधर विचरण करते रहे, घोर साधना मे उद्यत रहे और सभी प्रकार के सकट सहते रहे। तव कही वढिया से वढिया माल एकत्र कर सके। तो इसके पीछे असाधारण तपस्या है, वडे से वडा वलिदान है और उच्च से उच्च कोटि की साधना एव जगत् के कल्याण की पावन भावना है।

किन्तु वडे ही परिताप का विषय है कि आज हम उस अनमोल माल से भरी दुकान को सँभालने के लिए भी उदासीन हो रहे है। भगवान् महावीर का हमारे ऊपर भारी ऋण है। यदि हमने वफादारी के साथ इस दुकान को नही सँभाला और ठीक तरह से प्रचार नही किया तो वह ऋण हमारे सिर पर रह जायगा। अगर

हम चाहे तो इस मनुष्य-जन्म मे ही उस ऋण को चुका सकते है, अन्यथा फिर चुकाने का मौका मिलना वहुत कठिन हो जायगा। अत एव वडे भाई का काम है कि वह वाणी द्वारा प्रचार करे और छोटे भाई का फर्ज़ है कि वह साहित्य को प्रकाशित करके धर्म का अधिकाधिक प्रचार करे।

भाइयो ! हम तो वाणी के द्वारा ही उस माल का प्रचार कर सकते है, क्योंकि हमारे पास दाम नही है। तुम्हारी जेव मे तरावट है, अत तुम चाहो तो साहित्य के द्वारा भगवान् के माल का धुआँधार प्रचार कर सकते हो।

याद रखना, तुम जिन पदार्थो के पीछे हाथ धो कर पडे हो और भूख-प्यास आदि के कष्ट सहन करके भी धन कमाने मे रात-दिन लगे रहते हो, पता नही वे आगे चल कर तुम्हारे वनेगे या नही। किन्तु जो अपने धर्म को अपना लिया तो वह हर्गिज आपका साथ छोडने वाला नही। धर्म यहाँ भी साथ देगा और परलोक मे भी साथ देगा। वेटा सपूत होगा तो भले ही तुम्हारी जायदाद को सँभाल ले, अन्यथा तुम ने पच-पच कर जोडा और उसे उडाते देर नही लगेगी। मगर धर्म तो जन्म-जन्मान्तर मे भी आपका साथ छोडने वाला नही। फिर भी आप परिवार मोह मे इतने फँस गये हो कि धर्म को ही भुला वैठे हो। मगर धर्म को भुलाना अपने आप को भुला देना है, अपने भविप्य को अन्धकारमय वना देना है। अत एव आपको धर्मोन्नति की तरफ भी लक्ष्य देना चाहिए।

तो मैं जो राग आलाप रहा हूँ, इसे आपने सुन ही लिया है। किन्तु सुनने और सुनाने का प्रयोजन तो वास्तविक अर्थ मे तभी पूरा होगा जव आप साहित्य-प्रचार द्वारा धर्म की अधिक से अधिक प्रभावना करेगे।

साहित्य का वडा महत्त्व है। वह धर्म प्रचार का सर्वोत्तम साधन है। हमेशा कायम रहने वाली चीज है। जिस सस्था का साहित्य प्रकाशित नही होता, उसकी उन्नति भी नही हो सकती वह सस्था गहन अन्धकार मे ही पडी रहती है। तुम यह वात दिमाग से निकाल दो कि हमारा धर्म तो पचम काल के अन्त तक रहेगा ही, अत एव उसके लिए कुछ करने की आवश्यकता नही। इस भरोसे निश्चिन्त होकर मत वैठे रहो, क्योकि धर्म तो पगु है, वह चलाने से ही चलता है। धर्म सघ पर निर्भर है। 'न धर्मो धार्मिकैर्विना।' अर्थात् धर्मात्माओ के विना धर्म नही टिक सकता। यदि लौकाशाह जैसे वीर क्रान्तिकारी पुरुप पैदा न हुए होते तो क्या जड-पूजा से चेतन पूजा को समर्थन मिलता ? उनके धर्म प्रचार ने ही तो चेतन-पूजा को वल दिया। उस माई के लाल ने जनता मे अपूर्व क्रान्ति कर दी और लोगो को अन्धकार से निकाल कर प्रकाश मे खडा कर दिया। यद्यपि जडवादियो ने उन्हे जहर देकर मार दिया, वे मर गये और तुम्हारी दृष्टि मे वे मर गये, परन्तु वास्तव मे वे शरीर से मर गये, गुणो से नही मरे। उनका यशोमय देह आज भी जीवित है। आज उनका नाम प्रत्येक स्थानकवासी वच्चे की जीभ पर है। हाँ, जो धर्म की निन्दा और धर्म की हानि को सहन कर रहे है, वे अवश्य ही जीवित भी मरे हुए के समान हैं।

भगवान् के वचन सत्य हैं, अमिट है, शाश्वत हैं, तीन काल मे भी नष्ट होने वाले नही हैं। किन्तु कव ? जव धर्म को चलाने वाले, सही मार्ग दिखाने वाले पैदा होते रहेगे। इस प्रकार धार्मिक साहित्य का अधिक से अधिक प्रचार करना भी शासन को जीवित रखना है और उसकी वृद्धि करना है। अत एव आप लोग मिल कर

विचार करो कि किस प्रकार हम भगवान् के वचनो को ससार मे फैला सकते हैं ? हमारा धन कैसे सार्थक हो सकता है ? हम किस प्रकार प्रभु के ऋण से आशिक रूप मे भी छुटकारा पा सकते है ।'

सज्जनो ! खाने-पीने और मुकदमेबाजी मे धन का सदुपयोग नही है । धर्म-प्रचार मे लगा हुआ धन ही सार्थक होता है ।

कबीर ने कहा है कि इस माया-रूपी वृक्ष के दो ही फल लगते है— दीन-दुखियो को खिलाना या स्वय उपभोग मे लाना । अर्थात् धन या तो अपने काम आता है या पराये काम । यदि इस धन का सचय ही करते जाओगे और जमीन मे दफनाते हो जाओगे तो यह धन नरक मे ही ले जा कर छोडेगा ।

सज्जनो ! आज मुसलमानो और ईसाइयो ने अपने धर्म की पुस्तको का प्रत्येक भाषा मे अनुवाद प्रकाशित करके हरेक के हाथो मे पहुँचाया है, किन्तु जैन समाज ने इस ओर विशेष ध्यान नही दिया । हाँ, स्वर्गीय जैन दिवाकर जी ने अवश्य महावीर-चरित, निर्ग्रन्थप्रवचन और कुछ चरित बनाये है । स्व० पूज्य जवाहर लाल म० की किरणावलियाँ प्रकाश मे आई है और उपाध्याय कवि जी श्री अमर चन्द जी का भी कुछ साहित्य दृष्टिगोचर होता है, मगर यह साहित्य पर्याप्त नही है । अत एव इस ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है ।

एक पाकशास्त्री पिता ने सुन्दर-सुन्दर पकवान बनाये । जब रसोई बन कर तैयार हो गई तो उसने अपने लडके से कहा—देखो, तुम रसोई देखते रहना । मैं स्नान कर के अभी आता हूँ । लडके ने कहा—आप पधारिये, मैं बराबर रसोई की निगरानी करता रहूँगा ।

पिता को स्नान करने मे २०—२५ मिनट लग गये और पुत्र बैठा-बैठा देखभाल करता रहा। इतने मे वहाँ एक कुत्ता आ गया, बिना झोली का फकीर! उसे भी कही न कही जोगवाई मिल ही जाती है। वह कुत्ता डरता-डरता धीरे-धीरे रसोई घर की ओर जाने लगा, किन्तु लड़का बैठा-बैठा देखता रहा। उसने कुत्ते को भगाया नही। कुत्ते ने भोजन खाना शुरू कर दिया तब भी लड़का उसे देखता ही रहा। जब कुत्ता खा पीकर जाने ही वाला था कि पिता आ गया। उसने देखा—कुत्ते ने बहुत कुछ खा लिया है और कुछ बिखेर दिया है। तब अपने बेटे से कहा—बेटा, तूने यह क्या किया? मैं तुझे देख-भाल करते रहने के लिए कह गया था न? तूने कुत्ते को क्यो नही भगाया?

लड़का बोला—पिता जी, जब आपकी कुत्ते को भगाने की आज्ञा ही नही थी तो मैं क्या करता? आप तो सिर्फ देखते रहने के लिए कह गये थे सो मैं बराबर देखता रहा। मैंने आपकी आज्ञा का पूर्ण रूप से पालन किया है।

देख लिया आपने आज्ञा-पालन का नमूना! ऐसे सपूत को क्या उपमा दी जाय? उस मूर्ख को इतना तो सोचना था कि पिता के कहने का प्रयोजन क्या है? केवल आँखे फाड-फाड कर देखते रहने को कहा है या रक्षा करने को भी कहा है? परन्तु उस ने यह न सोच कर उलटे पिता को ही दोषी ठहराते हुए कहा—"इस मे मेरा क्या दोष है? आप हटाने को कह जाते तो मैं हटा देता।

सज्जनो! यदि ऐसे आज्ञाकारी लड़के मिल जाएँ तो बाप को अपनी किस्मत को ही रोना पड़ेगा। वास्तव मे जो पुत्र इशारे

से पिता के आशय को समझ लेता है, वही अपने घर की रक्षा कर सकता है।

तो आप लोगो को समझना चाहिए कि भगवान् महावीर का उच्च-कोटि का सिद्धान्त है। उन्होने बहुत सुन्दर रसोई बना कर रख दी है और बडी मिहनत से बनाई है। पिता जी ने कह दिया—बेटो, लुटेरो से इस को रक्षा करना। इस मे से किसी आवश्यकता वाले को देना जरूर, मगर लुटेरे या कुत्ते आवे तो उन्हे मत लूटने देना। याचक बन कर आये तो उसे अवश्य देना। कई दभी और पाखडी उसे छीनने के लिए आएँगे, मगर उन का मुकाबिला करना और इस रसोई की रक्षा करना। अब अगर हम भगवान् के इस आदेश का पालन नही करते तो अपने कर्त्तव्य से भ्रष्ट होते है और उनके उत्तराधिकारी होने की अयोग्यता को प्रमाणित करते है।

तो जब तुम्हारे पास दुकान मे बहुत माल है भगवान् का सचित किया हुआ तो अवश्य उसका प्रचार करना चाहिए। जो सुनते हो उस पर अमल करो। उसे यो ही उपेक्षा करके मत छोड दो। प्रचार के लिए यह समय बहुत अनुकूल है। साहित्य-प्रचार मे जितना धन लगाओ वह सार्थक होगा। वस्तुत इस से बढ कर धन की और क्या सार्थकता हो सकती है? अगर दूसरे कामो मे खर्च करते हो और साहित्य प्रचार मे नही करते तो छोटे भाई कहलाने के अधिकारी नही बन सकते। यो तो कई लोग कहते है महाराज, कुछ सेवा फरमाइए, किन्तु हमे आवश्यकतानुसार रोटियाँ और कपडे मिल जाते हैं, फिर हमे क्या सेवा चाहिए? अगर सेवा करनी है तो तन, मन, धन से शासन की सेवा करो। आज जिन-शासन को

तुम्हारी सेवा की माँग है, आवश्यकता है। आप शासन देवता और शासन को मानते हो, परन्तु चन्दन या तेल चढाने से या फूल चढाने से उन की सेवा नही होगी । शासन देवता की पूजा का तरीका तो कुछ और ही है। शासन देव की पूजा शासन के प्रचार से होती है, प्रभावना से ही हो सकती है। जिन-शासन के साहित्य का दिल खोल कर प्रचार करने से ही शासन की सेवा और रक्षा होगी ।

वह अवसर वार-वार मिलने वाला नही है। जिस की कोठी मे अनाज होता है, उसे फिक्र नही होती। पर वह अनाज कब तक रहेगा ? वह क्षीण होते-होते समाप्त हो जायगा। पानी निकालते निकालते एक दिन कुआँ भी खाली हो जाता है । अत एव मेरे सुनाने का तुम्हारे हृदय पर अगर कुछ असर हुआ है तो जल्दी से जल्दी उदारतापूर्वक भगवान् के शासन की सेवा करो । मैं अपने लिए कुछ नही चाहता, शासन की सेवा चाहता हूँ। शासन की प्रभावना के लिए मुझे कहना ही चाहिए ।

भगवान् ने अर्थ रूप मे प्रवचन फर्माया और उसे गणधरो ने शब्द रूप मे गूँथ दिया। तत्पश्चात् आचार्य-परम्परा से वह हम लोगो तक आ पाया। आज वही परमागम हमारा पथप्रदर्शन कर रहा है, हमे यथार्थ तत्त्व का वोध दे रहा है और हमारे लिए दिव्य ज्योति का काम कर रहा है। इस प्रवचन की रक्षा के लिए प्राचीन कालीन स्थविरो ने वडी-वडी विपत्तियाँ सहन की हैं, विकट तपस्याएँ की है। तव कही इस की रक्षा हो सकी है। अगर उन्होंने आप की तरह उपेक्षा की होती तो हमारी क्या दशा होती ? हम अन्धकार मे भटकते रहते और सही राह पाना कठिन हो जाता। हमें ठीकरा ले कर दर-दर भटकना पडता और भूखा ही रहना

पडता। किन्तु उन प्र वचन-भक्त महान् स्थविरो के द्वारा किये हुए प्रचण्ड पुरुषार्थ की वदौलत तुम वड़े भाग्यशाली हो और धनकुवेर के पुत्र हो। तुम्हे किसी के सामने हाथ फैलाने की आवश्यकता नही है। यही नही, तुम आज इस स्थिति मे हो कि दूसरे याचको को मुक्त हस्त से दान दे सकते हो। अत एव अपने भाग्य की सराहना करने के साथ अपने कर्त्तव्य का भी पालन करो। अपने उत्तरदायित्व को भी पूरा करो। पूर्वाचार्यों के ऋण से मुक्त होने का यत्न करो। जिस ने यथागक्ति शासन की सेवा नही की, वह मनुष्य-ही क्या है ?

वहिनो से भी मेरा कहना है कि तुम भी शासन रूपी कल्पवृक्ष का सिचन करो जिस से तुम्हारा धर्म उन्नत हो।

मैं कह रहा था कि हम लाहौर से गुजरावाला जा रहे थे तो रास्ते मे मरीदकी मडी के गुरुद्वारे मे ठहरे। वहाँ गुरु ग्रन्थ साहव का पाठ करने वाले को हम ने 'गोहरे वे वहा' नामक पुस्तक दी और कहा—'इस मे अहिसा का मडन और मास का निपेध किया गया है। इस प्रकार करना।' तव उसने कहा—'मास तो हमारे गुरु भी खाते है।' यह सुन कर मै दग रह गया। जव गुरुओ का ही यह हाल है तो गिप्यो को क्या खाक उपदेश लगेगा! जेन कोम इस वात से वची है, यह त्यागी गुरुओ के उपदेश का ही परिणाम है। इस लिए मै कहता हूँ कि जिस उपदेग की वदौलत तुम पाप से वचे हो, उस उपदेग को सर्वत्र फैलाओ। यही शासन की सर्वोत्तम सेवा है। इस सेवा से तुम स्वय ससार-समुद्र से तिर जाओगे और दूसरो को भी तिरने का मार्ग मिलेगा।

व्यावर]
११-१०-५६]

त्रिकालज्ञ-प्रभावना

उपस्थित महानुभावो !

कल वतलाया गया था कि धर्म की उत्तरोत्तर वृद्धि करने के लिए और धर्म को विश्व मे विश्रुत एव विख्यात करने के लिए शास्त्रकारो ने जो आठ प्रभावनाएँ वतलाई है, उनमे एक व्रत-प्रभावना भी है। यह भी कहा जा चुका है कि कठोर से कठोर व्रत धारण करने से आत्म-वल की वृद्धि होती है तथा उन कठोर व्रतो एव अभिग्रहो को देख कर ससार धर्म की तरफ आकर्षित होता है ।

यह निर्विवाद है कि जिस दुकान मे माल होता है, ग्राहक वहाँ अवश्य पहुँच जाते है। भले ही प्रारम्भ मे परिचय न होने से न पहुँचे किन्तु परिचय प्राप्त करने पर तो पहुँच जाते है। वाहर कितने ही ढोल पिटवाए जाएँ, विज्ञापन किया जाय, अखवारो मे छपवाया जाय, किन्तु दुकान के अन्दर माल नही है तो उस विज्ञापनवाजी का कुछ भी प्रभाव पडने वाला नही। यही नही, ऐसा करना ग्राहको को धोखा देना है और धोखा देने वाले को अन्त मे अपमान का भाजन वनना पडता है। व्यापार तो तभी चमकेगा जव दुकान मे सामान हो, दिल मे ईमान हो और एक जवान हो । इस त्रिवेणी सगम के विना दुकान नही जम सकती ।

जैसी आपकी सासारिक दुकान है, वैसे ही हमारी आध्यात्मिक जगत् की दुकान है। इसमे आत्मसाधना के कठोर व्रतो का, कठिन से कठिन अभिग्रह आदि का माल भरा पडा है । इस माल को लेने के लिए भी दुनिया अपने आप आकर्षित होती है और

अच्छे से अच्छा माल लेती है। माल के इच्छुक ग्राहक अपने आप दुकान का पता लगा लेते है। दुकान को विज्ञापन करने के लिए कही जाना नही पडता ।

समुद्र कब पत्र-पत्रिका या आमत्रण भेजता है नदियों और नालो को कि तुम मेरे पास आओ और मुझ मे समा जाओ ? मगर उसका हृदय अतिविशाल है और वह सब को गले लगा लेता है । अत सभी नदी-नाले सहज भाव से उसमे समा कर अपने अस्तित्व को, अपने व्यक्तित्व को खोकर भी विशालता प्राप्त कर लेते हैं।

यद्यपि समुद्र मे पहले ही अथाह और अपरिमित जलराशि विद्यमान है और उसे अधिक जल की तृष्णा नही है, फिर भी उसने किसी को इकार करना सीखा ही नही। सीखा है तो केवल यही मन्त्र कि सब को स्थान देना और किसी को इधर-उधर न होने देना। नदी-नाले समझते है कि समुद्र विशाल है और वह हम सब को समा लेगा, अपनी विशालता प्रदान कर देगा, तो क्यो न बड़े की ही शरण मे जाएँ ?

जिस वृक्ष के फल मधुर और छाया घनी होती है, वह भी किसी को आमत्रण नही देता कि तुम मेरे पास आओ । पर फलो का रसास्वादन करने के इच्छुक पक्षी या मनुष्य अपने आप ही उसे खोज कर चले जाते हैं।

कुआँ और बावडी ने किसके घर जा कर अनुरोध किया है कि तुम आना और हमारे शीतल और मधुर जल का पान करना ? मगर जल-पिपासु पशु, पक्षी और मानव अपने आप ही उन्हे खोज कर पहुँच जाते है और अपनी आवश्यकता की पूर्त्ति कर लेते है ।

इसी प्रकार जिसके पास तप, सयम, अभिग्रह, व्रत आदि का लोकोत्तर जल है, उसके पास जाकर कौन मूर्ख होगा जो आनन्द नही उठाएगा ? तो धर्म की वृद्धि करने के लिए हमारे जीवन मे व्रतो और अभिग्रहो का पानी होना चाहिए। जल से परिपूर्ण सरोवर के पास प्राणी स्वय चले जाते है ; किन्तु सूखे सरोवर के पास कोई नही फटकता और यदि भूल से चला भी जाता है तो निराश होकर पैर थका कर वापिस लौटता है। जल से पूर्ण जलाशय के पास भी तभी तक प्राणी जाते है जब तक उसमे जल भरा रहता है। पानी सूख जाने पर कोई नही जाता।

यही बात हमारे जीवन के सम्बन्ध मे भी लागू होती है। जब तक इसमे त्याग है, वैराग्य है, सयम है, व्रत हैं और कठोर अभिग्रह है, तब तक तो ससार उस साधु पुरुष के चरणों मे झुकता है और उसके चरणो की धूलि को अपने मस्तक पर चढाता है और ऐसा करके अपने आपको कृत-कृत्य मानता है, किन्तु जब वह सरोवर त्याग-वैराग्य एव तप-सयम के जल से रहित हो जाता है तो उसे त्याग देता है। अत एव हमें अपने जीवन को मधुर फल वाले वृक्ष के समान बनाना है, जिससे लोग इस जीवन से मधुर फल प्राप्त कर सकें।

जो वृक्ष ठूँठ बन गया है, उसमे न मधुर फल देने की और न शीतल छाया देने की ही शक्ति रही है। याद रखिए, उसी सेठ के यहाँ मुनीम-गुमाश्ते आश्रय पाते हैं और उसी के व्यापार को अपनी अक्ल से चमकाते है जिसके यहाँ माल होता है तिजोरी में। उसके पास कई लोग आते है और उसकी आजज़ी करते हैं—सेठ साहब, हमे भी सेवा का कोई लाभ दीजिए। परन्तु जिसका दिवाला निकल

चुका है, जो स्वय ही मोहताज है, उसके यहाँ कोई भी उम्मीदवार सिफारिश लेकर जाने की मूर्खता नही करता। यहाँ तक कि पहले के मुनीम-गुमाश्ते भी सेठ से पूछे विना ही दूसरी जगह नौकरी कर लेते हैं।

इसी प्रकार जो व्यक्ति अपने गुणो का दिवाला निकाल देता है, इन्द्रियलोलुप वन जाता है और साधु का वेष पहन कर भी चोर-डाकुओ जैसे काम करता है, तो उसको यह पोल चलने वाली नही है। आज नही तो कल उसके पाप का भडा फूटे बिना नही रहेगा।

मनुष्य छिप-छिप कर कितने ही दाव-घात खेले और चतुराई करे, मगर उसकी चालाकी छिपी नही रहती। कहा भी है—

पाप छिपाया ना छिपे, छिपे तो मोटा भाग।
दावी दूबी ना रहे, रुई लपेटी आग॥

सज्जनो, यदि उस आग को पहले ही समाप्त कर दिया होता तो पडोसियो को जलने की नौवत ही न आती। मगर दावादूवी करने से वह अग्नि दूसरो को भी नष्ट कर देती है।

जव फोडा अन्दर ही अन्दर सडता रहता है और उसका आपरेशन नही होता तो वह नासूर का रूप धारण कर लेता है। और फिर वह शरीर को छलनी-छलनी वना देता है। इसी प्रकार हमारे छिपाये हुये अपराध, दोष, गुनाह, पाप हमारे जीवन को अस्त-व्यस्त और खोखला वना देते है।

यदि पाप छिपाने से छिप सकते होते तो नि सकोच हो कर पाप करने मे भी सकोच करने की क्या आवश्यकता थी। सभी समझ लेते कि हमारे पास तो पाप छिपाने का साधन विद्यमान है। परन्तु याद रखिए, पाप छिपाने से छिपने वाले नही है। अगर तीव्र पुण्य

का उदय हो तो कुछ काल तक भले ही छिपे रहे, मगर आखिर तो वे प्रकट हो कर ही रहेगे। रुई मे लिपटी हुई आग समय पर भडकेगी उग्र रूप धारण करेगी और पडोसियो को भी भस्म कर देगी।

मालूम होते ही आग बुझा दोगे तब तो वह वही शान्त हो जायगी। अगर उसमे ईंधन डालते जाओगे और अपनी लीडरी जमाने के लिए उसे प्रोत्साहन देते जाओगे तो एक दिन वह अडौस-पडौस वालो को भी जला कर ही रहेगी। उस आग से सब का मुँह काला होता है, समाज कलकित होता है और ससार मे हाहाकार मचता है।

दुनिया कहती है—ओहो! इतना बडा साहूकार और उसका भी दिवाला निकल गया? हाँ भाई, जो अपनी शक्ति का विचार न करके व्यापार करेगा, अधाधुँधी मचाएगा और ध्यान नही रक्खेगा, उसका दिवाला निकले बिना नही रहेगा।

व्यापारी येन केन प्रकारेण परिश्रम करके पैसा जोड़ता है, प्रसिद्धि प्राप्त करता है, किन्तु तनिक-सी लापरवाही करने से चोर-डाकू उसके धन को ले जाते है। इसी प्रकार साधक के द्वारा वर्षो तक किया हुआ जप-तप पाप के बवडर मे क्षण भर मे उड़ जाता है। अत एव साधक को निरन्तर सावधान रहना पडता है। बेले-तेले की तो बात ही क्या, जिन्होने हजारो वर्षो तक बेले-बेले का पारण किया, उनका भी क्षण भर मे दिवाला निकल गया। वे मर कर सीधे सातवे नरक मे पहुँचे।

जो योगी था वह तो तीन दिन का राज्य-सुख भोग कर और इन्द्रियविषयो का सेवन करके नरक मे चला जाता है और भोगी

योगी वन कर केवल तीन दिन की सावना-मात्र से सर्वार्थसिद्धि विमान मे जा पहुँचता है ।

इस लिए ज्ञानी पुरुष कहते है—भोग की आग से दूर रहो, अन्यथा जल जाओगे, फुंक जाओगे या मुँह तो काला हो ही जायगा, किन्तु मनुष्य ठोकरे खाता हुआ भी विषय की अग्नि से पीछे नही हटता और अन्त मे उसका पतन हो जाता है । अत एव भद्र पुरुपो ! मै तो कहूँगा कि हमे अपने जीवन को अत्यधिक सँभाल रखने की आवश्यकता है । आज पहले का वह जमाना नही जिसमे पोल चल जाती थी । आज का ससार जागरूक है और वह अपमानजनक घृणित वातो को सहन करने के लिए तैयार नही है ।

आप जानते है कि प्रत्येक वस्तु अपनी-अपनी जगह ही शोभा देती है । पगडी सिर पर ही शोभा देती है और कुर्त्ता अपने स्थान पर । इसके विपरीत आचरण करने से लोग हँसते है और पागल कहते है । इसी प्रकार गृहस्थ गृहस्थ की जगह और साधु साधु की जगह ही शोभा देता है । जिसने जिन व्रतो को अगीकार किया है उसे उनका प्रामाणिकता के साथ पालन करना चाहिए । जीवन मे आत्म-सावना के लिए कठोर तपस्या होनी चाहिए । पूँजी को वढा न सको तो घटने तो मत दो । कम से कम मूल पूँजी को सँभाल कर रक्खो । मूल ही नष्ट हो गया तो व्याज कहाँ से आएगा ?

हमारे पूर्वजो ने व्रतो का पालन करके अपनी आत्मा को भी प्रभावित किया और जगत् को भी धर्म की ओर आकर्षित किया है । उन्होने वडी-वडी तपस्याएँ की है, कठिन अभिग्रह धारण किये है । अगर हम आज नये-नये लोगो को धर्म की ओर आकृष्ट नही भी कर सके तो भी कम से कम ऐसा कार्य तो न करे कि पहले वालो की श्रद्धा नष्ट हो जाय । हमे पूर्वजो की सचित पूजी की रक्षा

करनी ही चाहिए। उसके लिए जिस त्याग की आवश्यकता हो, वह त्याग करने मे पश्चात्पद नही होना चाहिए । इसके लिए आवश्यक है कि अनेक प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान करो, व्रत-नियम धारण करो और ऐसा करके अपने जीवन को परिमार्जित करो और दूसरो के सामने अपने जीवन का उच्चादर्श उपस्थित करो ।

शास्त्रकारो ने छठी प्रभावना त्रिकालज्ञ-प्रभावना बतलाई है। उच्च कोटि के साधक यद्यपि आत्मविशुद्धि के लिए ही साधना करते है, परन्तु आत्मा की विशुद्धि के फलस्वरूप उन्हे अनेक प्रकार की अलौकिक यौगिक शक्तियाँ अनायास प्राप्त हो जाती है। तो भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान की अनेक विशिष्ट बातो को जान कर उनके द्वारा शासन का उद्योत करना त्रिकालज्ञ-प्रभावना है । इस प्रभावना के अनेक उपाय हैं। खगोल भूगोल, ज्योतिष, निमित्त, नक्षत्र आदि के आश्रय से जन्म-मरण, सुख-दुःख, हानि-लाभ आदि का बोध प्राप्त करना, और उसका धर्म की प्रभावना मे उपयोग करना, इसी के अन्तर्गत है ।

सज्जनो ! जिन चीजो का मैं अभी तक विरोध करता आ रहा हूँ, आज उन्ही का समर्थन करने जा रहा हूँ, जिनका खण्डन करता रहा उनका मडन करूँगा, ऐसा आप सोचते होंगे । आप कहेंगे कि आज महाराज यह क्या कह रहे है ? पर यही तो जैन का वैन है और इसी रहस्य को समझने की आवश्यकता है ।

शास्त्रकार कहते है—साधु को आकाशगत भावो का भी ज्ञान होना चाहिए, ज्योतिष का भी वेत्ता होना चाहिए । सूर्य प्रज्ञप्ति और चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्रो मे सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारागण

के विषय मे विशद वर्णन किया गया है। यद्यपि अन्य शास्त्रो मे भी इन विषयो का वर्णन मिलता है, किन्तु यह दो शास्त्र मुख्य रूप से इसी विषय के प्रतिपादक है। यदि एकान्तत साधु को इन विषयो का ज्ञान वर्जित होता तो ऐसे शास्त्रो का निर्माण ही क्यो किया जाता अत एव साधु को इस विषय की भी गुरुगम से जानकारी हासिल करनी चाहिए। हाँ, अगर समझने मे गल्ती रह गई और गणित का मिलान वरावर नही किया तो गडवड हो जाती है। जो शस्त्र अपना रक्षक है, उसका यदि उपयुक्त रीति से उपयोग न किया जाय तो सहारक वना सकता है।

सज्जनो! ज्योतिष सीख लेना कोई साधारण वात नही है। अगर ज्योतिप के गणित को ठीक तरह समझ लिया जाय तो निशाना खाली जाने वाला नही है। इसमे गणित की वहुत अधिक आवश्यकता होती है। जो गणित मे कुशल होगा वही ज्योतिप में निष्णात हो सकेगा। स्वर्गीय पूज्य सोहन लाल जी महाराज ज्योतिप विद्या के पारगामी थे। उन्होने तीस वर्ष तक एकान्तर तप किया। वे कमरे मे वैठे हुए ही अपने निशान के द्वारा ज्योतिप की वात समझ लेते थे। रात्रि को जव समय देखना होता तो वे कहते—किसी फूल का नाम लो। फूल का नाम लेने पर वे समय निकाल कर वता देते थे। उन्होने जैन शास्त्रानुसार जैन-पत्रिका भी वनाई थी। मगर उस समय चारो ओर सम्प्रदाय-वाद का वोल वाला था, अत एव जैन-समाज ने उसे अपनाया नही, मगर आज उसी को अपनाने के लिए सव तैयार है। क्योकि अन्तत सत्य को अपनाये विना काम नही चलता।

तो साधु को भूगोल की भी जानकारी होनी चाहिए, अर्थात् जमीन से सम्वन्ध रखने वाली जो जो वाते है उनका भी ज्ञान होना

चाहिए। इसके लिए जबू-द्वीप-प्रज्ञप्ति आदि सूत्रो का अध्ययन करना चाहिए। इतना ही नही, साधु मे यदि शक्ति है, गम्भीरता है, योग्यता है तो उसे हानिलाभ, सुख-दु ख, जन्म-मरण का भी ज्ञान होना चाहिए। मगर शर्त यह है कि यह तलवार उसी के हाथ मे दी जाती है जिसे चलाना आता हो। अगर तलवार बच्चे के हाथ मे दे दी जायगी तो नुकसान होने की सभावना रहेगी। वह अपने हाथ से अपना ही नुकसान कर लेगा। तलवार सँभाल कर रखने के समय सँभाल कर रक्खी जाती है और मौका आने पर उससे काम भी लिया जाता है। यह समझना मूर्खता है कि तलवार हाथ मे आ गई तो वह अन्धाधुन्ध चला कर मारने-काटने के लिए ही है।

तो भूगोल खगोल, ज्योतिष आदि विद्याएँ भी उपयुक्त पात्र के पास हो तो उपयोगी होती है। इनके अध्ययन से अनेक बातो का पता चल जाता है। यद्यपि हानि-लाभ और जन्म मरण कर्मो के फल है, किन्तु उन्हे भी शास्त्र मे समझा जा सकता है। जो रोग को पहचान लेता है, वह उसका प्रतीकार भी कर सकता है। फिर तो अपनी-अपनी किस्मत! अगर डाक्टर होशियार है तो कई रोगियो के रोग दूर हो जाते है, और यदि डाक्टर बीमारी को जानने वाला न हो तो वह डोज पर डोज देता भी जायगा तो भी कुछ नही होगा।

तो सुख-दु ख यद्यपि कर्मफल है किन्तु जो शास्त्रो का ज्ञाता है, जिसकी आत्मा निखरी हुई है, वह जान लेता है कि भूत काल मे उसके साथ कैसी गुजरी है और आगे क्या गुजरने वाला है? क्या हानि-लाभ होने वाला है?

तो आप को मालूम होना चाहिए कि ये शास्त्र वह औपधालय हैं जिनमे प्रत्येक रोग की दवा मौजूद है, किन्तु उन दवाओ का जानने वाला डाक्टर होना चाहिए और दवा लेने वाला परहेज़-वाला चाहिए ।

साधु भूगोल-खगोल आदि विद्याओ का जानकार तो हो किन्तु गभीरता-पूर्वक उनको पेट मे रखने की क्षमता भी उसमे होनी चाहिए । यह विद्याएँ किसी को मिटाने के लिए, चढाने के लिए या अपनी मानप्रतिष्ठा के लिए न सीखी जाएँ । यह जानने के लिए और अवसर आने पर सघरक्षा आदि के निमित्त उपयोग मे लाने के लिए ही सीखनी चाहिएँ ।

आप प्रश्न कर सकते है कि अगर इन्हे काम मे नही लाना है तो सीखने से क्या लाभ है ? इस प्रश्न का उत्तर यद्यपि आ चुका है तथापि उसका स्पष्टीकरण यह है कि इन विद्याओ का प्रयोग करने का न एकान्त निषेध और न एकान्त विधान ही है । इन्हे काम मे लिया जा सकता है किन्तु ऐहिक प्रयोजनो के लिए नही । जब सघ पर और धर्म पर विपत्ति आ पडे तो उसके प्रतीकार के लिए इन विद्याओ का प्रयोग करके भी धर्म, समाज और सघ की रक्षा करनी चाहिए । ऐसे समय के लिए यह सम्पत्ति सचित करनी चाहिए । यदि इन विद्याओ को सीख कर वह मान-प्रतिष्ठा की आकाक्षा करता है और लोकैपणा के लिए प्रयोग करता है तो साधु अपने पथ से भ्रष्ट होता है ।

आप को मालूम होना चाहिए कि जैन इतिहास मे विष्णु कुमार मुनि सघरक्षा के लिए प्रख्यात हुए है । चक्रवर्ती राजा ने अपने ब्राह्मण प्रधान को तीन दिन के लिए राज्य दे दिया था । उस ब्राह्मण

ने राजा वनते ही ऐलान करवा दिया कि सव जैन साधु मेरे राज्य की सीमा से वाहर हो जावे। उस समय प्रश्न खडा हो गया कि साधु कहाँ जावे ? क्या समुद्र मे जा कर डूव जाएँ ? इस प्रकार जव सघ पर और धर्म पर आफत के वादल टूट पडे तो विष्णु कुमार मुनि ने अपनी विद्या का प्रयोग करके दुष्टो से धर्म एव सघ की रक्षा की। उस समय विष्णु कुमार मुनि जगल मे तपस्या कर रहे थे और आत्म-साधना मे निरत थे। सघ पर विपदा आई और रक्षा का कोई साधन न रहा। ब्राह्मण धर्मद्वेषी था और साधुओ को सकट मे डालना चाहता था। तव सघ इकट्ठा हुआ। उसने निश्चय किया कि इस समय विष्णु कुमार के सिवाय सघ की रक्षा करने मे कोई समर्थ नही है। वह राजा के छोटे भाई थे। अत एव उन्हे वुलवाया गया। साधु उन्हे वुलाने के लिए जगल मे गये। उन से निवेदन किया—महाराज, आपको सघ ने आमन्त्रित किया है। सघ घोर सकट मे है और रक्षा के समस्त द्वार वन्द मालूम होते है। इस समय आपकी नितान्त आवश्यकता है। आप पधारे और सघ का सकट दूर करे। अगर आप न पधारे और रक्षा नही हुई तो धर्म का टिकना मुश्किल हो जाएगा।

मुनि विष्णु कुमार ने यह अभ्यर्थना सुनी और कहा—इस समय मै योग-साधना मे व्यस्त हूँ और चल नही सकता। क्षमा कीजिए।

साधु लौट आये। उन्होने गुरु से कहा—वे अपनी साधना मे व्यस्त है। आ नही सकते।

तव आचार्य ने सघ की ओर से पुन मुनियो को उनकी सेवा मे भेजा। इस वार कहलवाया—सघ यह पूछना चाहता है कि आप

की साधना वड़ी है या घोर सकट के समय सघ की रक्षा वडी है ? एक ओर एक व्यक्ति की साधना है और दूसरी ओर सघ के अस्तित्व की नाजुक समस्या है। सघ रहता है तो व्यक्ति टिक सकता है। सघ ही नही रहेगा तो व्यक्ति कैसे टिकेगा ?

मुनि यह सदेश लेकर फिर विष्णु मुनि के समीप पहुँचे। उन्होने आचार्य महाराज और सघ का निवेदन सुनाया और कहा—आप यह वतलाइए कि व्यक्ति की साधना वडी है या सघ की साधना ? जो सघ की आज्ञा न माने उसे क्या दण्ड आता है ?

यह प्रश्न सुनते ही मुनिराज की आँखे खुल गई। आखिर वे विद्वान् थे। उन्हे तत्काल अपने कर्त्तव्य का भान हो गया। उन्होने विचार किया—वास्तव मे वात ठीक है। व्यक्तिगत साधना का परित्याग करके भी मुझे प्रथम सघ की रक्षा करना चाहिए।

वे उसी समय योग-साधना त्याग कर गुरु के पास आए। अपनी गलती के लिए क्षमायाचना की। उन्होंने राजा के पास जाकर कहा—यह तुमने क्या किया ? क्या सोच कर यह आज्ञा घोषित कर दी ? साधु छह खण्ड से वाहर जाएँ तो कैसे जाएँ, और कहाँ जाएँ ?

राजा ने कहा—मैने तीन दिन के लिए नमूचि को राज्य दे दिया है। वचनवद्ध होने से विवश हूँ।

तव मुनि नमूचि के पास पहुँच कर वोले—हम लोग कहाँ जाएँ ? कोई जगह हम मुनियो के रहने के लिए भी तो होनी चाहिए।

नमूचि ने राजा का भाई समझ कर और विष्णु कुमार मुनि के प्रभाव से प्रभावित हो कर केवल तीन पैर जगह दी।

विष्णु मुनि विक्रियालब्धि के धारक थे । अत एव उन्होने महान् रूप धारण करके दो पैर मे सारी पृथिवी नाप ली । फिर कहा—बता, तीसरा पैर कहाँ रक्खूँ ?

नमूचि हक्कावक्का हो गया । जगह बतलावे तो कहाँ बतलावे ? तब मुनि ने तीसरा पैर उसके सिर पर रख कर कहा—दुष्ट ! तुझे राज्य दिया गया था तो तेरे आराम के लिए दिया गया था, न कि सन्त जनो को कष्ट देने के लिए ।

नमूचि मर गया और नरक मे गया । इस प्रकार विष्णु कुमार मुनि ने सघ और धर्म की रक्षा की । यह सब करने मे मुनि को चरित्र मे जो दोप लगा, उसे दूर करने के लिए उन्होने प्रायश्चित्त किया और शुद्धि की । अत एव वे आराधक हो गये ।

सज्जनो ! उन्हे जो दोष लगा सो तो दोष ही है, परन्तु उसके सिवाय दूसरी कोई गति ही नही थी । दोष लगा कर उन्होने तात्कालिक घोर सकट को ही नही टाल दिया वरन् भविष्य के लिए भी एक ऐसा उदाहरण उपस्थित कर दिया कि कोई शासक धर्मसेवी सन्तो से इस प्रकार की छेडछाड न करे और धर्म की जडे उखाडने का प्रयत्न न करे ।

आप जानते ही है कि जो खर्च किया जाता है वह तो खर्च ही है । मगर एक खर्च तो शराब-खोरी मे, जुए मे, वेश्यागमन मे और निरर्थक हिसा मे किया जाता है और दूसरा खर्च कुटुम्ब के भरण-पोषण मे किया जाता है , समाज और धर्म की रक्षा के लिए किया जाता है । तो खर्च-खर्च मे भी कितना अन्तर होता है ? एक खर्च करने वाला गुडा कहलाता है और दूसरा खर्च करने वाला शरीफ कहलाता है ।

तो आशय यह है कि साधु को इन उपरोक्त विद्याओ का ज्ञाता होना चाहिए और समय आने पर प्रयोग भी करना चाहिए, पर यो ही दुकानदारी जमा कर नही बैठ जाना चाहिए। जानकार साधु समय पर धर्म से विचलित होने वाले सघ की रक्षा कर लेते है।

महाराजा चन्द्रगुप्त ने स्वप्न मे बारह फणो वाला नाग देखा तो भद्रबाहु स्वामी ने उस का फल बतलाते हुए कहा—भविष्य मे द्वादश-वर्षीय भयकर अकाल पडने वाला है। और जब वह अकाल पडा तो इतना भयानक और उग्र था कि उस समय हीरे-पन्ने देने वाले तो बहुत थे, मगर ज्वार देने वाला कोई नही मिलता था, जिन के पास लाखो-करोडो का धन था, उन के लिए भी अन्न मिलना कठिन था। जब उन का ऐसा हाल था तो साधुओ का क्या हाल हुआ होगा? उन्हे ४२ दोष टाल कर आहार लाना पडता है और पैसा उन के पास होता नही।

जैसे-तैसे भीषण दुष्काल की समाप्ति हुई। एक दिन एक महान् तपस्वी तथा ज्योतिष विद्या के ज्ञाता मुनि किसी सेठ के घर गोचरी के लिए गए। मगर योग नही मिला। मिलता भी कैसे? कुएँ मे पानी हो तो भरने वालो को मिले और कुआँ ही सूखा हो तो कैसे मिले? तुम्हारे घर मे हो तो हमारे पात्रो मे आवे। तुम्हारे घर मे न हो तो हमे कहाँ से प्राप्त हो?

साधु के सम्बन्ध मे कहा गया है कि जहाँ तेरह बातो का योग हो, वहाँ उसे चौमासा करना चाहिए। उन मे एक यह भी है कि साधु वहाँ चातुर्मास करे जहाँ श्रावको के घर मे पर्याप्त अन्न हो।

इस प्रकार ज्ञानी पुरुषो ने भी हमारा ख्याल रक्खा है। उन्हो ने हमे रवड का खिलौना नही समझ लिया था।

हाँ, तो वे मुनिराज उस लम्बी-चौडी हवेली मे, जिस मे सेठ का विशाल परिवार रहता था, पहुँच गये। सेठानी ने रोटियाँ वना कर रक्खी थी। महात्मा को आते देखा तो परिवार वाले उठ खड़े हुए, स्वागत किया। कहा—महाराज, आप ने इस गरीव की झोपडी को अपनी चरणरज से पावन कर के वडी कृपा की।

इस प्रकार वचन से तो महात्मा का समुचित सत्कार किया, किन्तु आहार ग्रहण करने के लिए विनति नही की। तव महात्मा ने ही पूछ लिया—क्या कुछ जोगवाई है ?

सेठ-सेठानी की आँखे डवडवा आई। उन्हों ने दु खित स्वर मे कहा—महाराज, जोगवाई तो है, सव कुछ सूझता है, देने की भावना भी प्रवल है, किन्तु महाराज ! इस समय देने का अवसर नही है। गुरु देव ! भावना होने पर भी वहराएँ तो क्या वहराएँ ? हीरा, पन्ना, माणक मोतियो की वोरियाँ भरी पडी है, किन्तु अनाज की कोठी खाली हो गई है। महँगे से महँगा अनाज खरीदने को तैयार हैं किन्तु वह भी तो नही मिलता। महाराज ! यह भोजन, जो तैयार है, आप के योग्य नही है, क्योकि इस मे जहर मिला है। अव भूख सहन नही होती। अत एव विप-मिश्रित रोटियाँ खा कर मर जाना ही श्रेयस्कर समझा है। अन्न दाता, हम ने एक जून खा कर कई दिन व्यतीत किये और आधा पेट भर कर भी वहुत दिन गुजारे, मगर अव आधा पेट भरने को भी अन्न मयस्सर नही है। अत एव आप के भक्तो को मर जाने के अतिरिक्त और कोई चारा ही नही रह गया है।

यह दु खद स्थिति देख कर मुनिराज का दिल दहल गया। वह सोचने लगे—ओह, कितनी भयानक स्थिति है ! कितने नौ-निहाल भूख-से पीडित हो कर काल-कवलित हो गये, कितने हड्डियो का ढाँचा-मात्र रह गये, फिर भी अकाल पिण्ड नही छोड रहा है। जव ऐसे-ऐसे धनाढ्यो की यह स्थिति है तो वेचारे गरीवो का क्या हाल होगा ? वे तो कीडे-मकौडो की तरह मर रहे होगे !

सज्जनो ! अभी कुछ वर्ष पूर्व वगाल मे अकाल पडा तो मालूम हुआ कि वहाँ लाखो आदमी भूख से तडप-तडप कर मर गये। वास्तव मे भूख के समान भयकर यातना दूसरी नही है।

तो वह दर्दनाक दृश्य देख कर मुनिराज को वहुत विचार हुआ कि अन्न के अभाव मे आज यह पूरा का पूरा परिवार अपने प्राणो की आहुति दे देगा। सारा घर श्मशान वन जायगा।

मुनिराज वडे योगी और तपस्वी थे। उन्होने ज्योतिषज्ञान के वल से उपयोग लगा कर देखा कि यह सिलसिला कब तक चलने वाला है ? उन्हे पता लगा कि दुष्काल समाप्त होने वाला है और विदेश से अनाज से भरे जहाज आ रहे है।

तव उन्हो ने सेठ से कहा—सेठ जी, मरने का प्रयत्न मत करो। आत्म-घात मत करो। आत्म-घात महापातक है और हद दर्जे की कायरता है। साहस-पूर्वक कठिनाइयो का सामना करने मे ही जीवन की सार्थकता है। यह जीवन यो अन्त कर देने के लिए नही है। इस प्रकार निराश, हताश हो कर आत्म-घात करना जन्म-मरण की शृखला वढाना है। आग मे जल कर भस्म हो जाना, कुआँ-वावडी मे पड़ कर प्राण त्याग देना, फाँसी लगा कर मर

जाना, और जहर खा कर जीवन का खात्मा कर देना, यह सव आत्म-घात है और यह अज्ञानियो का मरण है।

सेठ ने कहा—इस के सिवाय और कर ही क्या सकते है? यह आँखे नन्हे वच्चो को भूख से तडपता और विलविलाता नही देख सकती। कहाँ तक देखे?

मुनिराज ने धैर्य वँधाते हुए कहा—भाई, घवराओ मत। तुम्हारे सुख के दिन नही रहे तो दु ख के दिन भी नही रहेगे। विदेश से अन्न के भरे जहाज आ रहे है और वे वन्दरगाह पर पहुँचने वाले ही है। थोडे दिनो मे अन्न ही अन्न दिखाई देगा। अव इस स्थिति का अन्त आ रहा है, अत धैर्य खोने जैसी वात नही है। जैसे-तैसे कुछ दिन और पार कर लो।

सेठ को सान्त्वना मिली और उसने अपना भयानक सकल्प त्याग दिया। जहाज आ गये और अन्न मिलने लगा।

इस प्रकार उन मुनिराज ने ज्योतिष-ज्ञान के वल से पूरे के पूरे वडे खानदान को मरने से वचा लिया। सज्जनो, उन के पास ज्ञान का वल था और वे भूत-भविष्य की वातो को जानते थे, इसी कारण वे मरते हुए मनुष्यो की रक्षा कर सके। अगर उन मे यह शक्ति न होती तो वचाना कठिन था।

तो शक्ति का सचय समय पर सदुपयोग करने के लिए किया जाता है, न कि दुरुपयोग करने के लिए। शक्ति का दुरुपयोग करने मे शोभा नही है।

एक नाई ठाकुर साहव की हजामत वना रहा था। दाढी वनाते-वनाते कही ज़रा उस्तरा लग गया और एक दो वूँद खून

निकल पडा। ऐसा होते ही ठाकुर साहव ने सिसकी भरी। उन्हों ने नाई को उपालभ देते हुए कहा—अरे तू ने यह क्या कर दिया ? खून निकाल दिया !

नाई ने उत्तर दिया—ठाकुर साहव, आप क्षत्रिय है।' आप ने क्षत्रियाणी का वीरत्व का दूध पिया है। आप रणवीर युद्धवीर और रणवाँके कहलाते हैं। लडाई मे जूझ कर प्राणो का उत्सर्ग कर देने वालो की सन्तान हैं। पर आप तो जरा-सा नश्तर लग जाने से ही सी-सी करने लगे ! कदाचित् देश पर दुश्मन का आक्रमण हो गया तो आप क्या रक्षा कर सकेगे ?

यह विरुदावली सुन कर ठाकुर साहव मे वीरत्व और राजपूतत्व जाग उठा। उनका स्वाभिमान जग गया। वह सोचने लगे—इस नाई के वच्चे ने मेरी राजपूती शान किरकिरी कर दी। इसे अपने क्षत्रियत्व का परिचय दे देना चाहिए।

यह सोच कर ठाकुर साहव ने नाई की जाँघ अपनी जाँघ पर रख कर भाले से छेद डाली। जाँघ का छेदना था कि नाई वोल उठा और चिल्लाने तथा 'हाय हाय' करने लगा, किन्तु ठाकुर साहव ने 'सी' भी नही की।

ठाकुर साहव वोले—अरे नापित ! यह रजपूती का थोडा-सा नमूना है। जव रणचण्डी मैदान मे घूमती है तव पता चलता है कि वीरता कैसी होती है। अरे मूर्ख ! वह खून तो वडे उल्लास और उत्साह से वहाया जाता है। उसका कुछ उपयोग होता है, कुछ मूल्य होता है। उस खून से देश और धर्म की रक्षा होती है। मगर तेरे नश्तर से निकला हुआ खून तो व्यर्थ ही वहता है। मुझे यह सह्य नही है। मेरा खून मुफ्त का नही है। हमे उसकी रक्षा करनी होती

है। अगर हमारे शरीर का खून फिजूल निकल गया तो फिर रण-चण्डी की अर्चना किससे की जायगी ? वह क्या पाकर क्रीड़ा करेगी ? शरीर मे खून होगा तभी तो जोश आएगा। जो पहले ही सूखा लक्कड है, श्मशान का भूत है, उसमे जोश कहाँ से आएगा ?

ठाकुर साहव ने अन्त मे कहा—यो तो हमे रक्त की एक-एक बूँद की रक्षा करनी होती है, पर अवसर आने पर उसे वहा भी देना पडता है। वह सचय समय पर काम आने के लिए है।

तो मैं कह रहा था कि साधु को सभी विद्याओं का संग्रह करना चाहिए, परन्तु उनका दुरुपयोग नही करना चाहिए।

शास्त्र में कहा गया है कि आचार्य संघ का नायक होता है और उसको अकेले एकान्त स्थान मे जाने और रहने का भी अधिकार दिया गया है। उसे चमडा लेने का भी अधिकार है, क्योकि कई ऋद्धि-सिद्धियो के लिए इसकी आवश्यकता होती है। अत आचार्य एकान्त स्थान मे रह कर शक्तियों का संचय करे और जब सघ पर आपत्ति आवे तो उनके द्वारा संघ की रक्षा करे। सेनापति यों ही नही वन जाता, उस पर वड़ी जवावदारी होती है।

प्रत्येक व्यक्ति को इस झमेले में नहीं पड़ना चाहिए। कौवा हंस की चाल चलेगा तो अपनी चाल भी गँवा बैठेगा।

इत्तिफाक से कोई हस एक दिन उड़ता हुआ कौवो की टोली के पास से गुजरा। तब कौवो ने उससे पूछा—तुम कितना उड़ सकते हो ?

हस ने उत्तर दिया—मैं वडी लम्बी उडान लगाता हूँ। मेरे परो मे और सीने मे उडने की वडी शक्ति है, क्योकि मैं मोती चुगता हूँ। दस-बीस मील तो थका हुआ भी उड जाता हूँ।

कौवो मे से एक वोला—यह तो यो ही शेखी वघार रहा है। वृथा डीगे हाँकता है। इतनी उडान तो मैं भी भर सकता हूँ।

हस ने कहा—ठीक है, मुझे तुम्हारे साथ कोई होड तो नही लगानी है।

हस उडने लगा तो उस कौवे ने अपने साथियो से कहा—मैं भी उड़ कर इसे अपनी उडान वता देता हूँ। इसकी सारी शेखी मिट्टी मे मिला दूंगा।

उसने हस से कहा—क्या हुआ अगर तुम उज्ज्वल-धवल हो और मैं काला हूँ। मगर शक्ति मे मै तुमसे हीन नही हूँ।

हस ने इतना ही कहा—तुम खुशी से मैदान मे आ सकते हो और वाजी मार सकते हो।

हस उड़ा तो कौवा भी उसके साथ-साथ उडने लगा। मगर हस ने समुद्र की तरफ उडना शुरु कर दिया। वहाँ चहुँ ओर पानी ही पानी नजर आ रहा था। जव हस ने समुद्री रास्ता लिया तो कौवा भी उसके पीछे-पीछे टाँ-टाँ करता हुआ उडने तो लगा परन्तु कुछ दूर जाने के वाद उसकी शक्ति क्षीण होने लगी। उसके परो मे अधिक उडने की सामर्थ्य न रही। वह डगमगाने लगा तो हस ने कहा आजा भाई, चले आओ।

कौवा वोला—तू वाते करता है और मेरा दम निकला जा रहा है। मैं तो अव मरा।

हस ने कहा—भैया अभी मज़िल वहुत दूर है। तू अभी से घवरा गया ?

कौवा—मुझे क्या मालूम था कि तेरी चाल ऐसी है। तू इतनी लम्वी उडान भरता है।

आखिर कौवा थक कर चूर हो गया। उसकी साँस फूलने लगी। वह समुद्र मे गिर कर मच्छ-कच्छ का शिकार हुआ।

तो समुद्र को पार करने की शक्ति तो हस मे ही है। ये कागडे वेचारे उस महासमुद्र को क्या पार सकते है ? वे हस से होड़ करेंगे तो समुद्र मे ही मरना पड़ेगा। शास्त्र मे एक वाक्य है—'वल थाम च पेहाए।' अर्थात् कार्यकर्त्ता को होड़ नही करनी चाहिए। वह पहले अपनी शक्ति का अदाज कर ले और फिर आगे कदम वढाए। जितनी लम्वी सौर हो उतने ही पैर फैलाने चाहिएँ।

तेते पाँव पसारिये, जेती लावी सौर।

अन्यथा सर्दी मे ठिठुरना पडेगा। मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अपनी शक्ति को पहचाने और उसी के अनुसार उत्तरदायित्व वहन करे।

सज्जनो ! मै ने भूगोल, खगोल, ज्योतिप, निमित्त आदि सीखने के विषय मे जो कहा है सो यह रास्ता सव को लेने की आवश्यकता नही है। जिसकी आत्मा मे वल हो, धैर्य हो, हृदय पर कावू हो और जिसे मान सन्मान की भूख न हो, उसी साधु को यह विद्याएँ सीखनी चाहिएँ। उसी को इन्हे सीखने का हक है। जो हस के सदृश है और कौवे के समान नही है, वही इन विद्याओ को सीखे।

साधु समय पडने पर इन विद्याओ का प्रयोग करे पर उसके

लिए प्रायश्चित्त भी करे। प्रायश्चित्त करने वाला आराधक और न करने वाला विराधक होता है।

इस सम्बन्ध मे ध्यान रखने योग्य एक बात और है। वह यह कि अधूरी सीखी हुई विद्या खतरनाक होती है। अत एव जो विद्या सीखी जाय उसके पारगत होना चाहिए। किसी ने कहा है—

अधसीखी विद्या दहे, चिन्ता दहे शरीर ।

अर्थात्—आधी सीखी हुई विद्या दुखदायी होती है , उससे लाभ के बदले हानि होती है।

एक ज्योतिपी थे। उन्होने थोडा ज्योतिप पढ लिया और उसी के बल पर अपने आप को सर्वज्ञ समझने लगे। आश्चर्य तो यह है कि वे जहाँ ज्योतिप मे कदम रखते थे, वही स्वरोदय मे भी टाँग फँसाते थे और सामुद्रिक शास्त्र पर भी दावा रखते थे। उन्हे अपनी इन विद्याओ पर बडा अभिमान था। उन्होने किसी जगह जाकर लम्बे-चौडे इश्तिहार निकाल दिये— ज्योतिष शास्त्र के महामहोपाध्याय आ गये हैं। जिनको अपनी अगलीपिछली पूछनी हो, आकर पूछ ले।

सज्जनो! दुनिया तो अधी गधी की साथी है। उसे चोर ले जाय या उसका मालिक, वह सब के आगे हो लेती है क्योकि उसे नजर तो आता ही नही है।

उन ज्योतिषी पण्डित जी ने बडा प्रेपोगैंडा किया, लोग उनके पास आने लगे और अपने सुख-दुख की बात पूछने लगे।

सटोरिये बाबा के पास जाते है और पागल बाबा यदि गालियाँ देता है तो उनसे भी मतलब निकाल लेते है। कई जगह जब साधु

लोग पहुँचते है तो सटोरिये लोग पूछते है—महाराज आप कितने कोस का विहार करके आये ? अगर उन्होंने कह दिया कि पाँच कोस का विहार करके आये है तो वे पाँच के अक का दडा लगा देते है और अपना मतलव निकाल लेते है। कई भक्त लोग साधु से पूछते है—महाराज, सामायिक कर लूँ ? महाराज कहते है—हाँ भाई कर लो। तव वह पूछता है—कितनी करूँ ? तव भोले महाराज अगर सख्या वता देते हैं, तो भक्त का प्रयोजन निकल आता है। वह वही अक लगा देता है। जो साधु कुशल होते हैं, वे कह देते हे—जितनी तुम्हारी मर्जी हो उतनी कर लो

हाँ, तो उस नगर वालो पर ज्योतिषी की अच्छी छाप पड गई। फलस्वरूप उसे अच्छी आय होने लगी। धीरे-धीरे राजा के कानो तक उसकी ख्याति जा पहुँची। तव राजा ने उसे अपने दर-वार मे वुलाया और वैठने के लिये योग्य आसन दिया। फिर पूछा—ज्योतिषी जी महाराज! वतलाइए मेरा भविष्य कैसा है ? ज्यो-तिषी ने मीन-मेष-मकर कुभ की गणना करके और स्वर पहचानने के लिए नथुनो के सामने हाथ लगा कर कहा— नृपतिवर, वात तो वही कहनी पडेगी जो सच्ची हो। मुझे दुख के साथ कहना पडता है —

ज्योतिषी के इतने शब्द सुनते ही राजा की आधी अक्ल तो कूच कर गई।

फिर ज्योतिषी ने भविष्य कहा—अमुक महीने मे अमुक तिथि को आप स्वर्ग-धाम पधार जाएँगे।

राजा विचार मे पड गया कि मैंने ऐश-आराम के इतने साधन जुटाए और वह सब वेकार ही जाएँगे! सब को यही छोड जाना

होगा। शोक के कारण वह इतना उदास और विह्वल हो गया कि खाना-पीना, सोना-बैठना सब हराम हो गया। उसे कुछ भी अच्छा नही लगता था। मौत का विकराल चित्र उसकी आँखो के सामने झूलता रहता था। उसे पक्का भरोसा हो गया था कि ब्रह्मवाक्य कभी मिथ्या नही होगा। मौत की वह घडी कभी टलने वाली नही है।

सयोग की बात है कि राजा का वजीर बडा ही अक्लमद और होशियार था। उसने राजा की यह हालत देख कर सोचा— यदि शीघ्र ही इलाज न किया गया तो यह रोग असाध्य रूप धारण कर लेगा। यह सोच कर उसने एक कार्यक्रम निर्धारित कर लिया।

दूसरे दिन दरबार लगा तो ज्योतिषी को भी बुलाया गया। जब ज्योतिषी आ गया और अपने स्थान पर बैठ गया तो वजीर ने कहा—पण्डित जी, आप ज्योतिषी है ?

ज्योतिषी—हाँ,

वजीर—कच्चे या पक्के ?

ज्योतिषी—मैं पक्का ज्योतिषी हूँ।

वजीर—अच्छा, बतलाइए, आप की आयु कितनी है ?

ज्योतिषी—मैं तीस वर्ष तक जीवित रहूँगा। इस से पहले नही मर सकता।

वजीर—पण्डित जी, पत्रा देख कर और निर्णय कर लो। कही गणित मे फर्क तो नही रह गया है ? नही तो गज़ब हो जाएगा, धोखे मे रह जाओगे।

ज्योतिषी ने अभिमान पूर्वक कहा—मेरे ज्योतिष के वचन अटल है।

वजीर ने फौरन तलवार निकाल कर ज्योतिषी का सिर धड से अलग कर दिया फिर राजा से कहा—अन्नदाता,आपने जिस ज्योतिषी पर भरोसा करके खाना-पीना भी त्याग दिया उसके वचन कितने विश्वसनीय है, यह बात इस घटना से स्पष्ट हो जाती है। वह कहता था घमंड के साथ कि तीस वर्ष तक मुझे कोई नही मार सकता, पर एक ही झटके मे चल बसा। अगर वह सच्चा होता तो तीस वर्ष मे पहले कैसे मर जाता ? जब वह अपना निज का हो भविष्य नही जानता तो दूसरो का भविष्य किस प्रकार जान सकता है ? ज्योतिष शास्त्र सत्य होने पर भी ज्योतिषी प्राय झूठे होते है। इस विद्या का पूरा और यथार्थ ज्ञान प्राप्त किये बिना ही लालची लोग लोगो को डराने के लिए तैयार हो जाते है।

परिणाम-स्वरूप राजा के मन मे अपनी मृत्यु की जो भयावह विभीषिका खडी हो गई थी, वह दूर हो गई। उसका चित्त आश्वस्त हो गया। वह पूर्ववत् शान्ति के साथ अपना जीवन व्यतीत करने लगा।

तो मैं कह रहा था कि जो ज्योतिष आदि ऐसी विद्याएँ सीखेगा किन्तु उनमे पारगत नही होगा, या उनका दुरुपयोग करेगा तो वह अपना ही सिर कटा बैठेगा। तो छठी त्रिकालज्ञ प्रभावना है। उसके द्वारा भी सघ और शासन की महिमा बढाई जा सकती है। जो जिन शासन की महिमा बढाएगा, वह ससार-समुद्र से पार हो जाएगा।

ब्यावर
१२-१०-५६

———

विद्या प्रभावना तथा कवि-प्रभावना

उपस्थित महानुभावो !

कल वतलाया गया था कि धर्म की प्रभावना एकमुखी नही, धर्म का अभ्युदय एक ही प्रकार से नही होता। शास्त्रकारो ने धर्म-प्रभावना की अष्टमुखी योजना वतलाई है। आशय यह है कि आठ उपायो से धर्म की वृद्धि—उन्नति—होती है। जैसे किसान खेत मे पानी देता है तो उसका मूल-स्रोत तो एक ही होता है, किन्तु आगे चल कर कई नालियो से खेत मे पानी दिया जाता है। जलाशय मे से अनेक छोटी-छोटी नहरे अलग-अलग दिशाओ मे निकाली जाती है, क्योंकि खेत मे एक ही वडे स्रोत को सहन करने की शक्ति नही है। इसी प्रकार धर्म का यो तो केन्द्रीय स्थान एक ही है और वह अहिसा है। उस धर्म को जव आगे से आगे पहुँचाना होता है तो वह अनेक स्रोतो मे विभक्त कर दिया जाता है।

पानी खेतो मे अनायास ही नही पहुँच जाता। उसे पहुँचाने के लिए वडे-वड़े बॉध वॉधे जाते है, पाले वनाई जाती है। जहॉ नहर जाती है वहॉ जगह-जगह स्टेशन वना कर टेलीफोन का भी इन्तजाम किया जाता है, ताकि मालूम रहे कि कही नहर टूट तो नही गई है, अथवा पानी की अव ज़रूरत है या नही ? कई लोग वीच ही मे चोरी से पानी काट लेते है, उनसे भी सावधान रहना पडता है।

इसी प्रकार जो आत्म-खेत सूख रहे है, समकित रूपी पौधे मुरझा रहे है, उनका सिंचन करने के आठ तरीके वतलाए गए है। आठ उपायो से उन खेतो और पौधो मे धर्म-रूपी जल प्रभावना-रूपी नहरो-नालियो से पहुँचा कर उन्हे सरसब्ज़ वनाया जा सकता है।

जैसे पानी न पहुँचने से खेत सूख जाते हैं, उसी प्रकार आत्माओं को अगर धर्मरूपी पानी न मिले तो आत्मगुणों की खेती सूख जाती है। वे जीव मिथ्यात्वी वन जाते हैं और उनका जीवन पापमय हो जाता है।

सज्जनो ! यहाँ तो नहरे क्वचित् ही है, किन्तु पजाव मे तो नहरो का जाल सा विछा हे। वहाँ नहरो मे से नहरे और फिर उन नहरो मे से दूसरी नहरे निकाली गई हैं। जव हम उधर विहार करते हे तो कई वार नहरो की चौडी पाल पर से गुजरते हे और लम्बी दूर तक वृक्ष ही वृक्ष होने से गर्मी मे भी वडी शान्ति रहती है।

तो जो आत्म-खेत सूख रहे है और उनमे अनेक प्रकार के झाड-झखाड पैदा हो गए है, उन्हे दूर करने के लिए आठ प्रकार की प्रभावना रूपी नहरो से धर्म रूपी पानी पहुँचाया जाता है और आत्मा रूपी खेती को हराभरा किया जाता हे। उस जल के पहुँचने से आत्माओ को परम शान्ति मिलती है।

कल छठी प्रकार की त्रिकालज्ञप्रभावना के सम्बन्ध मे कहा गया था और वतलाया गया था कि साधु को भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान सम्वन्धी ज्योतिप, भूगोल, खगोल, हानिलाभ, सुखदु ख मरण आदि विद्याओं का ज्ञाता होना चाहिए, एव विशेप अवसर उपस्थित होने पर धर्म-सघ की रक्षा के लिए इनका उपयोग करना चाहिए।

सातवी प्रभावना विद्या-प्रभावना है। शास्त्रो मे अनेक प्रकार की विद्याओ का वर्णन आता है। अनेक प्रकार की चामत्कारिक विद्याएँ वतलाई गई है जो समय-समय पर अपना काम करने वाली

हैं, जैसे पर-शरीर-प्रवेशिनी विद्या। साधु उन्हे सीखे और धर्म-रक्षार्थ अनिवार्य होने पर उनका उपयोग करे, पर दुरुपयोग न करे। यो तो साधु को आहार सम्वन्धी ४२ दोपो से वचना पडता है। उनमे १६ दोप गृहस्थ द्वारा लगते है, १६ साधु द्वारा लगते है और दस दोनो द्वारा लगते है। साधु द्वारा लगने वाले दोषो मे 'विज्जा' और 'मते' नामक दोप भी है। अर्थात् साधु यदि विद्या और मन्त्र वतला कर आहार-पानी ग्रहण करे तो उसे दोप का भागी होना पडता है। अत एव साधु का यह कर्त्तव्य नही कि वह विद्याएँ सीख कर और गृहस्थो को चमत्कार वतला कर उत्तम आहार आदि प्राप्त करे।

दुनिया चमत्कार को नमस्कार करती है, मगर साधु चमत्कार दिखलाता न फिरे।

जोधपुर मे एक भाई किसी साधु के पास नही जाता था, मगर कुछ दिन वाद वह एक साधु के पास जाने लगा और उन से वहुत प्रेम करने लगा। जव उससे इस परिवर्तन का कारण पूछा गया तो मालूम हुआ—उसका लड़का वीमार हो गया था। वे साधु वहाँ गए, लडके को मगल पाठ सुनाया और सातावेदनीय कर्म का उदय हो गया तो वह लडका स्वस्थ हो गया। जव वह अच्छा हो गया तो उसने कहा—महाराज की कृपा हो गई। अरे! साधु की तो कीड़ी पर भी कृपा होती है। मगर यह तो एक साधारण-सी वात है। अनेक घटनाएँ वडी-वडी घट जाती है। परन्तु साधु को चमत्कार दिखला कर आहार-पानी आदि प्राप्त नही करना चाहिए।

इसी प्रकार किसी को वशीकरण चूर्ण या मन्त्र सिखाना या देना भी साधु के लिए वर्जित है। स्त्री-पुरुष मे झगडा हो जाय

तो उसे मिटाने के लिए वशीकरण मन्त्र दे दे, यह साधु का कर्त्तव्य नही। ऐसे मन्त्र है और उनमे शक्ति भी है, परन्तु साधु यदि जानता हो तो भी स्वार्थ-बुद्धि से किसी को न बतलावे और न उसका प्रयोग करे।

अतगड सूत्र मे सुधर्मा स्वामी के विषय मे कहा गया है कि वे 'विज्जासपन्ने, मतसपन्ने' थे, अर्थात् उन्हे अनेक प्रकार की विद्याएँ सिद्ध थी और वह मन्त्रो के भी वेत्ता थे, मगर उनका उपयोग नही करते थे। इस प्रकार बोध होना एक बात है और उसका दुरुपयोग करना दूसरी बात है। विद्या-मन्त्र सम्बन्धी शक्ति प्राप्त की जाती है तो समय पर धर्मरक्षा के लिए की जाती है, स्वार्थ-पोषणार्थ उसका दुरुपयोग करने के लिए नही। जहाँ स्वार्थ-पोषण ध्येय बन जाता है, वहाँ विद्या भी नष्ट हो जाती है।

आठवी कवि-प्रभावना है, अर्थात् नाना प्रकार की कविताएँ बना कर सुनाने से भी धर्म की प्रभावना होती है। मूल शास्त्र प्राकृत भाषा मे होने से प्रत्येक की समझ मे नही आ सकते और न प्रत्येक उन्हे सुना-समझा सकता है। अत एव शास्त्रो मे चरित्र आदि का जो प्रतिपादन किया गया है, उसे बोल-चाल की भाषा की कविता के रूप मे लाकर श्रोताओ को सुनाया जाय तो उन्हे सहज ही बहुत सी शास्त्रीय बातो का ज्ञान हो जाता है। पूज्य श्री खूब चन्द जी महाराज आदि ने परिश्रम करके शास्त्रीय चरित्रो को ढालो मे ढाल दिया है और बडी सुन्दर कविताएँ रची है। उन्हे पढ कर लोग बोध प्राप्त कर सकते है। 'खूब कवितावली' के नाम से उनका एक सग्रह प्रकाशित हो चुका है। उनकी कविता बड़ी मँजी हुई है और भावपूर्ण होती थी। जिसमे अनूठे भाव हो और

जिसकी भापा मे भी सुन्दरता हो, वही कविता उत्तम कहलाती है। पर आज कल हमारे यहाँ क्या हो रहा है? कई साधुओ को एक प्रकार की वीमारी सो लगी हुई है कि जहाँ चौमासा करते है वहाँ दस-वीस पृष्ठो की किताव छपवा देते है और उसमे छपवा देते है कि अमुक सन्त के चौमासे की खुशी मे अमुक वाई जी की सहायता से किताव छपी। ऐसी वेकार चीजे छपवाना समाज का पैसा वर्वाद करना है और अपना भी स्वाध्याय का समय गँवाना है।

स्वर्गीय श्री तिलोक ऋपि जी महाराज तथा श्री अमी ऋपि जी महाराज ने भी अच्छी भावपूर्ण कविताएँ लिखी है और दिवाकर जी महाराज ने भी वहुत कविताएँ रची है। उन्होने ढालो और चौपाइयो मे चरित्रो की रचना करके पढने वालो के लिए सुगम सामग्री प्रस्तुत की है। इसी प्रकार स्वर्गीय आचार्य जवाहर लाल जी महाराज के प्रवचनो से प्रकाशित 'किरणावली' भी जनता के लिए वहुत उपयोगी है। श्री घासी लाल जी महाराज यद्यपि श्रमण-सघ मे सम्मिलित नही है तथापि उनका जीवन निखरा हुआ है। वे शास्त्रो तथा अनेक भापाओ के ज्ञाता है। वे वृद्धावस्था मे भी सघ की तथा साहित्य की उल्लेखनीय सेवा कर रहे है। उनका साहित्य पढने से समकित की पुष्टि होती है। उन्होने शास्त्रो की नवीन टीकाएँ लिखी है।

आशय यह है कि सुन्दर और कल्याणकारी कविता रच कर प्रभावना करना कवि-प्रभावना है। मगर कविता भावपूर्ण होनी चाहिए। उस मे भावुकता-मात्र नही, भाव होना आवश्यक है। कितने ही कवि भावुकता के वश हो कर भावो को भूल जाते है और भगवान् को ही यहाँ वुलाने लगते है। अरे दुनिया के लोगो! तुम

वहाँ जाने की कोशिश करो, न कि भगवान् को मुक्ति में यहाँ बुलाओ। भगवान् तो अपुनरावृत्ति गति में चले गये हैं। मगर कई माँ के पूत उन को फिर खींच कर यहाँ लाना चाहते हैं।

ऐसे भक्तों की आवश्यकता नहीं है। बड़ी कठिन तपस्या में तो वे ससार के कारागार से छूटे है और तुम उन्हें फिर बुलाने की बाल-चेष्टा करते हो। मगर तुम चाहे कितना ही बुलाओ, वे आने वाले नही है। वह गति ही ऐसी है जहाँ जाता तो है मगर आता नही है। ब्यावर तुम्हे प्रिय है और कही अन्यत्र जाते हो तो फिर लौट आते हो। अभी तक ब्यावर से अधिक आरामदेह शहर तुम्हे नजर नहीं आया। मगर इस से बढ कर शहर मिल जाये, जहा व्यापार मे भी अधिक लाभ हो तो ब्यावर को स्वप्न मे भी याद न करो और वही पीढियाँ व्यतीत कर दो।

इसी प्रकार मोक्ष-स्थान सब से उत्तम स्थान है। वहाँ के सुख के बारे मे बडे से बडे ज्ञानी भी इतना ही कह पाये कि उस सुख की कोई उपमा नही है। जिसे ऐसा अनुपम सुख प्राप्त हो गया है, वह उसे छोड कर ससार के नाशमान सुख के लिए क्यो आएगा? जब मूर्ति की स्थापना की जाती है—प्रतिष्ठा होती है तो प्रतिष्ठापक कहता है—अत्र तिष्ठ, अत्र तिष्ठ। अर्थात् हे भगवन्! आप इस मूर्ति मे विराजमान होओ। जब प्रतिष्ठा का कार्य समाप्त हो जाता है तो 'विसर्जनम्, विसर्जनम्' कहते है। यह सब क्या है? क्या भगवान् बुलाने से आते है और विदा करने से चले जाते है? याद रखिए, मोक्ष-गति अचल है। कहा है—

'सिवमयलमरुअमणत मक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्ति सिद्धिगइ नामधेय ठाण सम्पत्ताणं।'

अर्थात् वह गति सब प्रकार के उपद्रवो से रहित है, अचल-भयरहित है, रोगो से मुक्त है, अनन्त है, अक्षय है, उस मे किसी की बाधा-पीडा नही है, उस से वापिस आगमन नही होता।

भय किस को होता है ? जो दूसरो को भय-भीत करता है, उसे स्वय भयग्रस्त होना पडता है। भय मोहनीय कर्म की प्रकृति है। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा और तीन वेद, यह नौ कषायचरित्र मोहनीय कर्म की प्रकृतियाँ है। ठहाका मार-मार कर हँसते रहना हास्य प्रकृति का कार्य है। ज्ञानी का हँसना केवल मुस्कराहट लिए होता है। रति-अरति कर्म के उदय से अधर्म-कार्य मे खुशी और धर्मकार्य मे दिलगीरी होती है। अनिष्ट का सयोग होने पर चिन्ता करना शोक कहलाता है। पुरुषार्थ करना अपना कर्त्तव्य है किन्तु कर्मो का फल तो भोगना ही पडता है। अत एव प्रतिकूल अवसर उपस्थित होने पर चिन्ता-शोक न करते हुए समभाव धारण करना ही उचित है। ज्ञानी का लक्षण ही यह है कि—

गई वस्तु सोचे नही, आगम वाछा नाहि ।
वर्तमान वरते सदा, सो ज्ञानी जग माँहि ॥

ज्ञानी पुरुष बीती हुई बात के लिए चिन्ता नही करता और भविष्य के लिए आकाक्षा नही करता। वह तो वर्तमान को ही देख कर चलता है और उसी मे सतोष मानता है।

ज्ञानी समझता है कि भय की उत्पत्ति भय से ही होती है। हम किसी को भय उत्पन्न न करेगे तो स्वय भी निर्भय रह सकेगे।

दूसरो से नफरत (घृणा) करना जुगुप्सा है। 'अरे, वह तो ऐसा है, वैसा है' इस प्रकार घृणा करके किसी से दूर भागता है तो

में पूछना चाहता हूँ कि क्या तेरे सोने-चाँदी के पख लगे है ? आखिर वह भी तेरे जैसा है। वह भी धर्मकरणी करने वाला है,फिर भी तू उस से घृणा करता है ? तेरे जैसा पापी और दुर्भागी और कौन होगा ? धर्मी पुरुष से प्रेम बढाना चाहिए ताकि वह धर्म मे अधिक लग सके, पर तू उन्हे फैक रहा है दूर-दूर। तू उन्हे क्या फैंक रहा है, एक दिन तू ही नफरत के साथ दूर फैंक दिया जायगा। उस समय तुझे सँभलना कठिन हो जायगा। जो दूसरो से घृणा करते है उन्हे मोरी का कीडा बनना पडता है। जैन-सिद्धान्त किसी से घृणा करना नही सिखलाता। उसका विधान है कि कर्त्ता मे घृणा न करो, उसके दुष्कर्म से घृणा करो। चोर बुरा नही, चोरी बुरी है। चोरी करने के कारण चोर बुरा कहलाता है। अगर वह चौर्य-कर्म त्याग दे तो उसे कोई चोर नही कहेगा। चोरी को छोड कर प्रभव, जो पाँच सौ चोरो का सरदार था, भगवान् की गादी का अधिकारी बन गया।

आज आप ओसवाल लोग अपने को सब से ऊँचा मानते हो, पर अपने इतिहास को जानते हो कि नही ? जैन-धर्म आचरण को महत्त्व देता है। वहाँ जाति का कोई मोल नही है। आपका आचरण पवित्र है तो आप ऊँचे है और यदि आपका चरित्र गिरा हुआ है तो आपका जीवन गिरा हुआ है। आज आप ओसवाल नाम से विख्यात है, परन्तु पता है आपमे से कौन-कौन किस-किस जाति मे था ? पूर्वाचार्यो ने ओसियाँ नगरी की सभी जातियो को अपने आश्रय मे लिया और सब को जैन-धर्म का पाठ पढाया। उन्हे भगवान् महावीर का सत्य-अहिंसा का मन्त्र सिखा दिया जिससे सब ने मास-मदिरा का त्याग कर दिया और आज वही उच्च जाति के कहलाने लगे।

सज्जनो ! यों तो सब हाड-मास के पुतले है और यो सब भाई-भाई है। जिन्होने उन दूषित कर्मो को छोड दिया, वे उत्तम गिने जाने लगे। प्रभव चोर चौर्यकर्म से पृथक् हो गया और भगवान् की शरण मे आ गया तो अपने ही उत्तम आचार-विचार से वह भगवान् की गादी का उत्तराधिकारी बन सका। आज आप सब उनके अनुयायी कहलाते हो।

पहले कोई डाकू था, शराबी था, मगर उसने अपना जीवन मॉज लिया है, पवित्र बना लिया है। किन्तु आप उस जीवन की पवित्रता को भूल जाते हो और जाति के अभिमान मे फूल जाते हो। मगर याद रखना, जो जाति का अभिमान करता है उसे नीच जाति मे जन्म लेना पडता है।

हरिकेशी मुनि ने पिछले ब्राह्मण के भव मे जाति का अभिमान किया, संसार त्याग कर साधु बन जाने पर भी महा-मुनियो के प्रति जातीय घृणाभाव बना रहा, तो उस घृणा के फल-स्वरूप चाण्डाल के घर मे जन्म लेना पडा, जहाँ तिरस्कृत होकर घर छोडने को मजबूर होना पडा। उत्तराध्ययन सूत्र का १२वाँ अध्ययन इस तथ्य की साक्षी देता है। सज्जनो ! आपके यहाँ इतना ऊँचा कर्म-सिद्धान्त होने पर भी आज आपके दिमाग मे कौन-सी बीमारी पैदा हो गई है कि आपका दिमाग ठीक ही नही होता। किन्तु आज समय की माँग है, देश की पुकार है और जब शासन ने भी मनुष्य को मनुष्य मान कर नीच से नीच जातीय समझे जाने वालो को भी समानाधिकार दे दिया है और उससे विपरीत आचरण करने का परिणाम आपको भलीभाँति ज्ञात है, तब भी आप विपरीत ही दिशा मे सोचते और गति करते हैं। आपको उस ओर नही जाना चाहिए

जिधर से प्रचण्ड वेग वाली धारा आ रही हो। ऐसा करना आपके लिए कल्याणकारी नहीं है। आप ज़माने के ख़िलाफ जाकर सफल नही हो सकते और अपने ही सिद्धान्त के विरुद्ध प्रवृत्ति करके कल्याण के भागी नही बन सकते। अत एव परिस्थिति को सही रूप मे समझ कर सँभल जाना ही श्रेयस्कर है। यदि आपने जात्य-भिमान के नशे मे चूर होकर विपरीत आचरण किया और अपनी पुरानी रफ्तार नहीं छोडी तो याद रक्खो, नदी के प्रवाह मे वह जाओगे और अपने लक्ष्य को नही प्राप्त कर सकोगे। जो अपनी जाति और कुल का अपमान करते है, वे भविष्य मे नीच जाति मे और नीच कुल मे जन्म लेते है। जो हुकूमत का अभिमान करते हैं, वे गुलाम बनते है। जो तप का अभिमान करते है और सोचते है कि मेरे जैसा तपस्वी कोई नही है, उन्हे भविष्य मे तपस्या करने मे अन्तराय का सामना करना पडता है।

अरे जीव! तू क्या तपस्या करता है तीर्थंकर भगवान् निर्जल तपस्या करते है। उनकी तुलना मे तेरी तपस्या किस गिनती मे है? तप करके अभिमान करने से सारा मामला चोपट हो जाता है।

किसी ने सात प्रकार की मिठाइयाँ बनाई और सब को प्रेम से भोजन कराया। भोजन के पश्चात् सब ने कहा—वाह वाह! बहुत अच्छा भोजन बनाया। इस प्रकार की प्रशंसा के उत्तर मे कदाचित् घरमालिक कह दे—आप लोगो के बाप-दादा ने भी कभी ऐसी मिठाइयाँ बनवाई-खाई न होगी। तो सब खाया-पिया जहर हो जाता है। खाने वाले सोचते है—किसी तरह वमन करके इस भोजन को बाहर निकाल सके तो कितना अच्छा हो।

इस प्रकार मेहनत की, पैसा खर्च किया, परन्तु विवेकहीनता

से वोले विना न रहा गया और सारा गुड गोवर कर दिया। कहा है—

पूरा तो छलके नही, छलके सो अद्धा।
घोडा तो भौके नही, भौके सो गद्धा॥

अरे भाई ! तू अपने मुँह से अपनी वडाई करके क्यो वडप्पन मे वट्टा लगाता है? जो तुझ मे गुण है, वडाई है, तो वह आप ही प्रकट हो जाएगी। कस्तूरी को क्या अपनी सुगन्धि की तारीफ करनी पडती हे ? दूसरे लोग स्वय उसकी तारीफ करते है। तू भला आदमी है तो दूसरो की प्रशसा कर। दूसरे स्वय तेरी प्रशसा करेगे यही मजेदारी की वात है।

तो तपस्या का भी अभिमान नही करना चाहिए। अभिमान करोगे तो तपस्या मे ऐसा अन्तराय पडेगा कि एक नवकारसी अर्थात् दो घड़ी की भी भूख सहन करना कठिन हो जायगा। आज कई जैन तो ऐसे है जो जैन कहलाते है, किन्तु वे सवत्सरी के दिन भी उपवास नही कर सकते। दूसरो को तप करते देख कर उनकी भी इच्छा होती है, परन्तु उनसे तप करते नही वनता, क्योकि उन्हो ने तप का अभिमान किया था।

इसी प्रकार श्रुतमद भी वर्जनीय है। कोई कहता है कि ससार मे मेरे जैसा कोई ज्ञाता नही है, तो मै उससे पूछता हूँ—क्या तुझे केवलज्ञान हो गया है ? केवलज्ञान जव तक नही हो जाता तव तक प्रत्येक ज्ञान अधूरा है। अत एव उस समय तक प्रत्येक मनुष्य को विद्यार्थी वन कर रहना चाहिए। ग्रथो को पढ लेने से प्रतिपूर्ण ज्ञान प्राप्त नही हो सकता। केवलज्ञान तो वह निर्झर है जो आत्मा के स्रोत से ही उत्पन्न होता है। वही परिपूर्ण और निर्मल होता है।

तो मैं कह रहा था कि भय और घृणा आदि विकार मोह-नीय कर्म के उदय से उत्पन्न होते हे। रति और अरति भी मोह के ही फल हैं। धर्म के काम मे दिलगीर हो जाना, जव किसी दुखी भाई की सेवा करनी हो, या साहित्य की सेवा करनी हो तो फौरन मानो १०५ डिग्री बुखार चढ आना और पाप का काम आ जाए तो थैली का मुख खोल देना, यही रति-अरति है।

कई भले आदमी रगडे–झगडे के कामो मे वडी दिलचस्पी लेते है और दूसरो को आगे करके कहते हैं—हाँ, इस काम मे कसर मत रखना, परवाह मत करना, दाम मैं खर्च करूँगा! मगर अरे नादान! कोयलो की इस दलाली मे तू अनादि काल मे लगा हुआ है। अव हीरो-पन्नो की दलाली का समय है। यह अवसर हाथ से मत जाने दे। ऐसा करेगा तो मोक्ष का अक्षय मुख प्राप्त कर सकेगा।

मोक्ष का सुख ऐसा है कि उस पर किसी की तरफ से आक्र-मण नही हो सकता। ससार की चारो गतियाँ चल हैं पर मोक्षगति अचल है। आज जो जीव देव-गति मे है, वह कल मनुष्य या तिर्यच गति मे उत्पन्न हो सकता है। जैसे वच्चा इधर-उधर दौड लगाता फिरता है, इसी प्रकार कर्मो का मारा ससारी जीव भी इधर-उधर चौरासी लाख जीवयोनियो मे भटकता फिरता है। मनुष्य भव सँभलने का अच्छा अवसर हे, परन्तु उसे पाकर भी जीव भूल पर भूल करता जाता है। वच्चा एक वार आग को हाथ लगा देता है तो हाथ लगने से आयदा उससे दूर रहता है। मगर मनुष्य इतना धृष्ट है कि सामने आग को देख कर भी उसी पाप अग्नि की ओर वढता चला जाता है और उसी मे झपापात करता है। सच्च कहा

है—मनुष्य की जैसी गति होने वाली होती है वैसी ही मति भी हो जाती है। हाँ, तो मनुष्य को पापाचरण का त्याग कर मोक्ष साधना करनी चाहिए। मोक्ष गति एक वार प्राप्त होने पर कदापि क्षय नही होती, वह अक्षय है।

ससार मे देवगति सुख के लिहाज से तो सर्वोत्तम मानी जाती है, परन्तु वहाँ भी नाना प्रकार की मानसिक पीडाएँ विद्यमान है। वह भी सर्वथा वाधा-रहित नही है। परन्तु मोक्ष-गति समस्त प्रकार की वाधाओ—पीडाओ—से रहित है।

मानव गति मे शरीरधारियो को जो पापोदय से वधाएँ-पीडाएँ है, वे आप से छिपी नही है। वुखार आ जाता है, पेट दुखने लगता है। राजयक्ष्मा भगदर, कोढ आदि व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती है, सैकडो प्रकार की मानसिक वेदनाएँ सदैव सताती रहती है, परन्तु सिद्धिगति मे कोई भी आधि-व्याधि स्पर्श नही कर पाती। वहाँ किसी भी प्रकार की वाधा नही, पीडा नही, और वाधा-पीडा का कोई कारण भी नही। वाधा-पीडा का कारण कर्म है और सिद्ध दशा मे कर्म का अभाव है। वहाँ आत्मा के अनन्त असीम आनन्द नामक गुण का पूर्ण विकास हो जाता है, अत एव दुख का सस्पर्श भी नही हो सकता। जव कर्ज सिर पर होता है तभी लेने वाले आते है। कर्ज़ न हो तो कौन माँगने आएगा? सिद्ध भगवन्तो ने कुछ भी ऋण शेप नही रहने दिया है, अत एव वे स्वाधीन भाव से स्वात्म-स्वरूप मे रमण करते रहते है।

कई लोग कहते है कि मुक्तात्मा पुन ससार मे अवतरित होते है। कुछ की मान्यता है कि मोक्ष मे न सुख शेष रहता है, न ज्ञान ही रहता है। मगर जैन धर्म ऐसा मनहूस मोक्ष नही मानता।

तो मोक्ष गति मे जाना तो है, पर वहाँ से आना नही है । फिर भी कतिपय माँ के पूत मुक्तात्माओ को यहाँ बुलाने की हवस रखते है। वे गायन मे कहते हैं —

महावीर स्वामी आजा, दर्श दिखा जा ।

भाई ! तुम्हे उनके दर्शन करने है तो तुम्ही उनके पास चले जाओ। धर्म की आराधना करके तुम वहाँ जा सकते हो, वे यहाँ नही आ सकते । तुम्हारा काम अधूरा है, उनका काम पूर्ण हो चुका है। तो ऐसी कविताएँ जैन-दृष्टि से जैन सिद्धान्तानुकूल नही है । इसी प्रकार जब मूर्ति की प्रतिष्ठा की तो भगवान को मोक्ष से बुला लिया और जब मर्जी हुई तो विदा कर दिया, यह क्या बालचेष्टा नही है ? बालक निरर्थक बाल-लीला करे तो वह इतनी आश्चर्यजनक नही हो सकती है पर जब बड़े-बडे आचार्य प्रतिष्ठा करवाते हैं और मोक्षात्माओ को वापस बुलाने का मन्त्र बोलते है तो आश्चर्य कैसे न हो ? बच्ची मिट्टी की रोटियाँ बनाती है और परोसती है, परन्तु समझदार उसे खाते नही है।

जैसा कुल मे धधा होता है, बच्चे वैसा ही करते है । मैंने कल लोहारिये के एक छोटे से बच्चे को देखा। वह बैठा-बैठा सडासी लेकर वैसा ही काम कर रहा था जैसा उसके कुल मे होता है। उसी मे वह मस्त हो रहा था। ऐसे सस्कार सदा से चले आ रहे है । बनिये का बेटा नकली तराजू और बाँट लेकर तोलने का अनुकरण करता है और कृपक-बालक नकली हल बना कर खेत जोतने का खेल करता है।

मगर हमे उन अबोध बच्चो की अनुकरण वृत्ति पर अफसोस नही है , किन्तु बूढे हो जाने पर भी जिनका मिथ्यात्व नही छूट

सका, उनके लिए अवश्य अफसोस होता है । मिथ्यात्व के खडन का मजा देखना हो तो दक्षिण मे विचरने वाले मुनि श्री गणेशी-लाल जी तपस्वी को देखो। उन्होने प्रतिज्ञा ले ली है कि जिस घर मे मिथ्यात्व का सेवन होगा, उस घर से आहार नही लूंगा । उनके स्थान पर इकट्ठे किये गए अनेक धातुओ के बने देवी-देवताओ को नीलाम किया गया तो उस के सात सौ रुपये आए और वे रुपये वहाँ की गोशाला मे दे दिए गए।

याद रखना, तुम तो मुझ से इतने से ही घबरा गए, कही उनकी परीक्षा मे पडना होता तो शायद व्यवहार छोड कर भागना पडता। अरे ! सुन-सुन कर तुमने क्या किया ? गुरुओ को धोखा देने के सिवाय कुछ नही किया। तुम हमारे चरणो मे झुकते हो—चरणरज मस्तक पर लगाते हो और बहुरूपिया का स्वाग करते हो ! किन्तु जब असली काम करने का अवसर आता है तो पीछे हट जाते हो। क्या यह उचित है ?

सज्जनो ! अधिक से अधिक मिथ्यात्व का मुकाबिला होना चाहिए। वे श्री गणेशी लाल जी तपस्वी अकेले होने पर भी जैन-धर्म की उन्नति कर रहे है। यह सत्य है कि साधु को अकेले रहने को आज्ञा नही है, किन्तु जो सघ मे रह कर भी चारित्र भ्रष्ट हो रहे हैं, सघ के साथ द्रोह कर रहे है। वे क्या श्रद्धा के पात्र है ? अकेले रहने पर भी तपस्वी जी का जीवन निर्मल है और श्रमण सघ के वे समर्थक है। यदि वे श्रमणसघ मे मिल भी जाएँ तो उन्हे सँभाले कौन ? म्याऊँ के गले मे घटी बाँधे कौन ?

सज्जनो ! हम गुणो के पुजारी है। हम उन के गुणो का शत-

गत वार स्वागत करते है। प्रसन्नता का विषय है कि वे श्रमणसघ मे न होने पर भी श्रमण-सघ के समर्थक है। और अफसोस उन के लिए है जो श्रमणसघ मे हो कर भी श्रमणसघ के द्रोही हैं, उस की जड काट रहे है और ऐसो से ही विशेष हानि होने की सम्भावना है। जो कुत्ता बोल कर काटता है उस मे बचा जा सकता है, मगर जो चुपके-चुपके आ कर पिंडली पकड ले उस से बचना कठिन होता है। इसी प्रकार जो सघ मे रह कर भी सघ के द्रोही और गद्दार हैं, उन से हमारी क्या उन्नति हो सकती है ?

तो जैन-धर्म आचरण को महत्त्व देता है, जाति को नहीं, सब को उन्नति करने का समान अधिकार है। यहाँ गुणो का आदर है। कोई अन्त्यजकुल मे उत्पन्न हो कर भी ऊँचा बन जाता है और कोई ब्राह्मण के कुल मे जन्म ले कर भी अपने दुराचार से घृणास्पद हो जाता है।

अच्छी नसल का घोडा भूखा-प्यासा होने पर भी मालिक के इशारे पर चलता है और चाबुक को देखते ही हवा से बाते करने लगता है। गधेडे को कितने ही डडे मारो, वह अपनी चाल नही छोडता। वह परवाह नही करता और समझता है कि मार खाने से कमर मजबूत हो जायगी। शास्त्र मे कहा कि कुलवान-उत्तम खानदानी-प्रथम तो गलती करता ही नहीं, कदाचित् गलती हो जाय तो उसे तत्काल सुधार लेता है। उस के लिए इशारा ही काफी होता है। इसी कारण गलती करने पर दण्ड देने के तरीके अलग-अलग होते है। गलती एक ही प्रकार की होने पर भी पात्र लिहाज से दण्ड विधान अलग-अलग प्रकार के हो सकते है।

विक्रमादित्य बडा प्रसिद्ध प्रजा-पालक राजा हो गया है। एक बार चार व्यक्तियो ने कोई अपराध किया तो सिपाहियो ने उन्हे पकड कर राजा के समक्ष उपस्थित किया। राजा ने अपराध सुना और चारो का अपराध समान होने पर भी उन्हे अलग-अलग प्रकार का दड दिया। एक अपराधो मे विक्रमादित्य ने कहा—अमुक सेठ के पुत्र हो कर ऐसा काम करते हो! तुम्हे लज्जा आनी चाहिए। खबरदार' जो आइदा ऐसा काम किया!

इतनी डाट-फटकार बतला कर उसे वहाँ से भगा दिया।

दूसरा अपराधी राजा के सामने आया तो उसे एडी से चोटी तक देख कर राजा ने कहा—तुझे धिक्कार है, लानत है! ऐसा कर्म करते शर्म नही आई? इस प्रकार कठोर भर्त्सना कर के उसे भी भगा दिया।

तीसरे अपराधी की बारी आई तो राजा ने उस का भी नक्शा गौर से देखा और उसे फटकारा, धिक्कारा और अपशब्द कह कर दो चार थप्पड भी जड दिये। फिर कहा—यह दुष्कर्म करते तुझे लाज नही आई? तू ने राजाज्ञा भग कर दी। सोचा नही कि इस से राज्य-व्यवस्था भग होती है और अराजकता उत्पन्न होने की सभावना होती है।

जब चौथा अपराधी आया तो राजा ने उस की भी सूरत शकल गौर से देखी। उसका रग-ढग देख कर राजा समझ गया कि यह नागो का बादशाह है। अत एव उसने सिपाहियो को आज्ञा दी कि—इस का काला मुँह करके, दाढी-मूँछ कटवा कर, जूतो का हार पहना कर और गधे पर सवार करके नगर मे घुमाओ। इस के लिए यही दण्ड उपयुक्त है।

चार अपराधियो को समान अपराध मे चार तरह की सजा देता देख कर सभासद आपस मे कानाफूसी करने लगे। वे इस न्याय के औचित्य को न समझ सके। पर राजा विक्रमादित्य बडे चतुर थे। वे सभासदो के चेहरे देख कर उन के मनोभावो को ताड गये और तब बोले—तुम्हे जो आशका है, उसे मैं समझ गया हूँ। परन्तु मैं ने पक्षपात नही किया। मैं ने दण्ड देने के वास्तविक उद्देश्य को बराबर ध्यान मे रक्खा है और प्रामाणिकता के साथ समुचित दण्ड दिया है। थोडी ही देर मे तुम लोगो को मेरे न्याय के औचित्य का पता चल जायगा।

तत्पश्चात् चार आदमी खुफिया तौर पर उन चारो का हाल-चाल जानने के लिए भेजे गये। उन्हो ने मालूम किया कि पहले अपराधी को लज्जा के कारण घर मे प्रवेश करना भी कठिन हो गया। वह अत्यन्त पश्चात्ताप करने लगा कि मुझे बहुत लोगो के समक्ष उपालम्भ का पात्र बनना पडा। क्यो मैं ने ऐसा अवसर आने दिया कि महाराज मुझे उपालभ दे! हाय, मैं किसी को मुख दिखलाने लायक भी न रहा!

उस ने इस प्रकार सोच कर विप खा लिया और अपने प्राणो का अन्त कर लिया।

दूसरे के घर जा कर तलाश किया तो पता चला कि वह शहर छोड कर चला गया है, उसे लज्जा सहन न हो सकी।

तीसरे के घर जा कर पूछताछ की तो विदित हुआ कि राज-दरबार से आने के पश्चात् वह अपने घर मे छिप कर बैठा है और बाहर निकलने मे सकोच कर रहा है।

चौथे की तलाश मे निकले तो दरवाजे पर ही उसके दर्शन हो गये। वह गधे पर वैठा था, मुँह उसका काला था और वक्षस्थल पर जूतियो का हार सुशोभित हो रहा था। फिर भी वह प्रसन्न था और मित्रो से कह रहा था—देखा, हमारा हाथी कितना जवर्दस्त है। कैसी वढिया चाल चल रहा है। तुम्हारे वाप-दादा को भी कभी ऐसा हाथी नही मिला होगा। यह हाथी सरकार ने मुझे वख्शीस किया है। जव सिपाही उसकी ढिठाई देख कर जूते मारने लगे तो वह वोला—देखो, यह लोग मुझ पर चॅवर ढोर रहे है।

शहर मे घूमते हुए जव वह अपने घर के सामने हो कर निकला तो हँस कर अपनी पत्नी से कहा—पानी पिलाओ। स्त्री ने लजा कर पानी पिला दिया। फिर वह वोला—मैं इस हाथी पर सवार होकर शहर की सैर कर आता हूँ, मेरे लिए भोजन तैयार रखना।

उन चारो गुप्तचरो ने यह माजरा देख कर कहा—यह कितना निर्लज्ज है। इसे अपने अपमान की चिन्ता नही और दुर्दशा की परवाह नही। वास्तव मे यह इस से भी अधिक कठोर दण्ड का पात्र था। यह नीच कुल का है।

तो जो जिस प्रकार के दण्ड का पात्र है, उसे वैसा दण्ड दिये विना समाज निखरता नही, समाज ऊँचा आ सकता नही। आज चौथे अपराधी के साथी वहुत हैं, किन्तु जहाँ लाज होती है वहाँ ब्रह्मचर्य और सयम की रक्षा होती है। अत एव मनुष्य को प्रत्येक अपराध से वचना चाहिए। मुख की कालिमा तो पानी से धुल सकती है, परन्तु आत्मा मे लगी कालिमा पानी से नही धुलती। अत एव ऐसी प्रवृत्ति न करो जिससे धर्म की हानि हो। सम्भव हो

तो धर्म की प्रभावना करो। कविप्रभावना में बतलाया गया है कि महापुरुषो की गुणावलियाँ रच कर धर्म का उद्योत करो।

आज दर्शनाचार का निरूपण पूर्ण होता है। इसे सुनकर आप समकित की वृद्धि करेगे और मिथ्यात्व का त्याग करेगे तो एक दिन ससार-समुद्र से पार हो जाएँगे।

ब्यावर
१३-१०-५६